

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182005

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.092
P18A.

Accession No. H2582

Author पंडित लक्ष्मण,

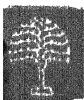
Title आज के उर्दू शायर और उनकी
आयरी

This book should be returned on or before the date
last marked below.



आज के उँई शायर और उनकी शायरी

सम्पादक
प्रकाश पंडित



गजपाल प्रिंटर्स, दिल्ली

आत्माराम एन्ड सन्स
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
कान्हारी रोड, दिल्ली-६



मूल्य : आठ रुपये (८'००)
प्रथम संस्करण : मई, १९५८
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

क्रम

१. 'जोश' मलीहाबादी	---	१
२. 'जिगर' मुरादाबादी		२३
३. 'फिराक' गोरखपुरी		३६
४. 'हफ़ीज़' जालंधरी		५३
५. 'अख़्तर' शोरानी		७१
६. अब्दुलहमीद 'अदम'		८६
७. 'सागर' निज़ामी		०१
८. 'मजाज़' लखनवी	...	११३
९. फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़'	...	१३३
१०. नून, मीम, राशिद	...	१४६
११. मुईन अहसन 'जज़बी'	...	१६१
१२. सरदार जाफ़री	...	१७७
१३. 'मख़्दूम' मुहीउद्दीन	...	२०१
१४. अहमद 'नदीन' कासमी	...	२१५
१५. जां निसार 'अख़्तर'	...	२३१
१६. 'साहिर' लुध्यानवी	...	२४७
१७. 'वामिक' जौनपुरी	...	२६५
१८. गुलाम रब्बानी 'ताबां'	...	२७६
१९. जगन्नाथ 'आज़ाद'	...	२९३
२०. 'अर्श' मलस्यानी	...	३०३

२१. 'महमूर' जालंधरी	...	३१५
२२. 'अख्तर' उल-ईमान	...	३३३
२३. 'सलाम' मछलीशहरी	...	३४३
२४. 'मजरूह' मुलतानपुरी	...	३५५
२५. 'कतील' शफाई	...	३६७

भूमिका

हिन्दी काव्य की तरह उर्दू शायरी का नवीन काल भी १८५७ ई० की क्रान्ति के बाद शुरू होता है। इससे पूर्व की सौ वर्षीय उर्दू शायरी (अपवादों को छोड़ कर) बादशाहों के कसीदों (प्रशंसात्मक काव्य), सूफियाना और इस्क्रिया गज़लों तक ही सीमित थी। मानसिक विलासप्रियता, नैराश्य, करुणारस, व्यक्तिवाद, आध्यात्मिकता, अवसन्नता इत्यादि प्रवृत्तियों को विभिन्न 'रदीफ़ों' और 'काफ़ियों' में व्यक्त करने और शाब्दिक बाज़ीगरी दिखाने को ही (जिसे 'नज़्म-ख़्याली' कहा जाता था) काव्य की पराकाष्ठा माना जाता था। ऐसा होना एक रूप से अनिवार्य भी था क्योंकि जब तक शांत तथा स्थिर सामाजिक जीवन में भौतिक तथा चिंतनात्मक परिवर्तन उत्पन्न न हों, साहित्य तथा काव्य के लिए भी, जो जीवन का प्रतीक होता है, नये मार्ग नहीं खुलते। ऐसे परिवर्तनों के लिए किसी बड़ी सामाजिक तथा राजनैतिक क्रान्ति की आवश्यकता होती है जो १८५७ ई० से पूर्व भारत के दीर्घ जागीरदारी-काल में कहीं नज़र नहीं आती। परिस्थितियों में परिवर्तन अवश्य हुए। राज्य बदलते रहे, खून की नदियां भी वहीं किन्तु इन समस्त बातों का सामूहिक सामाजिक जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वह जहाँ था, वहीं रहा। ऐसी स्थिति में जब कि देश का सामाजिक जीवन शताब्दियों तक एक विशेष वातावरण में सीमित और एक विशेष ढंग पर चुपचाप चलता रहा हो, साहित्य तथा काव्य में अपेक्षित उत्थान की तलाश व्यर्थ होगी। प्राचीन उर्दू शायरों को यदि काल्पनिक 'माशूक' की जुत्फों से डसे जाने और सीने पर नज़रों के तीर खाने से फुसंत न मिली तो उसमें उनका उतना दोष नहीं जितना उस काल की व्यवस्था का था।

वह व्यवस्था ही ऐसी थी जो शायर को जीवन की मूल समस्याओं के प्रति विमुख हो 'जाम और सबू' में डूबने, मस्त-अलस्त रहने या अधिक से अधिक 'खुदा से ली लगाने' की प्रेरणा करती थी। अतएव वे शायर जो राजदरबारों से सम्बंधित थे वे :

गर यार मय पिलाये, तो फिर क्यों न पीजिये
जाहिद नहीं, मैं शेख नहीं, कुछ बली नहीं
(इन्शा)

की रट लगाते रहे और जिनकी पहुँच दरबारों तक न हो सकी थी, आर्थिक दरिद्रता ने उन्हें निराशावादी बना दिया और जीवन उनके समीप 'रात को रो रो सुबह करने' और 'दिन को ज्यों त्यों शाम करने' का विषय बन गया और यह सिलसिला इतनी दूर चला, इतना शक्तिशाली हो गया कि अठारहवीं शताब्दी के मध्य में जब 'नजीर' अकबराबादी ने शायरी की इन प्राचीन परम्पराओं के विरुद्ध व्यक्तिगत विद्रोह किया, शायरी को नवाबों की विमान-ताफ़ूर्ग महफ़िलों और नीद की पेंग में निमग्न शायरों की पकड़ से निकाल कर बीच चौराहे में खड़ा करने का प्रयत्न किया और :

टुक हिरस-ओ-हवा^१ को छोड़ मियाँ, मत देस बिदेस फिरे मारा
कज्जाक^२ अजल को लूटे हैं, दिन रात बजाकर नक्कारा
क्या वधिया, भैंसा, बैल, शूतर, क्या गउएं पल्ला सर भारा
क्या गेहूँ, चावल, मोठ, मटर, क्या आग, घुआं और अंगारा
सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा

ऐसे शेर कहकर मनुष्य और उसकी सामाजिकता को काव्य-विषय बनाया तो लकीर के फ़कीरों ने उन्हें बाज़ारू और घटिया शायर कहकर नज़र-अंदाज़ कर दिया। यहाँ तक कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब 'गालिब' ने ग़ज़ल के तंग दामन को फैलाने और उसमें दार्शनिकता समोने का प्रयत्न किया तो उन्हीं सज्जनों ने उन पर 'मोहमलगो' (अर्थहीन शेर कहने वाला) होने का आरोप लगाया और उसके चौथाई शताब्दी बाद तक :

रख-ए-रोशन के आगे शमा रखकर वो यह कहते हैं
उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है

(दाग)

—ऐसे काव्य को ही महान काव्य का स्थान देते रहे ।

१८५७ की असफल क्रांति के बाद भारत की राजनीति में असाधारण और मौलिक परिवर्तन हुआ । शताब्दियों की जागीरदारी व्यवस्था पतनशील हुई और उसके स्थान पर पश्चिम से आई हुई औद्योगिक तथा व्यापारिक व्यवस्था उत्तरोत्तर बढ़ने लगी । सामान्य राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तनों से सामाजिक जीवन तथा मानव विचारों में भी परिवर्तन होने लगे । जीवन की जर्जर परम्पराओं पर कुठाराघात हुआ, नये रूप से वर्गीकरण हुआ और मध्यम वर्ग के लोगों ने पश्चिमी विद्या-विज्ञान को अपनाना शुरू किया । प्रत्यक्ष है इस सार्वभौम-परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर होना भी अनिवार्य था । इसी सामाजिक परिवर्तन ने कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी जन्म दिया जो चैतन्य रूप से साहित्य तथा काव्य को बदलती हुई परिस्थितियों के साथ-साथ चलाना चाहते थे । जिन महात् लेखकों और कवियों ने उस समय परिवर्तन-शील परिस्थितियों को स्वीकार किया और आगे बढ़ते हुए जीवन का साथ दिया उनमें सर सय्यद, हाली, आज़ाद और शिबली के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । १८६७ में 'आज़ाद' ने पहलेपहल उर्दू शायरी को 'नज़्म' नामक काव्य-रूप से परिचित कराया और लाहौर में कर्नल हालरायड (डायरेक्टर, शिक्षा विभाग, पंजाब) की सहायता से ऐसे मुशायरों की नींव रखी जिनमें शायर को ग़ज़ल का 'तरह मिसरा' देने की वजाय नज़्म के लिये कोई उपयोगी विषय दिया जाता था । स्वयं आज़ाद ने प्राकृतिक दृश्यों पर बहुत-सी कविताएँ लिखीं । उनके सम्मुख दो मौलिक सिद्धान्त थे; एक तो काव्य-विषय का अनुक्रम और दूसरे 'हुस्न व इश्क' की तंग गली से निकलकर अन्य सांसारिक विषयों का प्रयोग । परन्तु 'आज़ाद' का काम अधूरा रहता यदि इस आंदोलन का नेतृत्व 'हाली' अपने हाथ में न लेते । 'हाली' साहित्य द्वारा एक उद्देश्य सिद्ध करना चाहते थे और उन्होंने निःसन्देह उससे बहुत महत्वपूर्ण तथा महान उद्देश्य सिद्ध किया । 'मुसद्दस' द्वारा जैसी कल्याणकारी नज़्म लिखकर उन्होंने प्राचीन शायरी के रूप-रंग को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी बदल

डाला और फिर 'मुकदमा शेर-ओ-शायरी' जैसा महात् आलोचना-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखकर तो रही-सही कसर पूरी कर दी। शायरी को देवी संकेत और शायर को अमानवीय व्यक्ति कहकर प्रसन्न तथा सन्तुष्ट हो रहने वाले लोगों को पहली बार ऐसी तर्कपूर्ण बातों से चौंकाया कि :

“क्रायद है कि जिस क्रदर सोसाइटी के ख्यालात, उसकी रायें, उसकी आदतें, उसकी रगवतें (रुचियाँ), उसका मेलान (प्रवृत्ति) और मजाक बदलता है, उसी क्रदर शेर की हालत बदलती रहती है और यह तब्दीली बिल्कुल बेमालूम होती है क्योंकि सोसाइटी की हालत देखकर शायर क्रसदन अपना रंग नहीं बदलता बल्कि सोसाइटी के साथ-साथ वह खुद भी बदलता है।”

(मुकदमा शेर-ओ-शायरी)

अधिक विस्तार में न जाकर 'हाली' के काम को समझने के लिए यह कह देना पर्याप्त होगा कि जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी-काव्य को रीतिकाल की दलदल से निकालकर उपयोगिता तथा राष्ट्रवाद की राह पर लगाया था, उसी प्रकार हाली ने उर्दू की कृत्रिम इश्किया शायरी की चूलें हिला दीं और न केवल अपने काल के कवियों और साहित्यकारों का बल्कि आने वाली पीढ़ी का भी पथ-प्रदर्शन किया।

'हाली' के बाद उर्दू साहित्य में एक अंतरिम-काल आता है जिसमें पश्चिमी साहित्य से जानकारी बढ़ी। पश्चिम का काव्य साहित्य चूँकि अपने जागीरदारी काल की मंज़िलों से गुज़र कर बहुत आगे निकल चुका था इसलिए उससे प्रभावित होने वाले उर्दू कवियों ने काव्य विषय को विशाल करने के साथ-साथ उर्दू नज़्म को कलात्मक परिपक्वता भी प्रदान की। इस प्रसंग में अजमत अल्लाह खाँ का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने शायरी में नये छंदों की आवश्यकता, अंग्रेज़ी काव्य-रूपों के प्रसार, भाषा में हिन्दी शब्दों तथा प्रक्रियाओं के समावेश से स्मृद्धि पैदा करने और विचार और भावों के प्राकृतिक प्रकटीकरण पर जोर दिया और उर्दू शायरी में पहली बार ग़ज़ल के काल्पनिक 'माशूक' को हाड़-मांस प्रदान कर उसके लिए स्त्रीलिंग का प्रयोग किया। (इससे पूर्व 'माशूक' के लिए पुल्लिंग इस्तेमाल होता था जिसे प्रत्यक्ष रूप से फ़ारसी से लिया

† इस प्रसंग में आगे चलकर अख़्तर शीरानी ने उर्दू शायरी के माशूक पर 'सलमा', 'अजरा' आदि स्त्री नामों की अमिट मुहर लगा दी।

गया था)। लेकिन अजमत अल्लाह खां की शायरी केवल इस्क्रिया यथार्थवाद (जो अपने आप में बहुत बड़ा कारनामा थी) तक सीमित रही। सामूहिक रूप से उर्दू शायरी को धरती से उठाकर आकाश तक पहुँचाने का सेहरा 'इकबाल' के सिर आता है।

इकबाल के साथ-साथ या कुछ पहले अकबर इलाहाबादी, चक्कस्त, हसरत मोहानी, सरवर जहांवादी, इस्माईल मेरठी इत्यादि अपने समय के उच्चकोटि के कवियों ने साहित्य और समाज तथा साहित्य और राजनीति के सम्बन्ध को काफ़ी सुदृढ़ किया लेकिन उनमें से अधिकांश की कवितायें राजनैतिक नारों से आगे न बढ़ सकीं। इकबाल की शायरी का प्रारंभ भी यद्यपि राजनैतिक नज़्मों से हुआ किन्तु अपने समकालीन शायरों की अपेक्षा उनका राजनैतिक बोध काफ़ी आगे था। उन्होंने भारतीय राजनीति के लगभग समस्त पहलुओं को अपनी शायरी में स्थान दिया लेकिन पर्याप्त चिंतन के बाद—इसी विशेषता ने उनमें गहराई उत्पन्न की और वे न केवल अपने युग के महान् कवि बने अपितु एक दार्शनिक भी। उन्होंने हिन्दु-मुस्लिम एकता के गीत गाये, देश की मिट्टी का कण-कण उन्हें देवता नज़र आया। देश में एक 'नये शिवाले' की नींव रखने के उन्होंने ने मनसूबे बाँचे, भारतवासियों की मौलिक समस्याओं पर गहरी दृष्टि डाली और श्रमजीवियों को जागरूक होने का संदेश दिया। १९१७ ई० में जब रूस में महान् क्रान्ति हुई और दुनिया के छठे भाग में श्रमिक वर्ग ने साम्राज्य और पूँजीवाद का तख्ता उलट दिया तो इकबाल ने इसे 'बतन-ए-गेती' (जगत की कोख) से 'आफ़ताब-ए-ताज़ा' (नवप्रभात) का नाम दिया और इसके साथ ही उस रोमांटिक क्रान्तिवाद की परिपाटी पड़ी जो 'जोश' मलीहाबादी के हाथों निखरती हुई आधुनिक काल के प्रगतिशील कवियों की सम्पत्ति और काव्य-विषय बनी। हाली और इकबाल के बिना आधुनिक उर्दू शायरी को आज की मंज़िल पर पहुँचने के लिए शायद बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती।

१८५७ ई० के बाद आधुनिक उर्दू शायरी देश तथा मानव-प्रेम और साम्राज्य-विरोध की मंज़िलें तय करती हुई जब प्रथम महायुद्ध के बाद नये क्रान्तिकारी मोड़ पर पहुँची तो एक बार पुनः उसमें गतिरोध उत्पन्न हो गया। नई राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ शायरों से कुछ ऐसी माँगें करने लगीं जिन्हें स्वयं इकबाल भी पूरा न कर सके (और उन्होंने इस्लाम की दुनिया में जा शरण ली)। देश में स्वतंत्रता आन्दोलन इतना प्रबल

हो गया और किसानों के विद्रोह और मजदूरों के संगठन के भय से साम्राजी अत्याचार इतना बढ़ गया कि राजनैतिक नेताओं की भाँति लेखक तथा कवि भी इस असमंजस में पड़ गये कि आगे बढ़ें या वहीं रुक जायें—ऐसे नाजूक, महत्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक मोड़ पर कथा-साहित्य में प्रेमचन्द और काव्य-साहित्य में 'जोश' मलीहाबादी उर्दू साहित्य के नेतृत्व के लिये आगे बढ़े। प्रेमचन्द ने साहित्य में यथार्थवाद की नींव डाली और जोश ने रोमांसवाद को आगे बढ़ाया और अपनी एजीटेशनल नज़्मों द्वारा अंग्रेज़ी शासन और उसके अन्याय तथा अत्याचारों पर आक्रमण किये। स्वतंत्रता संग्राम में मर-मिटने के लिए नौजवानों को ललकारा। हर प्रकार की राजनैतिक समझौतावाजी पर लानतें भेजीं और साम्यवाद के उगते हुए सूरज की ओर ऐसा स्पष्ट संकेत किया कि उनके बाद आने वाला प्रत्येक प्रगतिशील कवि उस सूरज के प्रकाश में नहा गया। इन्हीं दो महान् साहित्यकारों के नेतृत्व में लेखक तथा कवि एक यात्री-दल का रूप धारण कर गये और इस दल ने १९३५ ई० में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की नींव डाली।

प्रगतिशील लेखक संघ की नींव डालने वाले और उसके घोषणा-पत्र के प्रस्तावक सज्जात जहीर, मुल्कराज आनन्द आदि ऐसे तरुण परन्तु शिक्षित लेखक थे जिन्होंने अपने प्राचीन, अर्वाचीन साहित्य के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य और उसकी धाराओं का गहरा अध्ययन किया था। 'साहित्य को जीवन का प्रतीक' बनाने के साथ-साथ वे उसे 'भविष्य के निर्माण का प्रभाव-शाली साधन' बनाना चाहते थे और चाहते थे कि 'भारत का नया साहित्य हमारे जीवन की मौलिक समस्याओं को अपना विषय बनाये—ये भूख, निर्धनता, सामाजिक विषमता तथा परतन्त्रता की समस्याएँ हैं।'।

यह आवाज़ इतनी शक्तिशाली तथा सक्रिय थी कि न केवल तरुण कवि और लेखक इससे प्रभावित हुए बल्कि उस समय के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों ने इसका स्वागत किया। काव्य साहित्य को उस समय तक आज़ाद, हाली, शिबली, इक़बाल और जोश जो चितनशीलता प्रदान कर चुके थे, नई पौध के कवियों ने उसे और विशाल किया और आज जब हम १९३५ ई० के बाद के उर्दू काव्य-साहित्य का निरीक्षण करते हैं तो इसकी असाधारण उन्नति पर आश्चर्य प्रकट किये बिना नहीं सकते। आज की उर्दू शायरी को किसी कोण से देख लीजिये, वह संसार की उन्नत से उन्नत भाषा के काव्य साहित्य का मुक़ाबिला कर सकती है।

: छ :

इस संकलन में जैसा कि इसके नाम से प्रत्यक्ष है, केवल आज के उर्दू शायरों की रचनाओं का संकलन प्रस्तुत किया गया है। परन्तु आज के उर्दू शायर संख्या में कुछ कम नहीं हैं। उनमें एक बड़ी संख्या ऐसे शायरों की भी है जो उर्दू-साहित्य में अपने नाम तथा काम के लिए अमर स्थान प्राप्त कर चुके हैं परन्तु कई एक विवशताओं के कारण वे सभी इस संकलन की शोभा नहीं बन सके, जिन्हें इस संग्रह में नहीं लिया जा सका, उनसे मैं हार्दिक क्षमा चाहता हूँ।

—प्रकाश पण्डित

—उन शायरों के नाम जो इस पुस्तक की शोभा नहीं बन सके



‘जोश’ मलीहाबादी

काम है मेरा तग़य्युर नाम है मेरा शबाब
मेरा नारा इन्क़िलाबो-इन्क़िलाबो-इन्क़िलाब

परिचय

पब्लिकेशनज़ डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली, के एक चौकोर कमरे में, जो मासिक-पत्रिका 'आजकल' (उर्दू) के सम्पादक का कमरा है, सुखी-सफ़ेद चेहरे, चौड़े माथे, भारी-भरकम देह और अत्यन्त रौबीले व्यक्तित्व के मालिक एक सज्जन ने पान की डिबिया से पान निकालकर मुँह में डाला, फिर बटुए से छालिया निकालते हुए सामने कुर्सियों और सोफ़ों पर विराजमान आठ-दस व्यक्तियों में से एक से कहा :

“कहिये, खैरियत तो है ?”

“जी, नवाज़िश है । आप फ़र्माइये आपके मिज़ाज कैसे हैं ?”

“मेरे मिज़ाज ?” क़िवाम की शीशी में से थोड़ा-सा क़िवाम मुँह में डालते हुए उस रौबीले व्यक्ति ने कहा, “मेरा तो एक ही मिज़ाज है साहब ! पोते अलबत्ता बहुत से हैं ।”

“ओह, मुआफ़ कीजियेगा,” संबोधित व्यक्ति ने एक वचन तथा बहुवचन की अपनी भूल को स्वीकार करते हुए कहा ।

“कैसे तशरीफ़-आवरी हुई ?” रौबीले व्यक्ति ने फिर पूछा ।

“जी, बहुत अर्स से नियाज़ हासिल नहीं हुआ था, सोचा...”

लेकिन इससे पूर्व कि वे कुछ सोचते या सोची हुई बात कहते उस रौबीले व्यक्ति ने उन्हें एक और पटखनी दे डाली :

“अच्छा, अच्छा, बहुत मैदान^१ से नियाज़ हासिल नहीं हुआ ।”

“ओह, मुआफ़ फ़र्माइयेगा,” सम्बोधित व्यक्ति बोखलाकर चुप हो गया ।

१. अरबी शब्द 'अर्स' के शाब्दिक अर्थ 'मैदान' के हैं ।

अब उस रौबीले व्यक्ति ने, जो स्वभाव से बहुत भुलक्कड़ माछूम होता था, शायद किसी काम के याद आ जाने से हवा में एक प्रश्न उछाला : “आज क्या तारीख है ?”

“उन्नीस ।” उन आठ-दस व्यक्तियों में से उत्तर देने वाले ने भय तथा विश्वास के मिले-जुले स्वर में कहा ।

“शायद उन्नीस से आपकी मुराद उन्नीसवीं तारीख से है ।”

“जी हाँ, जी हाँ,” फिर वही पहले व्यक्ति की सी बौखलाहट का प्रदर्शन हुआ ।

“हद है साहब,” रौबीले व्यक्ति ने कहना शुरू किया । “यह नई नसल जवान का सत्यानास कर देगी । क्यों जनाव, बीसवीं सदी को आप बीस सदी कहेंगे ?”

“जी गलती हो गई” गलती करने वाले ने और भी लज्जित होकर कहा और चुप हो गया । लेकिन थोड़ी देर के बाद मैंने (मैं भी उसी महफ़िल में था) ज़रा साहस से काम लेते हुए कहा, “लेकिन जोश साहब ! लोग तो उन्नीसवीं तारीख को उन्नीस तारीख ही कहते हैं ।”

उस भारी-भरकम देह और रौबीले व्यक्तित्व के मालिक ‘जोश’ मलीहाबादी ने व्यंग्मात्मक स्वर में कहना शुरू किया, “लोग तो इस मुल्क के जाहिल हैं, साहबज़ादे ! मैं आम लोगों से नहीं, तुम लोगों से मुखातिब हूँ । तुम लोग जो अपने आपको अदीब और शायर कहते हो, अगर तुम लोगों ने ही जवान की हिफ़ाज़त करने के बजाय उसे बिगाड़ना शुरू कर दिया तो……”

अब ‘जोश’ साहब बाकायदा भाषण दे रहे हैं । कुछ बातें वे ठीक कह रहे हैं और कुछ ऐसी भी कह रहे हैं जिनमें आक्षेप की गुँजायश निकल सकती है, लेकिन श्रोताओं में से किसी में आक्षेप करने का साहस नहीं । ये बातें भाषा तथा साहित्य, धर्म तथा राजनीति, सामाजिक वन्धनों, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, मानव विकास, समाज में नारी के स्थान, जागीरदारी, पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, अर्थात् संसार भर के विषयों पर होती हैं और वे इन पर निरन्तर बोल सकते हैं । वे बोल रहे हैं और श्रोतागण चुप हैं । ‘जोश’ साहब का साहित्यिक स्थान, बुजुर्गों और रौबीला व्यक्तित्व उनमें उनकी किसी ग़लत बात पर भी आक्षेप करने का साहस उत्पन्न नहीं होने देता कि एकाएक स्वयं जोश साहब ही अपनी किसी दूसरी बात में अपनी पहली बात का खण्डन करने लगते हैं । एक ओर साम्यवाद को मानव-मुक्ति का एक-मात्र साधन बताते हैं तो

दूसरी ओर मशीन पर हल को और नागरिक जीवन पर ग्राम्य जीवन को प्रधानता देते हैं। ज्ञान को नारी के सौन्दर्य की मृत्यु और नारी को पुरुष के सुख-वैभव का एक साधन मानते हैं।

‘जोश’ साहब के व्यक्तित्व की यह दोरुखी उनकी पूरी शायरी में भी, जो लगभग आधी सदी में फैली हुई है, विद्यमान है। और इसकी पुष्टि करते हैं ‘अशों-फ़र्श’ (धरती और आकाश) ‘शोला-ओ-शबनम’ (आग और ओस) ‘सुंबलो-सलासिल’ (सुगन्धित घास और जंजीरें) इत्यादि उनके कविता-संग्रहों के नाम; और उनकी निम्नलिखित रुबाई से तो उनकी पूरी शायरी के नैन-नक्श सामने आ जाते हैं :

भुकता हूँ कभी रेगे-रवाँ^१ की जानिव,
उड़ता हूँ कभी कहकशाँ^२ की जानिव,
मुझ में दो दिल हैं, एक मायल-ब-जमी^३,
और एक का रुख है आसमां की जानिव।

‘जोश’ की शायरी की इस परस्पर-विरोधी-अवस्था को समझने के लिए जिसमें एक साथ खैयाम, हाफ़िज़, गेटे, नतशे और कार्ल मार्क्स का दर्शन विद्यमान है, आवश्यक है कि उस वातावरण को, जिसमें शायर का पालन-पोषण हुआ, और उन सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों को, जिनमें शायर ने अपनी आंख खोली, सामने रखा जाए, क्योंकि मनुष्य का सामाजिक-बोध सदैव समाज के परिवर्तन-शील भौतिक मूल्यों का बंदी होता है और वह चीज़ जिसे ‘घुट्टी’ कहा जाता है मनुष्य के जीवन में बहुत महत्व रखती है।

शबीर हसन खां ‘जोश’ १८९४ में मलीहाबाद (उत्तर-प्रदेश) में पैदा हुए। जाति के पठान और रहन-सहन से लखनवी। परदादा फ़कीर मोहम्मद ‘गोया’ अमीर-उद्दौला की सेना में रिसालदार भी थे और साहित्य-क्षेत्र के महारथी भी। ग़ज़लों का एक संग्रह तथा गद्य की एक प्रसिद्ध पुस्तक छोड़ी। ‘गोया’ के पुत्र मोहम्मद खां अहमद भी एक प्रतिभाशाली शायर थे। यों ‘जोश’ ने उस जागीरी वातावरण में पहली सांस ली जिसमें काव्य की रुचि के साथ-साथ घमण्ड, आत्मश्लाघा और अहम्मन्यता की भावना शिखर पर थी। गांव का कोई प्राणी यदि खींचे हुए धनुष की भान्ति शरीर को दोहरा करके सलाम न करता था तो मारे कोड़ों के उसकी खाल उधेड़ दी जाती थी। (स्वयं ‘जोश’

१. आंधी-भूकड़ से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाली रेत।

२. आकाश-गंगा ३. धरती की और बढ़ने वाला।

साहब भी एक शरीर पर अपनी छड़ी आजमा चुके हैं।) प्रत्यक्ष है कि जन्म लेते ही 'जोश' इस वातावरण से दामन न छुड़ा सकते थे। उनमें भी वही आदतें उत्पन्न हो गईं जो उनके पूर्वजों का स्वभाव बन चुकी थीं। अतः अपनी मानसिक स्थिति के सम्बन्ध में एक स्थान पर वे स्वयं लिखते हैं : "मैं लड़कपन में अत्यन्त क्रूर था। मेरे हर बोल से जैसे चिंगारियां निकलती थीं.....मेरे स्वभाव की यही मौलिक कटुता मेरी राजनैतिक शायरी में तीखा-कड़वा स्वर बनकर आज भी व्यक्त होती है और मेरी शायरी का समालोचक मेरे स्वर की कर्कशता पर चीख उठता है।"

स्वर की इस कर्कशता ने जोश के सामाजिक सम्बंधों पर कुठाराघात किया। उन्होंने अपने पिता से विद्रोह किया। पूरे कुल से विद्रोह किया। धर्म, राज्य, समाज अर्थात् हर उस चीज से विद्रोह किया जो उन्हें अपने स्वभाव के प्रतिकूल प्रतीत हुई और विद्रोह के इस सिलसिले ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि कई स्थानों पर उन्होंने केवल विद्रोह के लिए विद्रोह किया और स्वयं को सर्वोपरि तथा सर्वोच्च समझ कर :

"दूसरे आलम^१ में हूँ दुनिया से मेरी जंग है।"

कहा और

काम है मेरा बगावत नाम है मेरा शवाब^२।

मेरा नारा इंकिलाबो-इंकिलाबो-इंकिलाब^३ ॥

का नारा लगाया।

उन्होंने बगावत और इंकिलाब (विद्रोह तथा क्रांति) का एक ही अस्तित्व माना और उसी रूप में उन्हें हमारे सामने पेश किया और देश की जनता ने जो अंग्रेजी राज्य में बुरी तरह पिस रही थी और देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रही थी, उनके इस नारे को उठा लिया। वह एक विचित्र संघर्षपूर्ण काल था। इधर भारत साम्राज्य की जंजीरों में जकड़ा हुआ स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ रहा था और उधर रूस की क्रांति के बाद एक नया जीवन-दर्शन सारे संसार को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। अंग्रेजों ने इस नये दर्शन की वास्तविक रूप-रेखा भारत तक नहीं पहुँचने दी और न ही उस समय भारत में श्रमजीवियों का कोई ऐसा संगठित दल था जो वर्गीय हितों के आधार पर उस स्वतन्त्रता-संग्राम तथा जीवन-व्यवस्था का विश्लेषण करके

१. संसार २. यौवन ३. बाद को 'जोश' साहब ने स्वयं ही बगावत शब्द के स्थान पर शब्द तगायतुर (परिवर्तन) कर दिया।

सच्चा पथप्रदर्शन करता । अतएव क्रान्ति को, जिसका वास्तविक अर्थ सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन है, देश की केवल राजनैतिक स्वतन्त्रा के अर्थों में लिया गया और विद्रोही शायर 'जोश' को 'शायरे-इंक्लाब' (क्रांतिकारी कवि) की उपाधि दी गई (हालाँकि 'जोश' से पहले 'इक़बाल' एक हद तक क्रान्ति का सही बोध दे चुके थे) ।

'जोश' का यथोचित साहित्यिक स्थान आँकने में, 'सरदार जाफ़री' के कथनानुसार सब से बड़ी चूक 'शायरे-इंक्लाब' की उपाधि के कारण होती है । 'क्रांति' का शब्द आज के समालोचकों की विचारधारा को ग़लत मार्ग पर डाल देता है, और वे 'जोश' से ऐसी आशाएं सम्बद्ध कर लेते हैं जो उनकी शायरी पूरी नहीं कर सकती । 'जोश' की प्रत्यक्ष तथा सीधी-सादी एजीटेशनल (आन्दोलनात्मक)^१ कविताओं को, जिन्होंने निःसंदेह अपने युग में बहुत बड़ा कार्य किया, भूल से क्रांतिकारी कविताओं का नाम दिया गया । यह भूल केवल राष्ट्रीय तथा विद्रोहात्मक कविताओं तक ही सीमित नहीं रही, 'जोश' की कुछ क्रांतिवादी कविताओं को परखने में भी यही भूल की गई है । क्रांतिकारी कविताओं में और क्रांतिवादी कविताओं में थोड़े से हेर-फेर के साथ लगभग वही अंतर है जो यथार्थवाद और रोमांसवाद में है; क्रांति के परिपुष्ट बोध और

१. 'ईस्ट-इंडिया कम्पनी के फ़र्जदों (बेटों) के नाम', 'वफ़ादाराने-अज़ली (अनादिकालिक राज्यभक्तों) का पयाम शहनशाहे-हिन्दोस्तान के नाम' और 'शिकस्ते-ज़िदां (जेल के टूटने) का ख़्वाब' ऐसी कवितायें हैं जिनकी हज़ारों कापियां चोरी-छुपे बंटों, लाखों ज़बानों पर आई और बहुत-से लोग स्ट्रेज पर इन्हें पढ़ने से गिरफ़्तार हुए । यहां यह चर्चा असम्बद्ध न होगी कि वास्तविक अर्थों में क्रांतिवादी कवितायें न होने पर भी इन कविताओं ने आज की क्रांतिकारी कविता के लिए मार्ग समतल किया है, और उर्दू में एक नये प्रकार की सांग्रामिक (Militant) शायरी की नींव डाली है । 'जोश' से पूर्व स्वर की यह घन-गरज, पहाड़ी भरने का सा प्रवाह तथा शब्दों की ऐसी जादूगरी उर्दू के किसी शायर को प्राप्त नहीं हुई । अपनी इन कविताओं द्वारा उन्होंने राष्ट्र को अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध उभारा, प्रतिक्रियावादी संस्थाओं का भंडा-फोड़ किया, मूढ़ता, धर्म-सम्बन्धी उन्माद, अन्धविश्वास और परम्परागत नैतिकता की जंजीरों काटने की प्रेरणा दी । उनके अध्ययन से आज भी हमारा लहू गर्म हो जाता है और अपने देश, अपनी जाति, अपनी सम्यता, संस्कृति और अपने साहित्य तथा कला से हमारा प्रेम दुगुना हो जाता है ।

आशावाद में है। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि आज यदि क्रांति की उद्भावना सुस्पष्ट हो चुकी है और हम पूरे विश्वास के साथ शुद्ध-अशुद्ध की परख कर सकते हैं तो आधी सदी तक पूरे के पूरे राष्ट्र को प्रभावित करने वाली 'जोश' की शायरी अपने स्थान से हट गई है। क्योंकि यह एक ऐतिहासिक सचाई है कि किसी की दुर्व्यवस्थाओं के विरुद्ध घृणा का नकारात्मक भाव ही (जबकि सामाजिक बोध अप्रौढ़ हो) आगे चलकर स्वीकारात्मक रूप धारण करता है और वह घृणा-भाव आप-ही-आप वैज्ञानिक दृष्टिकोण में ढल जाता है। लैनिन ने टाल्स्टाय के सम्बन्ध में कहा था कि टाल्स्टाय अध्यात्मवादी है लेकिन उसने रूसी किसानों को बहुत समीप से देखा और समझा है, अतः उसके साहित्य से रूस की क्रांति को पूरी एक सदी की मंजिल मारने में सहायता मिली है। ठीक यही बात 'जोश' की शायरी के बारे में कही जा सकती है। 'जोश' की शायरी ने भारत के क्रांति-आंदोलन के लिए न केवल रास्ता साफ़ किया बल्कि हजारों-लाखों नौजवानों को क्रांति-नांग्राम के लिए तैयार किया।

'जोश' मलीहाबादी बड़े निडर, साहसी तथा भावुक हैं। अभी वे आपकी भाषा तथा शैली की त्रुटियाँ गिनवा रहे हैं और अभी आपके किसी लेख या शेर की प्रशंसा कर रहे हैं। अभी नई पीढ़ी के लेखकों को कोस रहे हैं और अभी साहित्य की बागडोर उनके हाथों में थामकर निश्चित हो जाते हैं। अभी किसी के दुर्व्यवहार पर अपना रोष प्रकट कर रहे हैं और भरी सभा^१ में उसे कभी मुँह न लगाने की सीगंधें खा रहे हैं कि उस व्यक्ति ने आकर उनके कान में कुछ कहा और उन्होंने लोगों की नज़रें बचाकर नोटों की एक गड्डी उसकी जेब में डाल दी। प्रधान-मंत्री से लेकर सिटी-मजिस्ट्रेट तक और

१. शायद ही कोई समय हो जब उन्हें एकांत प्राप्त होता हो, अन्यथा क्या घर और क्या दफ़्तर, लोगों का एक समूह हर समय उन्हें घेरे रहता है। पिछले दिनों लोगों के आक्रमणों से तंग आकर उन्होंने अपने दफ़्तर में एक तस्ती लगवा दी थी जिस पर अंग्रेज़ी अक्षरों में लिखा था कि "यदि आप समय बिताने के विचार से यहाँ पधारे हैं तो सूचनार्थ निवेदन है कि यह स्थान इस प्रयोजन के लिए नहीं है।" लेकिन दूसरे दिन भी जब एक चौकड़ी सुबह से शाम तक उनके कमरे में जमी रही तो उन्होंने घूम कर तस्ती की ओर देखा। देखा तो तस्ती पर से "नहीं" गायब था और अब तस्ती पर की पंक्तियों का अर्थ यह था कि यही वह स्थान है जहाँ आप अपना समय बिता सकते हैं। कुछ लोगों का खयाल है कि यह तबदीली स्वयं 'जोश' साहब ने ही की थी।

नवाब रामपुर से लेकर उनकी मोटर के ड्राइवर तक प्रत्येक व्यक्ति को उनके प्रति गहरी श्रद्धा है। अतः आपके कहने भर की देर है, वे आपके भाई की सौ-सवा-सौ की नौकरी के लिए शिक्षा-मंत्री या खाद्य-मंत्री को टेलीफोन कर देंगे या स्वयं मिलने निकल खड़े होंगे और आपके किराये के तीन रुपये बचाने के लिए दस मील प्रति गैलन खाने वाली उनकी यह लम्बी ब्यूक आपको अलीगढ़ पहुँचाने के लिए रवाना हो जाएगी। किसी ऐसे मुशायरे में जिसमें मुस्लमानों की संख्या अधिक हो, वे जान-बूझकर ऐसी खाइयाँ सुनायेंगे जिनमें मुस्लमानों और खुदापरस्तों को गालियाँ दी गई हों। सरकारी ढंग की महफ़िल होगी तो उन्हें अपनी नज़म 'मातमे-आज़ादी' याद आजायेगी और महिलाओं की संख्या अधिक देखेंगे तो मजे ले-लेकर 'हाय जवानी, हाय ज़माने' अलापना शुरू कर देंगे। मुस्लाम लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं, सरकारी दफ़्तरों में टीका-टिप्पणी होती है, और महिलायें 'वाँक-आउट' तक कर जाती हैं, लेकिन जोश की 'कलंदरी' में फ़र्क नहीं आता। शायद वे जानते हैं (और बिल्कुल ठीक जानते हैं) कि अब वे ख्याति के उस शिखर पर पहुँच चुके हैं जहाँ किसी की अनुचित बातों पर भी क्रोध के बजाय प्यार ही आ सकता है।

आश्चर्य और दुख की बात है कि उर्दू का यह प्रसिद्ध तथा सर्वप्रिय शायर पिछले दिनों स्थायी रूप से पाकिस्तान में जा बसा है। और और भी आश्चर्य और दुख की बात यह है कि 'जोश' से कभी इस बात की आशा नहीं की जा सकती थी कि वह 'बिक' भी सकता है, यद्यपि कुछ लोगों का अब भी यह खयाल है कि "आखरी उम्र में क्या खाक मुसलमान होंगे"।

गद्दार से खिताब

उंगलियां उट्ठेंगी दुनियां में तेरी औलाद पर ।
 गलगला होगा वो आते हैं रज्जालत^१ के पिसर^२ ॥
 तेरी मस्तूरात^३ का बाज़ार में होगा क्रयाम ।
 मारिज़े-दुशनाम^४ में तेरा लिया जाएगा नाम ॥
 उस तरफ़ मुंह करके थूकेगा न कोई नौजवाँ ।
 बर की हसरत में रहेंगी तेरे घर की लड़कियां ॥
 क्या जवानों के ग़ज़ब का ज़िक्र ओ इब्ने-खिताब^५ !
 सुन के तेरा नाम उड़ जायेगा बूढ़ों का खिज़ाब ॥
 फ़ाश^६ समझी जायेगी महलों में तेरी दास्तां ।
 कांप उठेंगी ज़िक्र से तेरे कँवारी लड़कियां ॥
 आएगा तारीख़ का जिस वक़्त जुबिश में क़लम ।
 क़त्ल तेरी दे उठेगी लौ जहन्नुम की क़सम ॥

१. नीचता २. बंशज ३. औरतों ४. गाली देने के सम्बन्ध में
 ५. उपाधियों के लिए लालायित ६. अश्लील

पस्त क्रौम

गर्दन का तोक्र^१ पांव की जंजीर काट दे ।
 इतनी गुलाम क्रौम में हिम्मत कहां है 'जोश' ?
 अपनी तबाहियों पे कभी गौर कर सके ।
 इतनी जलील मुल्क को फुर्सत कहां है 'जोश' ?
 इक हर्फे-गर्म^२ सुनते ही लौ दे उठे दिमाग ।
 हिन्दोस्तान में वो हरात^३ कहां है 'जोश' ?

मक्रतले-कानपुर

ऐ सियह-रू^४ , बेहया, वहशी, कमीने, बदगुमां ।
 ऐ जबीने-अर्ज के दाग^५ , ऐ दानि-ए-हिन्दोस्तां^६ ॥
 तुझ पे लानत ऐ फिरंगी के गुलामे-बेशऊर^७ ।
 ये फ़जा-ए-सुलहपरवर^८ , ये क़ताले-कानपूर^९ ॥
 तेगे-बुरी^{१०} और औरत का गला क्यों बदसिफ़ात^{११} ।
 छूट जाएं तेरी नब्जें, टूट जायें तेरे हात ॥
 कोहनियों से ये तेरी कैसा टपकता है लहू ?
 ये तो है ऐ संगदिल ! बच्चों का खूने-मुश्कबू^{१२} ॥
 मर्द है तो उससे लड़ पहले जो मारे फिर मरे ।
 तू ने बच्चों को चबा डाला खुदा शारत करे ॥
 तू ने ओ बुज्जदिल ! लगाई है घरों में जिन से आग ।
 क्या उन्हीं हाथों में लेगा रखो-आज़ादी की बाग^{१३} ॥
 इस तरह इन्सान और शिद्दत^{१४} करे इन्सान पर ।
 तुफ़ है तेरे दीन पर, लानत तेरे ईमान पर ॥

१. फंदा २. गर्म शब्द ३. गर्मी ४. काले चेहरे वाले ५. घरती
 के माथे के दाग ६. भारत के नीच ७. मूर्ख गुलाम ८. शान्ति-दायक
 वातावरण ९. (१९३१ में) कानपुर में जो हिन्दू-मुस्लिम फ़साद हुआ था,
 उसकी ओर संकेत है । १०. काटने वाली (तेज़) तलवार ११. नीच
 १२. सुगन्धित रक्त १३. स्वतंत्रता के घोड़े की बाग १४. अत्याचार

सांस लो या खुश रहो

कसम उस मौत की, उठती जवानी में जो आती है,
उरूसे-नौ^१ को बेवा, मां को दीवाना बनाती है ।

जहां से भुटपुटे के वक्त एक ताबूत^२ निकला हो,
कसम उस शब की जो पहले-पहल उस घर में आती है ।

अजीजों की निगाहें हूँढ़ती हैं मरने वाले को,
कसम उस सुबह की जो गम का यह मंजर^३ दिखाती है ।

कसम साइल^४ के उस अहसास की जब देखकर उसको,
सियाही दफ़्तर^५ कंजूस के माथे पे आती है ।

कसम उन आंसुओं की मां की आंखों से जो बहते हैं,
जिगर थामे हुए जब लाश पर बेटे की आती है ।

कसम उस बेबसी की, अपने शौहर के जनाजे पर,
कलेजा थाम कर जब ताजा दुल्हन सर भुकाती है ।

नजर पड़ते ही एक जी-मर्तबा^६ मेहमां के चेहरे पर,
कसम उस शर्म की मुफ़लिस^७ की आंखों में जो आती है ।

कि ये दुनियां सरासर खाब और खाबे-परीशां^८ है,
'खुशी' आती नहीं सीने में जब तक 'सांस' आती है ।

१. नई दुल्हन २. अर्थी ३. दृश्य ४. भिखारी ५. एकाएक
६. प्रतिष्ठित व्यक्ति ७. निर्धन ८. आकुल-आतुर स्वप्न

ये कौन उठा है शर्माता ?

ये कौन उठा है शर्माता रैन का जागा, नींद का माता
नींद का माता धूम मचाता अंगड़ाइयां लेता, बल खाता

ये कौन उठा है शर्माता ?

रुख^१ पे सुखीं, आंख में जादू भीनी-भीनी बर^२ में खुशबू
बांकी चितवन, सिमटे अबरू^३ नीची नजरें, बिखरे गेसू^४

ये कौन उठा है शर्माता ?

नींद की लहरें गंगा जमुनी जित्द के नीचे हल्की-हल्की
आंचल ढलका, मसकी साड़ी हल्की महंदी, धुंदली बेंदी

ये कौन उठा है शर्माता ?

डूबा हुआ रुख ताबानी में^५ अनवारे - सहर^६ पेशानी में
या आबे-गुहर^७ तुशयानी^८ में या चांद का मुखड़ा पानी में

ये कौन उठा है शर्माता ?

रुखसार^९ पे मौजे-रंगीनी^{१०} कच्ची चांदी, सुचची चीनी
आंखों में नकूशे-खुदबीनी^{११} मुखड़े पे सहर^{१२} की शोरीनी^{१३}

ये कौन उठा है शर्माता ?

आंख में गलतां^{१४} इशरतगाहें^{१५} नींद की सांसों जैसे आहें
बिखरी जुल्फें उरियां^{१६} बांहें जान से मारें जिसको चाहें

ये कौन उठा है शर्माता ?

१. चेहरे २. बगल ३. भौंहें ४. केश ५. मुखड़ा प्रकाश में डूबा हुआ है ६. सुबह का प्रकाश ७. मोती का पानी ८. ज्वार ९. कपोल १०. रंगीन धारा ११. आत्माभिमान के चिह्न १२. प्रभात १३. मधुरता १४. डूबे हुए १५. विलासग्रह १६. नग्न

फैला-फैला आंख में काजल उलभा-उलभा जुल्फ का बादल
नाजुक गरदन, फूल-सी हेकल^१ सुख पपोटे नींद से बोभल

ये कौन उठा है शर्माता ?

कुछ जाग रही, कुछ सोती है हर मौजे-सबा^२ मुंह धोती है
नामुफ़ता रुख^३ या मोती है अंगड़ाई से जिज्ञ-बिज्ञ^४ होती है

ये कौन उठा है शर्माता ?

चेहरा फीका नींद के मारे फीकेपन में शहद के धारे
जो भी देखे जान को वारे धरती माता बोभ सहारे

ये कौन उठा है शर्माता ?

हलचल में दिल की बस्ती है तूफ़ाने - जुनूं में^५ हस्ती है
आंख में शब की मस्ती है और मस्ती दिल को डसती है

ये कौन उठा है शर्माता ?

१. गले का तावीज २. प्रभात-समीर का भोंका ३. अनबिधा
(सुकुमार) चेहरा ४. तंग, परेशान ५. उन्माद के तूफ़ान में

ऐतराजे-अज्ज^१

लोग कहते हैं कि मैं हूँ शायरे - जादूबयां^२ ।
 सदरे-माना^३ , दावरे-अलफ़ाज^४ , अमीरे-शायरां^५ ॥
 और खुद मेरा भी कल तक खैर से ये था खयाल ।
 शायरी के फ़न में हूँ मिनजुमला-ए-अहले-कमाल^६ ॥
 लेकिन अब आई है जब इक-गोना^७ मुझ में पुस्तगी ।
 जहन^८ के आईने पर कांपा है अक्से-आगही^९ ॥
 आसमां जागा है सर में और सीने में जमीं ।
 अब मुझे महसूस होता है कि मैं कुछ भी नहीं ॥
 जिहल^{१०} की मंजिल में था मुझ को गरूरे-आगही ।
 इतनी लामहदूद^{११} दुनिया और मेरी शायरी !
 जुल्फ़े-हरती^{१२} और इतने बेनिहायत पेचो-खम ।
 उड़ गया रंगे-तअल्ली^{१३} , खुल गया मेरा भरम ॥
 मेरे शेरों में फ़क़त इक तायराना^{१४} रंग है ।
 कुछ सियासी रंग है, कुछ आशिक़ाना रंग है ॥
 चहचहे कुछ मौसमों के, ज़मज़मे^{१५} कुछ ज़ाम के ।
 दैरे-दिल में^{१६} चंद मुखड़े मरमरीं असनाम के^{१७} ॥
 चंद जुल्फ़ों की सियाही, चंद रखसारों^{१८} की आब ।
 गाह^{१९} हरफ़े-बेनवाई^{२०} , गाह शोरे-इंक्रिलाब ॥

१. हीनता की आत्म-स्वीकृति २. जिसके बयान में जादू हो ३, ४, ५. अर्थों का बादशाह, शब्दों का हाकिम, शायरों का नेता ६. सबसे बड़े हुओं में ७. ज़रा-सी ८. मस्तिष्क ९. बुद्धि का प्रतिबिम्ब १०. अज्ञानता ११. विशाल, असीम १२. विश्व-केश १३. शेखी का रंग १४. छिछला १५. गीत १६. दिल के मन्दिर में १७. मरमर की मूर्तियों (प्रेमिकाओं) के १८. कपोलों १९. कभी २०. बेसामानी (बिबशता) की चर्चा

वस्त्र^१ के दो-चार नगमे, हिज्र^२ की एक-आध आह ।
 क़अर^३ से नावाक़फ़ियत, सतहे-दरिया^४ पर निगाह ॥
 गाह मरने के अज़ायम^५, गाह जीने की उमंग
 बस यही सतही^६ सी बातें, बस यही ओछे से रंग ॥
 बेखबर था मैं कि दुनिया राज़-अंदर-राज़ है ।
 वो भी गहरी ख़ामशी है जिसका नाम आवाज़ है ॥
 इब्तिदा-ओ-इतिहा का इल्म नज़रों से निहां^७ ।
 टिमटिमाता-सा दिया, दो जुलमतों^८ के दर्मियां ॥
 अंजुमन^९ में तख़ल्लिये^{१०} हैं, तख़ल्लियों में अंजुमन ।
 हर शिकन में इक खिचावट, हर खिचावट में शिकन^{११} ॥
 पैक़रे-हस्ती^{१२} पे ढीला है मज़ाहिर^{१३} का लिबास ।
 और मैं इसकी ज़रा-सी इक शिकन से रुशनास^{१४} ॥
 क्यों न फिर समझूं सुबक^{१५} अपने सुखन के रंग को ।
 नुत्क^{१६} ने अलमास^{१७} के बदले तराशा संग^{१८} को ॥
 पा रहा है शायद अब इस तीरह^{१९} हल्के से निजात ।
 क्योंकि अब पेशे-नज़र हैं उक़दाहाए-कायनात^{२०} ॥
 ये भिंची उलभी ज़मीं, ये पेच-दर-पेच आसमां ।
 अलअमानो - अलअमानो - अलअमानो - अलअमां^{२१} ॥
 एक मुन्ना सा सितारा, एक नन्हा सा शरार^{२२} ।
 ये तज़लजुल^{२३}, ये तलातुम^{२४}, ये तमव्वुज^{२५}, ये फ़िशार^{२६} ॥

१. मिलन २. वियोग ३. गहराई ४. नदी के स्तर
 ५. संकल्प ६. छिछली ७. छुपा हुआ ८. अन्धेरो ९. जन-समूह
 १०. एकांत ११. सलबट १२. अस्तित्व की काया १३. दृश्यों
 १४. परिचित १५. हल्का १६. वाक्-शक्ति १७. हीरे १८. पत्थर
 १९. अन्धेरे २०. विश्व की गुत्थियाँ मेरे सामने हैं २१. खुदा की
 पनाह ! २२. चिंगारी २३, २४, २५, २६. भूचाल, तूफ़ान, ज्वार-
 भाटा, अफ़रातफ़री

इक नफ़स^१ का तार और ये शोरे-उम्रे-जाविदां^२ ।
 इक कड़ी और उसमें जंजीरों के इतने कारवां ॥
 इक सदा^३ और उसमें ये लाखों हवाई दायरे ।
 जिनकी आवाज़ें अगर सुन ले तो दुनियां गूँज उठे ॥
 एक बूंद और हफ़्त कुलज़म^४ के हिला देने का जोश ।
 एक गूंगा ख़्वाब, और ताबीर^५ का इतना ख़रोश^६ ॥
 इक कली और उसमें सदियों की मता-ए-रंगो-बू^७ ।
 सिर्फ़ इक लम्हे की रग में और करनों^८ का लहू ॥
 हर क़दम पर नस्ब^९ और इसरार^{१०} के इतने ख़याम^{११} !
 और इस मंज़िल में मेरी शायरी मेरा कलाम !
 जिसमें इल्मे - आस्मां है और न इसरारे-जमीं ।
 एक ख़स^{१२}, इक दाना, इक जौ, एक ज़र्रा भी नहीं ॥
 नौ-ए-इन्सानी^{१३} को जब मिल जायेगी रफ़्तारे-नूर^{१४} ।
 शायरे-आज़म का तब होगा कहीं जाकर ज़हूर^{१५} ॥
 खाक से फूटेगी जब उम्रे - अबद^{१६} की रोशनी ।
 भाड़ देगी मौत को दामन से जिस दिन ज़िन्दगी ॥
 जब बशर^{१७} की छूतियों की गर्द होगी कहकशां^{१८} ।
 तब जनेगी नस्ले - आदम शायरे - जादू - बयां ॥
 फ़िक्क में कामिल^{१९}, न फ़न्ने-शेर^{२०} में यकता^{२१} हूँ मैं ।
 कुछ अगर हूँ तो नक़ीबे - शायरे - फ़र्दा^{२२} हूँ मैं ॥

१. साँस २. अमर जीवन का कोलाहल ३. शब्द ४. सात समुद्र
 ५. स्वप्न-फल ६. शोर, वावेलाला ७. रंग और सुगंध की राशि
 ८. शताब्दियों ९. गड़े हुए १०. भेदों ११. ख़ैमे १२. तिनका
 १३. मनुष्य जाति १४. प्रकाश की सी तेज़ गति १५. आविर्भाव
 १६. अमर जीवन १७. मनुष्य १८. आकाश-गंगा १९. चिंतन में
 पारंगत २०. काव्य-कला २१. अद्वितीय २२. भावी शायर का सूचक

गजल

फ़िक्र ही ठहरी तो दिल को फ़िक्रे-खूबां^१ क्यों न हो ?
 खाक होना है तो खाके-कूए-जानां^२ क्यों न हो ?
 दहर में ऐ ख्वाजा ! जब ठहरी असीरी नागुजीर ।
 दिल असीरे-हल्का-ए-गेसू-ए-पेचां क्यों न हो^३ ?
 जोस्त^४ है जब मुस्तक़िल आवारागर्दी ही का नाम ।
 अक़ल वालो फिर तवाफ़े कूए-जानां^५ क्यों न हो ?
 जब नहीं गन्तू-भियों^६ में भी गुनाहों से नजात ।
 दिल खुले-बंदों गरीके-वहरे-इसियां क्यों न हो^७ ?
 इक-न-इक हंगामे पर मौकूफ^८ है जब ज़िन्दगी ।
 मैकदे में रिद रक्सानो - ग़ज़लख़्वां क्यों न हो^९ ?
 यां जब आवेज़िश^{१०} ही ठहरी है तो ज़र्रे छोड़कर ।
 आदमी खुरशीद^{११} से दस्तो-गरेबां क्यों न हो^{१२} ?
 इक-न-इक जुलमत^{१३} से जब बाबस्ता^{१४} रहना है तो 'जोश' ।
 ज़िन्दगो पर साया-ए-जुल्फ़े-परीशां^{१५} क्यों न हो ?

१. सुन्दरियों की इच्छा २. प्रेयसी की गली की खाक ३. ऐ मालिक ! यदि संसार में बंदी होना अनिवार्य है तो फिर मनुष्य (प्रेयसी के) पेचदार केशों की कड़ी में बंदी क्यों न हो ? ४. जीवन ५. प्रेयसी की गली की परिक्रमा ६. गुप्त रूप से किये जाने वाले ७. पाप-सागर में क्यों न हूबे ? ८. आधारित ९. क्यों न नाचे-गाये ? १०. लाग-डांट ११. सूरज १२. क्यों न जूझे ? १३. अन्धेरा (स्याही) १४. सम्बन्धित १५. (प्रेयसी के) उलझे हुए केशों की छाया

रुबाइयाँ

हर इल्मो-यक्रीं^१ है इक गुमां^२ ऐ साक्री,
हर जर्ग है इक रुबाबे-गिरां^३ ऐ साक्री !
अपने को कहीं रख के मैं भूला हूं जरूर,
लेकिन ये नहीं याद कहाँ, ऐ साक्री !



अलफ़ाज़^४ हैं नागन सी जवानी के डसे,
अनफ़ास^५ महकते हुए होंटों में बसे,
यूँ दिल को जगा रहा है तेरा लहजा^६ ,
जिस तरह सितार के कोई तार कसे ।



करती है गुहर^७ को अश्कबारी^८ पैदा,
तमकीन^९ को, रूहे-बेकरारी पैदा,
सौ बार चमन में जब तड़पती है नसीम^{१०} ,
होती है कली पर एक धारी पैदा ।



जाने वाले क्रमर^{११} को रोके कोई,
शब के पैके-सफ़र^{१२} को रोके कोई,
थक कर मेरे जानू पे वह सोया है अभी,
रोके, रोके, सहर^{१३} को रोके कोई ।



१. ज्ञान तथा विश्वास २. भ्रान्ति ३. दीर्घ सपना (भारी भ्रम)
४. शब्द ५. श्वास ६. स्वर ७. मोती ८. आँसुओं की झड़ी ९. सम्मान
१०. वायु ११. चांद १२. हरकारा, दूत १३. प्रभात

हर रंग में इबलीस^१ सजा देता है,
इन्सान को ब-हर-तीर^२ दशा देता है,
कर सकते नहीं गुनाह जो अहमक उनको,
बेरूह^३ नमाजों में लगा देता है।

जन्नत के मज्रों पे जान देने वालो,
गंदे पानी में नाव खेने वालो,
हर खैर^४ पे चाहते हो सत्तर झूरे,
ऐ अपने खुदा से सूद लेने वालो^५!!

तुम्ह से जो फिरेगी तो किधर जायेगी,
ले जायेगी जिस सिम्त^६ उधर जायेगी,
दुनिया के हवादिस^७ से न घबरा कि ये उम्र,
जिस तरह गुजारेगा, गुजर जायेगी।

जिस चाल से बढ़ रही है फौजे-बुरहान^८,
औहाम का किला^९ हो रहा है वीरान,
जितना इन्सान बन रहा है अल्लाह,
अल्लाह उतना ही बन रहा है इन्सान।

हर गार^{१०} महो-साल से^{११} पट जाता है,
साया हो कि धूप, वक्त कट जाता है,
गम है मार्निदे - बर्फ^{१२} ऐसा इक बोझ,
हर गाम^{१३} पे जिसका वजन घट जाता है।

१. शैतान २. अवश्य २. रूखी-फीकी ४. शुभ-कर्म ५. इस्लाम में सूद लेना गुनाह है। ६. ओर ७. काल-चक्र ८. सिद्धांतों की सेना ९. भ्रमों का दुर्ग १०. खोह ११. महीनों और वर्षों से १२. बरफ की तरह १३. पग

क्या शैख मिलेगा गुलफिशानी करके^१ ,
 क्या पायेगा तौहीने-जवानी करके,
 तू आतिशे-दोज़ख^२ से डराता है उन्हें,
 जो आग को पी जाते हैं पानी करके ।

◇ ◇ ◇

क्या फ़ायदा शैख ! तुझ से कीने^३ में मुझे,
 खुश्की में तुझे लुत्फ़, सफ़ीने^४ में मुझे,
 अय्याश तो दोनों हैं, मगर फ़र्क़ ये है,
 खाने में तुझे मज़ा, पीने में मुझे ।

◇ ◇ ◇

‘काकुल’^५ खुलकर बिखर रही है गोया,
 नरमी से नदी गुज़र रही है गोया,
 आंखें तेरी भुक रही हैं मुझसे मिलकर,
 दीवार से धूप उतर रही है गोया ।

◇ ◇ ◇

हम रहते हैं तिश्ना^६ छक के पीने के लिए,
 गिर्दाब^७ में फंसते हैं सफ़ीने^८ के लिए,
 जीते हैं, तो मरने के लिए जीते हैं,
 मरते हैं तो बेदरेग़^९ जीने के लिए ।

◇ ◇ ◇

खुद को गुमकर्दा-गुनाह^{१०} करके छोड़ा,
 हव्वा को भी तबाह करके छोड़ा,
 क्या-क्या न किया खुदा ने जन्नत में जतन,
 आदम ने मगर गुनाह करके छोड़ा ।

१. (उपदेशों की) पुष्प-वर्षा करके (कुकर्मों से बचने को कहना)

२. नरक की आग ३. द्वेष-भाव ४. नाव ५. केश ६. प्यासे
 ७. भंवर ८. नाव (बचने) ९. निश्चिन्त (भरपूर) १०. पाप-ग्रस्त

दिन होते न ज़र्द-रू^१ न रातें ही सियाह,
 भूले से भी इक लब^२ पे न आती कभी आह,
 इन्सान के दिल को छू न सकते आलाम^३ ,
 मेरा-सा अगर शक्तीक^४ होता अल्लाह ।

व्यों मुझ से तक्राज़ा है कि 'फंदे खोलो',
 किस तरह कटे ये पाप, बोलो, बोलो,
 बन्दे की तरफ़ शौक़ से आना यारो,
 मायूस अल्लाह से तो पहले हो लो ।

मर-मर के जब इक बला से पीछा छूटा,
 इक आफ़ते-ताज़ादम ने^५ आकर लूटा,
 इक आबला-ए-नी से हुआ सीना दोचार^६ ,
 जैसे ही पुराना कोई छाला टूटा ।

ये हुक्म है, चुप साध लो, आंखें न उठाओ,
 दो खूब अज़ाँ, धूम से नाक़ूस^७ बजाओ,
 गोबर पे चने चाब के पानी पीलो,
 बिस्तर पे गिरो, डकार लो और मर जाओ ।

ऐ ख़ाब बता, यही है बाग़े-रिज़वां^८ ?
 हूरों का कहीं पता, न ग़िलमां का^९ निशां,
 इक कुंज में ख़ामोशो-मलूलो-तनहा^{१०} ,
 बेचारे टहल रहे हैं अल्लाह मियां ।

१. पीले चेहरे वाले २. होंट ३. दुख ४. स्नेही ५. नई मुसीबत ने
 ६. हृदय में नया छाला उत्पन्न होगया ७. शंख ८. जन्नत (स्वर्ग) ९. लोंडों
 का १०. मौन, उदास, अकेले

फुटकर शेर

जिस को तुम भूल गये याद करे कौन उसको ?

जिस को तुम याद हो वो और किसे याद करे ?

◇ ◇ ◇
 गहर तक चाँद मेरे सामने रखता है अक्स^१ उनका ।
 सतारे शब को मेरे साथ उनका नाम लेते हैं ॥
 १ सुनकर हमने मैखाना में अपना नाम लिखवाया ।
 १० मैकश लड़खड़ाता है वो बाजू थाम लेते हैं ॥

◇ ◇ ◇
 बर्ताव दोस्ती के हृद से निकल गये हैं ।

या तुम बदल गये हो या हम बदल गये हैं ॥

◇ ◇ ◇
 मेरी हालत तेरी फुर्कत में संभल जायेगी ।

क्या ये दुनिया है कि दो दिन में बदल जायेगी ॥

◇ ◇ ◇
 जो मौक़ा मिल गया तो खिज़्र^२ से ये बात पूछेंगे ।

जिसे हो जुस्तजू^३ अपनी, वो बेचारे कहां जायें ॥

◇ ◇ ◇
 वो खुद अता^४ करे तो जहन्नुम भी है बहिश्त ।

मांगी हुई निजात^५ मेरे काम की नहीं ॥

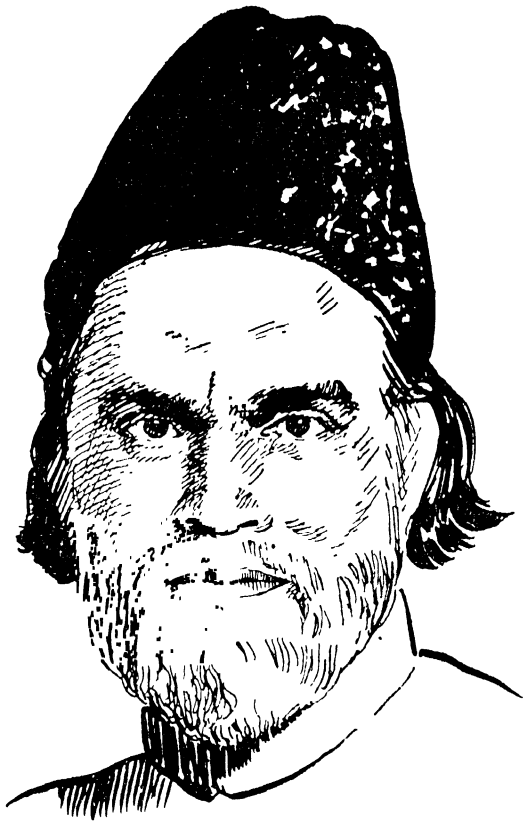
◇ ◇ ◇
 या रब ये भेद क्या है कि राहत^६ की फ़िक्र ने ।

इन्सां को और ग़म में गिरफ़्तार कर दिया ॥

◇ ◇ ◇
 हथ्र^७ में भी खुस्रवाना^८ शान से जायेंगे हम ।

और अगर पुरसिश^९ न होगी तो पलट आयेंगे हम ॥

१. प्रतिरूप २. एक पैगम्बर का नाम (पथ-प्रदर्शक) ३. तलाश
 ४. प्रदान ५. मुक्ति ६. सुख ७. अन्तिम न्याय-दिवस ८. बादशाही
 ९. आव-भगत



‘जिगर’ मुरादाबादी

‘जिगर’ मैंने छुपाया लाख अपना दर्दों-ग़म लेकिन
बयां कर दी मेरी सूरत ने सब कैफ़ियतें दिल की

परिचय

“कोई अच्छा इन्सान ही अच्छा शायर हो सकता है,” ‘जिगर’ मुरादाबादी का यह कथन किसी दूसरे शायर पर लागू हो या न हो, स्वयं उन पर बिल्कुल ठीक बैठता है। यों पहली नज़र में इस कथन में मतभेद की गुंजाइश भी कम ही नज़र आती है लेकिन इसको क्या किया जाए कि स्वयं ‘जिगर’ के बारे में कुछ व्यक्तियों का मत यह है कि जब वे ‘अच्छे इन्सान’ नहीं थे, तब बहुत अच्छे शायर थे।

“जब वे अच्छे इन्सान नहीं थे” से उन समालोचकों का अभिप्राय उस काल से है, जिस काल में वे बेतहाशा शराब पीते थे। इस घुरी तरह और इस मात्रा में कि यदि दस व्यक्ति मिलकर आयु भर पीते रहें, तब भी उतनी न पी पायेंगे, जितनी ‘जिगर’ कुछ एक वर्षों में पी चुके हैं। और उन समालोचकों का अभिप्राय उस ‘जिगर’ से भी है जो सारे संसार और उसकी नैतिकता को शराब के प्याले में डुबो देते थे और जिन्होंने अपना दाम्पत्य जीवन नरक समान बना लिया था^१ और आठों पहर मस्त-अलस्त रहकर :

१. जिगर साहब की शादी उर्दू के प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय ‘असगर’ गोंडवी की छोटी साली से हुई थी। फिर ‘असगर’ साहब ने ‘जिगर’ साहब से तलाक़ दिलवाकर उनकी पत्नी को अपनी पत्नी बना लिया था। ‘असगर’ साहब के देहांत पर ‘जिगर’ साहब ने फिर उसी महिला से दोबारा शादी कर ली और कुछ लोगों का खयाल है कि उनकी इस पहली पत्नी ने ही उनकी शराब पीने की लत छुड़वाई है।

मुझे उठाने को आया है वाइजे-नादां^१

जो उठ सके तो मेरा सागरे-शराब^२ उठा
किधर से बर्क^३ चमकती है देखें ऐ वाइज !

मैं अपना जाम उठाता हूँ तू किताब^४ उठा ।

ऐसे उच्चकोटि के शेर कहते थे और उनके तरन्नुम (गान) की हालत यह थी कि बड़े-बड़े उस्तादों का पित्ता उनके सामने पानी हो जाता था ।

जहाँ तक मेरे व्यक्तिगत मत का सम्बन्ध है मैं न तो पूर्ण रूप से 'जिगर' साहब के उक्त कथन का पक्षपाती हूँ और न ही उन समालोचकों के इस फ़ैसले से सहमत कि जब से 'जिगर' ने शराब छोड़ी है उनकी शायरी का स्तर नीचा हो गया है । मेरे तुच्छ विचार में 'जिगर' साहब की शायरी का यह अन्तर (यदि कोई अन्तर है तो) शराब पीने या न पीने का अन्तर नहीं है । यह अन्तर दाम्पत्य जीवन के नरक-समान बनने और फिर स्वर्ग-समान बन जाने का अन्तर भी नहीं है, वल्कि यह अन्तर दो विभिन्न कालों का अन्तर है । दो विभिन्न सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों में एक ही ढंग से सोचने, पुराने पर संतोष और नये को अस्वीकार करने का अन्तर है । अतएव आज भी जब वे :

उनका जो फ़र्ज है अरबावे-सियासत^५ जानें ।

मेरा पैग़ाम मुहब्बत है, जहाँ तक पहुँचे ॥

ऐसे शेर कहते हैं तो हम उनकी इस 'मोहब्बत' को उस सूफ़ीवाद तथा अध्यात्मवाद से अलग करके नहीं देख सकते जो प्रारम्भकाल से ही उनकी शायरी की विशेषता रही है और जिसमें से :

यही हुस्नो इस्क़ का राज है, कोई राज इसके सिवा नहीं ।

कि खुदा नहीं तो खुदी^६ नहीं, जो खुदी नहीं तो खुदा नहीं ॥

ऐसे शेर निकले थे ।

लेकिन ऐसा भी नहीं है कि 'जिगर' अपनी जगह से टस से मस न हुए हों । यह प्रत्यक्ष है कि उनकी पूरी शायरी में 'साक़ी', 'मैक़दा', 'हुस्न', 'इस्क़', 'जुन्न', 'रिदी' इत्यादि परम्परागत शब्द, परम्परागत परिभाषायें और परम्परागत अन्तर्चेतना की गहरी छाप है । वह ग़ज़ल को उर्दू शायरी की पराकाष्ठा

१. नादान धर्मोपदेशक २. शराब का प्याला ३. बिजली (एक परम्परा के अनुसार 'तूर' पहाड़ पर बिजली चमकी थी और मूसा (पैग़म्बर) ने खुदा से बातें की थीं ४. धर्म-ग्रंथ ५. राजनीतिज्ञ ६. अहंभाव

मानते हैं और उन्होंने कविता के सामाजिक क्रम से सदैव इन्कार किया है, लेकिन मौलिक रूप से एक विमल तथा सत्य प्रेमी कलाकार होने के नाते उन्होंने कभी “आत्मा की आवाज” को दबाने की चेष्टा नहीं की। अतएव बंगाल के अकाल के दिनों में जब उन्होंने ऐसे शेर कहे :

बंगाल की मैं शामो-सहर देख रहा हूँ,

हरचंद कि हूँ दूर मगर देख रहा हूँ।

इन्सान के होते हुए इन्सान का ये हश्न^१,

देखा नहीं जाता है मगर देख रहा हूँ।

तो लोगों ने चौक कर ‘जिगर’ साहब की ओर देखा; और फिर साम्प्रदायिक उपद्रव पर तो ‘जिगर’ साहब इस बुरी तरह तड़प उठे कि ग़ज़ल पर जान देने वाले और ग़ज़ल का बादशाह कहलाने वाले इस शायर ने :

फ़िक्रे-जमील खावे-परीश^२ है आजकल।

शायर नहीं है वो जो ग़ज़ल-खा^३ है आजकल ॥

कहकर और इस ग़ज़ल में हिन्दू, मुसलमान, इन्सानियत, जमहूरियत, इत्यादि ग़ज़ल की परम्पराओं के प्रतिकूल शब्दों का प्रयोग करके कविता के प्रति अपनी उस महान सत्यप्रियता का प्रमाण दिया, जिसके बिना कोई कवि महान कवि नहीं बन सकता और यह भी कला के प्रति उनकी निष्कपटता ही थी जिसने उनसे :

सलामत तू, तेरा मैखाना, तेरी अंजुमन^४ साक़ी,

मुझे करनी है अब कुछ खिदमते-दारो-रसन^५ साक़ी।

रगो-मैं में^६ कभी सहबा^७ ही सहबा रक्स^८ करती थी,

मगर अब ज़िन्दगी ही ज़िन्दगी है मौजज़न^९ साक़ी।

ऐसे शेर कहलवाये। निःसंदेह यह ‘जिगर’ की आंतरिक मान्यताओं पर बाहरी वास्तविकता की विजय थी—यह ग़ज़ल का एक स्पष्ट मोड़ था जिससे कविता के इस रूप का भविष्य सम्बद्ध है।

अली सिकन्दर ‘जिगर’ मुरादाबादी १८९० में मौलवी अली ‘नज़र’ के यहाँ,

१. हालत २. सुन्दर कल्पनायें दूटे हुए सपने की तरह छिन्न-भिन्न हैं।

३. ग़ज़ल गा रहा है, अर्थात् परम्परागत बातों में उलझा हुआ है। ४. महफ़िल

५. सुलियों-फांसियों की सेवा (क्रान्तिकारी कार्य) ६. नस-नस में ७. सुरा

८. नृत्य ९. तरंगित

जो स्वयं एक अच्छे शायर और खाजा वजीर अली देहलवी के शिष्य थे, पैदा हुए। एक पूर्वज मौलवी 'समी' देहली के निवासी और शाहजहाँ के उस्ताद थे। लेकिन शाही प्रकोप के कारण दिल्ली छोड़कर मुरादाबाद में आ बसे थे। यों 'जिगर' को शायरी उत्तराधिकार के रूप में मिली और तेरह-चौदह वर्ष की आयु में ही उन्होंने शेर कहने शुरू कर दिये। शुरू-शुरू में अपने पिता से संशोधन लेते रहे। उसके बाद उस्ताद 'दाग' देहलवी को अपनी गज़ले दिखाई और 'दाग' के बाद मुन्शी अमीरउल्ला 'तसलीम' और 'रसा' रामपुरी को गज़लें दिखाते रहे। शायरी में सूफ़ियाना रंग 'असगर' गोंडवी की संगत का परिणाम है।

शिक्षा बहुत साधारण, अंग्रेज़ी बस नाममात्र जानते हैं, और शकल-सूरत के लिहाज़ से तो अच्छे-खासे बदसूरत इन्सानों में से हैं। लेकिन ये सब कमियाँ अच्छे शेर कहने की क्षमता तले दबकर रह गई हैं और जहाँ तक शकल-सूरत का सम्बन्ध है, उर्दू के हास्य-लेखक शौकत थानवी ने शायद बिल्कुल ठीक लिखा है कि शेर पढ़ते समय उनकी शकल बिल्कुल बदल जाती है। उनके चेहरे पर एक लालित्य आ जाता है। एक सुन्दर मुस्कान, एक मनोहर कोमलता तथा सरलता के प्रभाव से 'जिगर' साहब का व्यक्तित्व किरनें-सी बिखरने लगता है—निःसंदेह ये किरनें हर उस व्यक्ति ने देखी होंगी जिसने किसी मुशायरे में 'जिगर' साहब को शेर पढ़ते सुना है।

'जिगर' साहब का शेर पढ़ने का ढंग कुछ ऐसा मोहक और तरन्नुम ऐसा जादू भरा है कि एक युग ऐसा था जब तरुण कवि केवल उन ऐसे शेर कहने और उन्हीं के से ढंग में शेर पढ़ने की केवल चेष्टा ही नहीं करते थे, बल्कि अपनी वेषभूषा भी 'जिगर' ऐसी बना लेते थे—वही लम्बे-लम्बे उलझे हुए बाल, बड़ी हुई दाढ़ी, अस्त-व्यस्त वस्त्र और उन्हीं की तरह बेतहाशा शराबनोशी।

ऊपर एक स्थान पर मैं कह चुका हूँ कि 'जिगर' साहब बेतहाशा शराब पिया करते थे। लेकिन यह उनके 'अच्छा आदमी' बनने की धुन थी, या न जाने क्या था, कि एक दिन उन्होंने हमेशा के लिए शराब से तौबा कर ली और फिर आज तक शराब को हाथ नहीं लगाया। शराब से तौबा करने के बाद वे बेतहाशा सिग्रेट पीने लगे लेकिन आज वे सिग्रेट को भी हाथ नहीं लगाते। आजकल वे बेतहाशा ताश खेलते हैं और कोई नहीं कह सकता कि रात से सुबह कर देने वाले ये ताश के रसिया कब ताश से भी तौबा कर लेंगे और किसी दूसरे 'बेतहाशापन' में जा आश्रय लेंगे।

‘जिगर’ साहब बड़े हँसमुख और विशाल हृदय के व्यक्ति हैं। धर्म पर उनका गहरा विश्वास है और धर्म और प्रेम को वे मनुष्य के मोक्ष का साधन मानते हैं, लेकिन धर्मनिष्ठा ने उनमें उद्विग्नता तथा घमंड नहीं विनय तथा नम्रता उत्पन्न की है। वे हर उस सिद्धांत का सम्मान करने को तैयार रहते हैं जिसमें सच्चाई और शुद्धता हो। यही कारण है कि साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन का भरसक विरोध करने पर भी उन्होंने ‘मजाज’, ‘जजबी’, मसऊद अस्तर ‘जमाल’, ‘मजरूह’ सुलतानपुरी इत्यादि बहुत से प्रगतिशील कवियों को प्रोत्साहन दिया है और प्रगतिशील लेखक संघ के निमन्त्रण पर अपनी जेब से किराया खर्च करके वे उनके सम्मेलनों में योग देते रहे हैं। (यों ‘जिगर’ साहब किसी मुशायरे में आने के लिए हजार-बारह सौ रुपये से कम मुआवजा नहीं लेते।) इस समय मुझे उनकी एक मुलाकात याद आ रही है जिसमें उन्होंने ‘मजरूह’ सुलतानपुरी की गिरफ्तारी पर शोक प्रकट करते हुए कहा था “ये लोग गलत हों या सही, यह एक अलग बहस है; लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ये लोग अपने उसूलों के पक्के हैं। इन लोगों में खुलूस कूट-कूट कर भरा हुआ है।” और फिर ‘मजरूह’ की उस गज़ल (जिसके कारण उसे गिरफ्तार किया गया था) की एक पंक्ति :

‘यह भी कोई हिटलर का चेला है, मार ले साथी जाने न पाये’

पर मुस्कराकर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा था—“लो, देखो, खुद में तो मारने की हिम्मत नहीं, मारने के लिए साथी को आवाज दी जा रही है।”

बड़े बुजुर्ग होने पर भी ‘जिगर’ साहब हर समय गम्भीर मुद्रा धारण किये नहीं बैठे रहते। अपने से कहीं कम आयु के कवियों के साथ क़हक़हे लगाने में उन्हें विशेष आनन्द आता है। वे उन्हें खिला-पिलाकर बहुत प्रसन्न होते हैं और ‘फ़िक़रे-बाज़ी’ के किसी अवसर को हाथ से नहीं जाने देते। एक बार एक महफ़िल में ‘जिगर’ साहब शेर सुना रहे थे। पूरी महफ़िल भूम-भूम कर उनके शेरों पर दाद दे रही थी लेकिन एक व्यक्ति शुरु से आखिर तक बिल्कुल चुपचाप बैठा रहा। एकाएक अन्तिम शेर पर उस व्यक्ति ने उचक-उचककर दाद देनी शुरु कर दी। ‘जिगर’ साहब ने चौंककर उसकी ओर देखा और कहा :

“क्यों साहब ! क्या आपके पास क़लम है ?”

“जी हाँ” उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, “क्या कीजियेगा ?”

“मेरे इस शेर में ज़रूर कोई खामी है, वरना आप दाद न देते। इसे मैं

अपनी बयाज (कापी, जिसमें हाथ से शेर लिखे होते हैं) में से काटना चाहता हूँ ।”

इसी प्रकार एक बार एक और व्यक्ति ने उनसे कहा कि, “ ‘जिगर’ साहब, एक महफ़िल में मैं आपके एक शेर पर पिटते-पिटते बचा ।”

इस पर ‘जिगर’ साहब बोले, “मेरा वह शेर असर के लिहाज से जरूर घटिया होगा, वरना आप जरूर पिटते ।”

‘जिगर’ साहब का पहला दीवान (कविता-संग्रह) ‘दागे-जिगर’ १९२८ में प्रकाशित हुआ था । उसके बाद १९३२ में ‘शोला-ए-तूर’ के नाम से एक संकलन मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ से छपा जिसके पूरे खर्च की ज़िम्मेदारी साहबज़ादा रशीदुज्जफ़र (भोपाल) ने ली थी । नवाब भोपाल के ये भतीजे ‘जिगर’ साहब के बहुत प्रशंसक थे और एक समय तक उन्होंने ‘जिगर’ साहब को डेढ़ सौ रुपया मासिक वज़ीफ़ा दिया । अब तक ‘शोला-ए-तूर’ के बहुत से संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । हाल ही में ‘इदारा फ़रोगे-उर्दू’ (लाहौर) ने इसका एक बहुत ही सुन्दर संस्करण निकाला है ।

‘जिगर’ साहब उन सौभाग्यशाली कवियों में से हैं जिनकी कलाकृतियाँ उनके अपने जीवनकाल में ही ‘क्लासिकल’ साहित्य का अंग बन जाती हैं ।

शिकस्ते-तौबा^१

साक्री की हर निगाह पे बल खा के पी गया ।
 लहरों से खेलता हुआ, लहरा के पी गया ॥
 बेकैफ़ियों के कैफ़ से घबरा के^२ पी गया ।
 तौबा को तोड़ ताड़ के, थर्रा के पी गया ॥
 जाहिद^३ ! ये मेरी शोखी-ए-रिदाना^४ देखना ।
 रहमत^५ को बातों-बातों में बहला के पी गया ॥
 सरमस्ती-ए-अज़ल^६ मुझे जब याद आ गई ।
 दुनिया-ए-एतबार को^७ ठुकरा के पी गया ॥
 आजुर्दगी - ए - खातिरे - साक्री को^८ देखकर ।
 मुझको ये शर्म आई, कि शर्मा के पी गया ॥
 ऐ रहमते-तमाम^९ ! मेरी हर खता मुआफ़ ।
 मैं इन्तहाए-शौक^{१०} में घबरा के पी गया ॥
 पीता बग़ैर इज़्ज़न^{११}, ये कब थी मेरी मजाल ।
 दरपर्दा चश्मे-यार^{१२} की शह पाके पी गया ॥
 उस जाने-मैकदा^{१३} की कसम, बारहा 'जिगर' ।
 कुल आलमे-बसीत^{१४} पे मैं छा के पी गया ॥

१. तौबा को तोड़ना २. आनन्द रहित परिस्थितियों के आनन्द से घबरा कर ३. उपदेशक ४. मद्यपों की चंचलता ५. खुदा ६. अनादिकालिक उन्माद ७. मान्यताओं के संसार को ८. साक्री की खिन्नता ९. सब से बड़ा कृपालु (खुदा) १०. इश्क (उन्माद) की अधिकता ११. आज्ञा १२. यार (महबूब, खुदा) की आँख का संकेत १३. मधुशाला की जान (साक्री, खुदा) १४. विशाल विश्व ।

राजलें

दिल में किसी के राह किये जा रहा हूं मैं ।
 कितना हसी^१ गुनाह किये जा रहा हूं मैं ॥
 फ़र्दे-अमल^२ सियाह किये जा रहा हूं मैं ।
 रहमत को बेपनाह किये जा रहा हूं मैं^३ ॥
 ऐसी भी एक निगाह किये जा रहा हूं मैं ।
 ज़रों को महरो-माह^४ किये जा रहा हूं मैं ॥
 उठती नहीं है आँख मगर उसके रूबरू ।
 नादीदा^५ इक निगाह किये जा रहा हूं मैं ॥
 यूँ ज़िन्दगी गुज़ार रहा हूं तेरे बग़ैर ।
 जैसे कोई गुनाह किये जा रहा हूं मैं ॥
 गुलशन-परस्त^६ हूं मुझे गुल^७ ही नहीं अजीब ।
 कांटों से भी निबाह किये जा रहा हूं मैं ॥
 मुझ से लगे हैं इश्क़ को अज़मत^८ के चार चांद ।
 खुद हुस्न को गवाह किये जा रहा हूं मैं ॥



हमें मालूम है हमसे सुनो, महशर^९ में क्या होगा ।
 सब उसको देखते होंगे वो हम को देखता होगा ॥
 जहन्नुम हो कि जन्नत जो भी होगा फ़ैसला होगा ।
 ये क्या कम है हमारा और उनका सामना होगा ॥
 ये माना भेज देगा हमको महशर से जहन्नुम में ।
 मगर जो दिल पे गुज़रेगी वो दिल ही जानता होगा ॥
 समझता क्या है तू दीवानगाने-इश्क़ को^{१०} ज़ाहिद ।
 ये हो जायेंगे जिस जानिब उसी जानिब खुदा होगा ॥

१. सुन्दर २. भगवान के यहाँ वह पुस्तक जिसमें प्राणियों के कार्यों का उल्लेख होता है ३. कृपानिधान की कृपाशक्ति को महान कर रहा हूँ ४. चांद सूरज ५. न देख पाने वाली ६. बाग (संसार) का चाहने वाला ७. फूल ८. महानता ९. प्रलय-क्षेत्र १०. इश्क़ के दीवानों को

मेरा जो हाल हो सो हो बर्कें-नज़र^१ गिराये जा ।
 मैं यूँही नालाकश^२ रहूँ तू यूँही मुस्कराये जा ॥
 लहज़ा-ब-लहज़ा, दम-ब-दम, जलवा-ब-जलवा^३ आये जा ।
 तश्ना - ए - हुस्ने - ज़ात^४ हूँ, तश्नालबी^५ बढ़ाये जा ॥
 जितनी भी आज पी सकूँ, उज्र^६ न कर, पिलाये जा ।
 मस्त नज़र का वास्ता, मस्ते - नज़र बनाये जा ॥
 लुत्फ़^७ से हो कि क़हर^८ से, होगा कभी तो रू-ब-रू ।
 उसका जहाँ पता चले, शोर वहीं मचाये जा ॥
 इश्क़ को मुतमइन^९ न रख, हुस्न के एतमाद^{१०} पर ।
 वो तुझे आजमा चुका, तू उसे आजमाये जा ॥

खार^{११} को गुल^{१२} और गुल को खार जो चाहे करे ।
 तूने जो चाहा किया, ऐ यार जो चाहे करे ॥
 उसने ये कह कर दिया दिल को फ़रेबे-जुस्तजू^{१३} ।
 हथ तक अब आशिक़े - नाचार^{१४} जो चाहे करे ॥
 था अभी जलवा, अभी पर्दा, अभी कुछ भी नहीं ।
 आपकी ये हसरते-दीदार जो चाहे करे ॥
 हर हकीक़त हुस्न की है बेनियाज़े - एतराफ़^{१५} ।
 अब कोई इक़्रार या इन्कार जो चाहे करे ॥

१. नज़रों की बिजली २. आर्तनाद करता रहूँ ३. क्षण-प्रतिक्षण
 नवीनतम छवि के साथ ४. सौन्दर्य का प्यासा ५. पिपासा ६. बहाना,
 इन्कार ७. कृपा ८. प्रकोप ९. सन्तुष्ट १०. विश्वास ११. कांटा
 १२. फूल १३. तलाश करने का धोखा १४. बेचारा बेबस आशिक़
 १५. सौंदर्य की प्रत्येक वास्तविकता स्वीकरण-अस्वीकरण से उच्च है ।

जब तक कि शमे-इन्सां^१ से 'जिगर' इन्सान का दिल मामूर^२ नहीं।
 जन्नत ही सही दुनिया लेकिन, जन्नत से जहन्नुम दूर नहीं।
 जुज जोके-तलब, जुज शोके-सफ़र^३ कुछ और मुझे मन्ज़ूर नहीं।
 ऐ इश्क ! बता अब क्या होगा कहते हैं कि मंज़िल दूर नहीं ॥
 वाइज का हर इक इरशाद बजा, तक्ररीर बहुत दिलचस्प, मगर,
 आँखों में सरूरे-इश्क नहीं, चेहरे पे यक़ी^४ का तूर^५ नहीं ॥
 इस नफ़र-ओ-ज़रर की दुनिया में^६ मैंने ये लिया है दर्से-जुनू^७।
 खुद अपना ज़ियां^८ तसलीम, मगर, औरों का ज़ियां मन्ज़ूर नहीं ॥
 मैं ज़रूम भी खाता जाता हूँ, क़ातिल से भी कहता जाता हूँ।
 तोहीन है दस्तो-बाजू की^९, वो वार कि जो भरपूर नहीं ॥
 अरबाबे-सितम की^{१०} खिदमत में इतनी ही गुज़ारिश है मेरी।
 दुनिया से क़यामत^{११} दूर सही, दुनिया की क़यामत दूर नहीं ॥



१. मानव प्रेम और दुख-सुख २. परिपूर्ण ३. सफर करने और प्राप्त करने की उत्सुकता के अतिरिक्त ४. विश्वास ५. ज्योति ६. लाभ और हानि के संसार में ७. उन्माद की शिक्षा ८. हानि ९. हाथों-बाहों की १०. अत्याचारियों की ११. महाप्रलय ।

फुटकर शेर

उसे सय्याद^१ ने कुछ, गुल ने कुछ, बुलबुल ने कुछ समझा ।
चमन में कितनी मानीखेज^२ थी इक खामशी^३ मेरी ॥

यूं तड़प कर दिल ने तड़पाया सरे-महफ़िल^४ मुझे ।
उस को क़ातिल कहने वाले कह उठे क़ातिल मुझे ॥

हदूदे-क़चा-ए-महबूब^५ हैं वहीं से शुरू ।
जहां से पड़ने लगे पांव, डगमगाये हुए ॥

ले के खत उनका, किया ज़ब्त बहुत कुछ लेकिन ।
थरथराते हुए हाथों ने भरम खोल दिया ॥

तेरी आंखों का कुछ क़सूर नहीं ।
हां मुझी को खराब होना था ॥

हुस्न की हर-हर अदा पर जानो-दिल सदक्के^६ मगर ।
लुप्त कुछ दामन बचाकर ही गुज़र जाने में है ॥

वरना क्या था सिर्फ़ तरतीबे-अनासिर^७ के सिवा ।
खास कुछ बेताबियों का नाम इन्सां हो गया ॥

जीने तक हैं होश के जलवे आगे होश की मस्ती है ।
मौत से डरना क्या मानी, मौत भी जुड़वे-हस्ती^८ है ॥

१. शिकारी २. अर्थपूर्ण ३. खामोशी ४. महफ़िल में ५. प्रेमिका
की गली की सीमायें ६. न्यौछावर ७. तत्वों के क्रम ८. जीवन का अंग

क्या लुत्फ कि मैं अपना पता आप बताऊँ ।

कीजे कोई भूली हुई खास अपनी अदा याद ॥

◇ ◇ ◇

इधर से भी है सिवा कुछ उधर की मजबूरी ।

कि हमने आह तो की उनसे आह भी न हुई ॥

◇ ◇ ◇

कभी शाखो-सब्जा-ओ-वर्ग पर, कभी गुंचा-ओ-गुलो-खार पर^१ ।

मैं चमन में चाहे जहां रहूं मेरा हक है फसले-बहार पर ॥

◇ ◇ ◇

हर इक सूरत, हर इक तस्वीर मुवहम^२ होती जाती है ।

क्याही ! क्या मेरी दीवानगी कम होती जाती है ॥

◇ ◇ ◇

किसी सूरत नमूदे-सोजे-गिनहानी^३ नहीं जाती ।

फका जाता है दिल, चेहरे की ताबानी^४ नहीं जाती ॥

हुब्बत में इक ऐसा वक्त भी दिल पर गुजरता है ।

कं आंसू खुश्क हो जाते हैं, तुगियानी^५ नहीं जाती ॥

जैसे रौनक तेरे कदमों ने देकर छीन ली रौनक ।

तो लाख आबाद हो उस घर की वीरानी नहीं जाती ॥

तो यूं दिल से गुजरते हैं कि आहट तक नहीं होती ।

तो यूं आवाज देते हैं, कि पहचानी नहीं जाती ॥

◇ ◇ ◇

हाय ये मजबूरियां, महरूमियां, नाकामियां ।

इश्क आखिर इश्क है, तुम क्या करो, हम क्या करें ?

◇ ◇ ◇

किस तरफ जाऊं, किधर देखूं, किसे आवाज दूं ?

ऐ हुजूमे-नामुरादी^६, जी बहुत घबराये है ।

१. शाखाओं, हरियाली, पत्तों, कलियों, फूलों, कांटों पर २. अस्पष्ट
३. आन्तरिक व्यथा का अस्तित्व ४. चमक ५. तूफान ६. ऐ असफलताओं
के समूह !

धा भी है इक मुकामे-इश्क^१ जहां ।

हर तमन्ना गुनाह होती है ॥

◇ ◇ ◇

मैं तेरा अक्स^२ हूं कि तू मेरा ।

इस सवालो - जवाब ने मारा ॥

◇ ◇ ◇

रह गया है अब तो बस इतना ही रब्त^३ इक शोख से ।

सामना जिस वक्त हो जाता है, भर आता है दिल ॥

◇ ◇ ◇

जिसे मैं भी खुद न बता सकूं, मेरा राज़े-दिल है वो राज़े-दिल ।

जिसे ग़ैर दोस्त समझ सकें, मेरे साज़ में वो सदा^४ नहीं ॥

◇ ◇ ◇

लाखों में इन्तिखाब के क़ाबिल बना दिया ।

जिस दिल को तुमने देख लिया दिल बना दिया ॥

◇ ◇ ◇

दिल को क्या-क्या सुकून^५ होता है ।

जब कोई आसरा नहीं होता ॥

◇ ◇ ◇

कांटों का कुछ हक़ है आखिर ।

कौन छुड़ाये अपना दामन ॥

◇ ◇ ◇

ये इश्क नहीं आसां, इतना ही समझ लीजे ।

इक आग का दरिया है, और डूब के जाना है ॥

◇ ◇ ◇

इस तरह न होगा कोई आशिक भी तो पाबंद ।

आवाज़ जहां दो उसे वो शोख वहीं है ।

हरचन्द वक्फे-कश-म-कशे-दो-जहां रहे^१ ।
तुम भी हमारे साथ रहे, हम जहां रहे ॥

◇ ◇ ◇
तौहीने-इश्क़ न हो, ऐ 'जिगर' ! न हो ।
हो जाये दिल का खून, मगर आंख तर न हो ॥

◇ ◇ ◇
वो हज़ार दुश्मने-जां सही, मुझे फिर भी ग़ैर अज़ीज़ है ।
जिसे खाके-पा^२ तेरो छू गई, वो बुरा भी हो, तो बुरा नहीं ॥

◇ ◇ ◇
पांव रुकते ही नहीं मंज़िले-जानां^३ के खिलाफ़ ।
और अगर होश की पूछो तो मुझे होश नहीं ॥

◇ ◇ ◇
दरिया की ज़िन्दगी पे सदक्के^४ हज़ार जानें ।
मुझको नहीं गवारा^५ साहिल की मौत मरना ॥

◇ ◇ ◇
दिल गया रौनक़े-हयात^६ गई ।
ग़म गया सारी कायनात^७ गई ॥

◇ ◇ ◇
इन्हें आंसू समझकर यूँ न मिट्टी में मिला ज़ालिम ।
पयामे-दर्दे-दिल है, और आंखों की ज़बानी है ॥

◇ ◇ ◇
क्या आगया खयाल दिले-बेकरार में ।
खुद आशियां को आग लगा दी बहार में ॥

◇ ◇ ◇

१. यह ठीक है कि हम दो दुनियाओं की कशमकश में गिरफ़्तार रहे
२. पांव की धूल ३. प्रेमिका तक पहुँचाने वाली मंज़िल ४. न्यूछावर
५. पसंद ६. ज़िन्दगी की रौनक़ ७. सृष्टि

इश्क है किस कतार में^१ हुस्न है किस शुमार^२ में ।
उम्र तमाम हो चुकी, अपने ही इन्तज़ार में ॥

◇

◇

◇

आज तो कर दिया साक़ी ने मुझे मस्त अलस्त ।
डाल कर खास निगाहें मेरे पैमाने में ॥

◇

◇

◇

मीतो-हयात^३ में है सिर्फ़ एक कदम का फ़ासला ।
अपने को ज़िन्दगी बना, जलवा-ए-ज़िन्दगी^४ न बन ॥

१. पंक्ति में (गिनती में) २. गिनती ३. मृत्यु और जीवन ४. ज़िन्दगी
का जलवा (नज़्ज़ारा)



‘फ़िराक़’ गोरखपुरी

यूँ ही ‘फ़िराक़’ ने उम्र बसर की
कुछ ग़मे-जानां, कुछ ग़मे-दौरां

परिचय

(किसी पाठशाला में एक मौलवी साहब ने विद्यार्थियों को पढ़ाते समय 'गज़ल' की व्याख्या इन शब्दों में की कि "शायरी के दूसरे असनाफ़ (रूपों) की तरह ग़ज़ल भी एक सनफ़े-सुखन (काव्य-रूप) है जिसे अमूमन वो लोग अपनाते हैं जिनका चाल-चलन खराब होता है।")

(और ठीक ही तो है—मौलवी साहब भला इसके अतिरिक्त ग़ज़ल की और क्या व्याख्या कर सकते थे जबकि ग़ज़ल का पूरा भंडार आशिक और माशूक की चर्चा, हिज़ और विसाल के भगड़ों, मैकदे, साक़ी और शराब के गुणगान और वाइज़, शेख और ब्रह्मन की पगड़ी उछालने आदि 'बदचलनियों' से भरा पड़ा है।) इस पर खुदा और जन्नत और जहन्नुम से इस प्रकार के मज़ाकों को :

हम को मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन ।

दिल के खुश रखने को 'शालिब' ये खयाल अच्छा है ॥

(‘शालिब’)

और

इलाही कैसे होते हैं जिन्हें है बन्दगी ख्वाहिश ।

हमें तो शर्म दामनगीर होती है खुदा होते ॥

(‘मीर’)

भला कौन 'शरीफ़' आदमी है जो सहन कर सकता है । लेकिन वह जो किसी ने कहा है कि किसी से सहन हो न हो, होता वही है जो होना होता है ।

अतएव मौलवी साहब आज भी ग़ज़ल की वैसे ही व्याख्या कर रहे हैं और ग़ज़लें लिखने वाले शायर बराबर अपनी छिठाई का प्रमाण देते चले जा रहे हैं ।

‘फ़िराक़’ गोरखपुरी की चर्चा करते समय मुझे मौलवी साहब का यह लतीफ़ा इसलिए याद आया क्योंकि इन दिनों शायरी के प्राचीन स्कूल के एक प्रसिद्ध और माननीय शायर नव्वाब जाफ़र अली खाँ ‘असर’ बिल्कुल मौलवियों की-सी बातें कर रहे हैं और ‘फ़िराक़’ गोरखपुरी के :

ज़रा विसाल^१ के बाद आईना तो देख ऐ दोस्त ।

तेरे जमाल^२ की दोशीज़गी^३ निखर आई ॥

ऐसे सुन्दर शेरों को अश्लील और :

कुछ क़फ़स की^४ तीलियों से छन रहा है तूर सा ।

कुछ फ़िज़ा^५, कुछ हसरते-परवाज़^६ की बातें करो ॥

और

तमाम शबनमो-गुल है वो सर से ता-ब-क़दम^७ ।

रुके-रुके से कुछ आंसू, रुकी-रुकी सी हँसी ॥

ऐसे अनुभूतिपूर्ण शेरों को काने, लूले और लंगड़े शेर कह रहे हैं ।

‘असर’ और ‘फ़िराक़’ दोनों मेरे लिए बुजुर्ग और आदरणीय शायर हैं । न मुझे ‘असर’ साहब की-सी भाषाविज्ञता और पिंगल-ज्ञान का दावा है, न ‘फ़िराक़’ साहब ऐसे सुन्दर, सरस तथा संगीतपूर्ण शेर लिखना मेरे बस की बात । फिर भी मैं अपने इन दोनों बुजुर्गों को आपसी खेंचा-तानी से हाथ खींचने का परामर्श देते हुए किसी प्रकार का दुःसाहस नहीं कर रहा । ‘फ़िराक़’ साहब अपनी ग़ज़लों में ‘असर’ साहब पर इस प्रकार कीचड़ उछालते हैं :

वो मेरे अशआर ‘असर’ साहब हैं जिन पर मोतरिज़^८

कुछ समझ में आ तो सकते हैं लियाक़त चाहिये ॥

जैसी तनक़ीदे^९ ‘असर’ लिखते हैं ऐसी तो हर एक ।

फ़ैंक देगा लिख के तौफ़ीक़े-हमाक़त^{१०} चाहिये ॥

और उत्तर में ‘असर’ साहब, जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, ‘फ़िराक़’

१. प्रेमी और प्रेमिका का मिलन २. सौंदर्य ३. कंवारापन ४. पिंजरे की ५. शून्य (आकाश) ६. उड़ने की अभिलाषा ७. सिर से पाँव तक वह (महबूब) ओस और फूलों का प्रतिरूप है ८. एतराज़ करते हैं ९. आलोचनायें १०. मूर्खता की सामर्थ्य

साहब के शेरों को काना, लूना, लंगड़ा, अश्लील और मूर्खतापूर्ण कहकर अपने दिल की भड़ास निकालते हैं।

उर्दू साहित्य में ऐसी ही कई खेंचातानियाँ प्राचीन शायरों में भी चली थीं, लेकिन परिणाम समय के विनाश के अतिरिक्त कुछ न निकला था। 'असर' साहब के 'फिराक़' को हजार बार मूर्ख कहने से 'फिराक़' की महानता पर और 'फिराक़' साहब के लाख बार 'नालायक' कहने से 'असर' साहब की भाषा-विज्ञता तथा पिंगल-ज्ञान पर कोई आक्षेप नहीं आ सका। दोनों शायर अपने-अपने स्थान पर अपनी शायरी के द्वारा ऐतिहासिक कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। आने वाला समालोचक इन खेंचातानियों को कोई महत्व दिये बिना उर्दू साहित्य के इतिहास में केवल उसी शायर का नाम आदरपूर्वक लेगा जो वास्तविक रूप में शायर तथा समय के परिवर्तन-शील मूल्यों का साथी होगा।

रघुपतिसहाय 'फिराक़' गोरखपुर के रहने वाले हैं। वहीं १८९६ में आप का जन्म हुआ और वहीं आपने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। पिता मुंशी गोरखप्रसाद 'इबरत' उस समय के प्रसिद्ध वकील तथा शायर थे। इस प्रकार शायरी 'फिराक़' गोरखपुरी को छुट्टी में मिली। लेकिन काव्य-अभिरुचि उन दिनों फली-फूली जब उच्च शिक्षा के लिए आप इलाहाबाद आये और यहाँ आपको प्रोफ़ेसर 'नासरी' ऐसे साहित्यिक का सहयोग प्राप्त हुआ। प्रोफ़ेसर 'नासरी' ने न केवल उनकी ग़ज़लों को संशोधित किया बल्कि उर्दू शायरी के नियमों पर नियमपूर्वक लेक्चर भी दिये और इस प्रकार 'फिराक़' के दिल की दबी हुई ज्वाला को प्रज्वलित कर दिया।

शुरू ही से आपकी बुद्धि ऐसी तीव्र थी कि आप प्रत्येक कक्षा में उत्तम सफलता प्राप्त करते रहे। म्योर सेन्ट्रल कालेज इलाहाबाद से इस शान से बी० ए० पास किया कि सरकार ने उन्हें तुरन्त डिप्टी कलक्टर के लिए चुन लिया, परन्तु डिप्टी कलक्टर बनने से पूर्व ही आप कांग्रेस आंदोलन में भाग लेने लगे और यों दूसरों को जेल भेजने की बजाय स्वयं जेल चले गये।

जेल में गये तो वहाँ भी शैरो-शायरी का क्रम जारी रहा; बल्कि जेलखाना एक प्रकार से उनके लिए शैरो-शायरी की पाठशाला बन गया। यहाँ न केवल शायरों से उनकी भेंट हुई बल्कि बड़े-बड़े साहित्य-प्रेमियों से भी बराबर मुलाकातें होती रहीं। स्वर्गीय मौलाना मोहम्मद अली, स्वर्गीय मौलाना 'हसरत' मोहानी और मौलाना अब्दुलकलाम 'आजाद' की प्रतिदिन की संगति ने सोने पर सुहागे

का काम किया, अतः अपने एक शेर में वे कहते हैं :

अहले-जिदां^१ की ये मजलिस है सबूत इसका 'फ़िराक़' ।

कि बिखर कर भी ये शीराज़ा^२ परीशां न हुआ^३ ॥

१९२७ में जब जेल से छूटे तो क्रिश्चियन कालेज लखनऊ में नौकर हो गये और फिर सनातन धर्म कालेज कानपुर ने उर्दू पढ़ाने के लिए बुला लिया । इस बीच में आपने एम० ए० पास कर लिया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी के लैक्चरर नियुक्त हो गए और आज तक वहीं हैं ।

'फ़िराक़' साहब ने अनगिनत कवितायें, ग़ज़लें, रूबाइयाँ, कृतए इत्यादि लिखे हैं । समालोचक भी वे उच्च कोटि के हैं लेकिन स्मरण वे सदा अपनी ग़ज़लों बल्कि ग़ज़लों के उन शेरों के कारण किये जाएँगे जिनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँचती है और जो निस्संदेह क्लासिक का दर्जा रखते हैं; और उन्हीं शेरों के कारण, जिनमें तसव्वुफ़ (मुस्लिम संतवाद) और ग़ज़ल की परम्परागत कथावस्तु से लेकर राजनीति और वर्ग-संघर्ष तक सभी कुछ है, कुछ लोग उन्हें आधुनिक उर्दू साहित्य का सबसे बड़ा ग़ज़लगो (ग़ज़लें लिखने वाला शायर) मानते हैं और इसमें कोई संदेह भी नहीं है कि उनके यहाँ शब्दों की जो सुन्दर पैठ, हिन्दी तथा उर्दू के शब्दों तथा रूपकों का सुन्दर समन्वय (जिससे उनकी भाषा सरस तथा सहज हो गई है), प्रेम की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताएँ और सौन्दर्य की अलौकिक उद्भावना जिस सजीलेपन से विद्यमान है, वह अन्य उर्दू शायरों के यहाँ कुछ कम ही नज़र आती है । भावुकता में चिंतन का तत्त्व सम्मिलित कर वे न केवल प्रभावशीलता में बहुत बड़ी वृद्धि कर देते हैं बल्कि सार्थकता में भी निखार आ जाता है ।

जहाँ तक पिंगल आदि का सम्बन्ध है 'असर' लखनवी के कथनानुसार 'फ़िराक़' के शेरों में यहाँ-वहाँ कुछ त्रुटियाँ अवश्य मिलती हैं लेकिन अब इसको क्या किया जाय कि प्रत्येक काल के महान् कवियों की रचनाओं में उनके समकालीन साहित्यकार कई प्रकार की त्रुटियाँ निकालते रहे हैं । 'मीर' की ग़ज़लों में से कुछ शेर छाँटकर उन्हें लोलुप आदि सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया, 'ग़ालिब' के शेरों को अर्थहीन तथा 'ग़ालिब' पर फ़ार्सी शायरों के शेर चुराने का आरोप लगाया गया । 'इक़बाल' को तो लखनऊ के शायरों ने यह कहकर शायर मानने से ही इन्कार कर दिया कि वे शायरी के नियमों से

-
१. जेल-निवासी २. सिलाई, जो पुस्तक के पृष्ठों में की जाती है
३. बिखरा नहीं

अनभिज्ञ हैं। और अंग्रेज़ी साहित्य में तो इसका सबसे बड़ा प्रमाण शेक्सपियर है जिसके सम्बन्ध में अब भी समालोचकों का मत है कि वे व्याकरण बिल्कुल नहीं जानते थे और अशुद्ध भाषा लिखते थे। लेकिन.....

‘रूहे-कायनान’, ‘शोला-ए-साज़’, ‘मशअल’, ‘रूप’, ‘शबनमिस्तान’, ‘रमज़ो-कनायात’ इत्यादि कविता-संग्रहों के रचयिता ‘फ़िराक़’ गोरखपुरी आधुनिक काल के उन बड़े उर्दू शायरों में से हैं जिनकी संख्या अधिक नहीं, जिन्हें प्रगतिशील कवि कहलवाने का गौरव प्राप्त है, और जिनका नाम मीर, ग़ालिब, इक़बाल, जोश और ज़िगर के साथ लिया जाता है।

राजलें

डरता हूं कामयाबी-ए-तक्रदीर^१ देख कर ।
 यानी सितमजरी^२ भी-ए-तक्रदीर^३ देख कर ॥
 कालिब^३ में रूह फूंक दी या जहर भर दिया ।
 मैं मर गया हयात^४ की तासीर^५ देखकर ॥
 हैरां हुए न थे जो तसव्वुर^६ में भी कभी ।
 तस्वीर हो गये तेरो तस्वीर देखकर ॥
 ख्वाबे-अदम^७ से जागते ही जो पे बन गई ।
 जहराबा-ए-हयात^८ की तासीर देखकर ॥
 ये भी हुआ है अपने तसव्वुर में होके महव^९ ।
 मैं रह गया हूं आपकी तस्वीर देखकर ॥
 सब मरहले हयात के तै करके अब 'फिराक'^{१०} ।
 बैठा हुआ हूं मौत में ताखीर^{११} देखकर ॥



'उमोदे-मर्ग'^{१२} कब तक, ज़िन्दगी का दर्दे-सर कब तक ?
 ये माना सब करते हैं मोहब्बत में, मगर कब तक ?
 दियारे-दोस्त^{१३} हद होती है यूं भी दिल बहलने की !
 न याद आयें ग़रीबों^{१४} को तेरे दीवारो-दर कब तक ?

१. भाग्य की सफलता २. भाग्य का मज्जाक ३. शरीर ४. जीवन
 ५. गुण, प्रभाव ६. कल्पना ७. नास्तित्व ८. जीवन का विष
 ९. निमग्न १०. विलम्ब ११. मृत्यु की आशा १२. मित्र का देश
 १३. प्रवासी

ये तदबीरे^१ भी तक्रदीरे-मुहब्बत बन नहीं सकतीं ।
 किसी को हिज्र में भूले रहेंगे हम मगर कब तक ?
 इनायत की, करम की, लुत्फ की आखिर कोई हद है !
 कोई करता रहेगा चारा-ए-ज़रमे-जिगर^२ कब तक ?
 किसी का हुस्न रुसवा हो गया पर्दे ही पर्दे में ।
 न लाये रंग आखिरकार तासीरे-नज़र कब तक ?

पे माना जिन्दगी है चार दिन की ।
 बहुत होते हैं यारो चार दिन भी ॥
 खुदा को पा गया वाइज़^२, मगर है ।
 जरूरत आदमी को आदमी की ॥
 बसा-आकात^३ दिल से कह गई है ।
 बहुत कुछ वो गिनाते-गुनासर^४ भी ॥
 मिला हूँ मुस्करा कर उससे हर बार ।
 मगर आँखों में भी थी कुछ नमी सी ॥
 मुहब्बत में करे क्या हाल दिल का ।
 खुशी ही काम आती है न गम ही ॥
 भरी महफ़िल में हर इक से बचाकर ।
 तेरी आँखों ने मुझ से बात कर ली ॥
 लड़कपन की अदा है जान-लेवा ।
 ग़ज़ब^५ ये छोकरी है हाथ भर की ॥
 है कितनी शोख़ तन्ज़ अय्यामे-गुल पर^६ ।
 चमन में मुस्कराहट हर कली की ॥
 रक्कीबे-गमज़दा^७ अब सब कर ले ।
 कभी इससे मेरी भी दोस्ती थी ॥

१. हृदय के आघात का इलाज २. धर्मोपदेशक ३. प्रायः ४. अल्प-
कालीन दृष्टि ५. लड़कपन की अदा को हाथ भर की छोकरी से उपमा दी है
६. वसन्त ऋतु पर कितना चपल व्यंग है ७. दुखित प्रतिद्वन्द्वी

शामे-गम कुछ उस निगाहे-नाज़ की बातें करे ।
 बेखुदी बढ़ती चली है राज़ की बातें करो ॥
 नकहते-जुल्फ़े-परीशां, दास्ताने - शामे - गम^१ ।
 सुबह होने तक इसी अंदाज़ की बातें करो ॥
 ये सकूते-यास^२ , ये दिल की रगों का टूटना ।
 ख़ामशी में कुछ शिकस्ते-साज़ की^३ बातें करो ॥
 हर रगे-दिल वज्द में^४ आती रहे, दुखती रहे ।
 यूँही उस जा-ओ-बेजा^५ नाज़ की बातें करो ॥
 कुछ क़फ़स^६ की तीलियों से छन रहा है तूर^७ सा ।
 कुछ फ़जा^८ कुछ हसरते-परवाज़^९ की बातें करो ॥
 जिसकी फ़ुरकत^{१०} ने पलटदी इश्क़की काया 'फ़िराक़' ।
 आज उस ईसा-नफ़स दमसाज़^{११} की बातें करो ॥

१. उलझे हुए सुगंधित केशों और शोकभरी संध्या (रात) का वृत्तांत
 २. नैराश्य की चुप्पी ३. साज़ के टूटने की ४. दिल की हर नस उन्माद में
 ५. उचित-अनुचित ६. पिंजरे ७. प्रकाश ८. आकाश ९. उड़ने की
 अभिलाषा १०. विछोह ११. पवित्र-हृदय मित्र

रुबाइयां

घर छोड़े हुआ की कोई मंज़िल न सही ।
 होती नहीं सहल कोई मुश्किल न सही ॥
 हस्ती^१ की ये रात काट देने के लिए ।
 वीराना सही, किसी की महफ़िल न सही ॥

◇ ◇ ◇

खोते हैं अगर जान तो खो लेने दे ।
 जो ऐसे में हो जाये वो हो लेने दे ॥
 एक उम्र पड़ी है सब्र भी कर लेंगे ।
 इस वक़्त तो जी खोल के रो लेने दे ॥

◇ ◇ ◇

कतरे अरक़े-जिस्म के^२ मोती की लड़ी ।
 है पैकरे-नाज़नी^३ कि फूलों की छड़ी ॥
 गर्दिश में निगाह है कि बटती है हयात^४ ।
 जन्नत भी है आज उम्मीदवारों में खड़ी ॥

◇ ◇ ◇

संजोग बियोग की कहानी न उठा ।
 पानी में भीगते कंवल को देखा ॥
 बीती होंगी सुहाग रातें कितनी ।
 लेकिन है आज तक कंवारा नाता ॥

◇ ◇ ◇

फुटकर शेर

गरज कि काट दिये ज़िन्दगी के दिन ऐ दोस्त ।
वो तेरी याद में हों या तुझे भुलाने में ॥

◇ ◇ ◇
मंज़िलें गर्द^१ के मार्गिद उड़ी जाती हैं ।
वही अंदाज़े-जहाने-गुज़रा^२ कि जो था ॥

◇ ◇ ◇
हज़ार बार ज़माना इधर से गुज़रा है ।
नई-नई सी है कुछ तेरी रहगुज़र फिर भी ॥

◇ ◇ ◇
ये ज़िन्दगी के कड़े कोस, याद आता है ।
तेरी निगाहे-करम^३ का घना-घना साया ॥

◇ ◇ ◇
मुनासबत^४ भी है कुछ ग़म से मुझको और ऐ दोस्त ।
बहुत दिनों से तुझे मेहरबां नहीं पाया ॥

◇ ◇ ◇
कुछ आदमी को हैं मजबूरियां भी दुनियां में ।
अरे वो दर्दे - मुहब्बत सही, तो क्या मर जाएँ ॥

◇ ◇ ◇
मुझे ख़बर नहीं है ऐ हमदमो, सुना ये है ।
कि देर-देर तक अब मैं उदास रहता हूँ ॥

◇ ◇ ◇
एक तेरे छुटने का ग़म, एक ग़म उनसे मिलने का ।
जिनकी इनायतों^५ से जी और उदास हो गया ॥

१. धूल २. काल-चक्र की रीति ३. कृपा-दृष्टि ४. सम्बंध, लगाव
५. कृपाओं

हम से क्या हो सका मुहब्बत में ?
तुमने तो खैर बेवफ़ाई की ॥

◇ ◇ ◇
कौन ये ले रहा है अंगड़ाई ।
आसमानों को नींद आती है ॥

◇ ◇ ◇
मैं पा के भी तुझे कुछ मुन्तज़िर सा हूँ तेरा ।
है दिल का क़ौल^१ कि तू आप अपनी आहट है ॥

◇ ◇ ◇
सिमट सिमट सी गई है फ़ज़ा-ए-बेपायां^२ ।
बदन घुराये वो जिस दम इधर से गुज़रे हैं ॥

◇ ◇ ◇
यकलस्त^३ चौंक उठा हूँ मैं जिस दम पड़ी है आँख ।
आये तुम आज भूली हुई याद की तरह ॥

◇ ◇ ◇
कहाँ वो खलवतें^४ दिन-रात की और अब ये आलम^५ है ।
कि जब मिलते हैं दिल कहता है कोई तीसरा होगा ॥

◇ ◇ ◇
मैं देर तक तुझे खुद ही न रोकता लेकिन ।
तू जिस अदा से उठा है उसी का रोना है ॥

◇ ◇ ◇
मेहरबानी को मुहब्बत नहीं कहते ऐ दोस्त ।
आह अब मुझसे तेरी रंजिश-बेजा^६ भी नहीं ॥

◇ ◇ ◇
क़-ए-जानां^७ के भी इक मुद्दत से हैं आहट पे कान ।
अहले-ग़म^८ के कारवां, किन वादियों में खो गये ॥

१. कथन २. असीम शून्य ३. एकाएक ४. एकांत की मुलाकातें
५. हालत ६. व्यर्थ की अप्रसन्नता ७. यार की गली ८. शोक-ग्रस्त प्रेमियों

थी यूं तो शामे-हिज्र^१ मगर पिछली रात को ।
वो दर्द उठा 'फिराक़' कि मैं मुस्करा दिया ॥

बंजा है ज़ब्त भी, लेकिन मुहब्बत में कभी रोलें ।
दबाने के लिए हर दर्द, ऐ नादां नहीं होता ॥

हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आये ।
अरे दीवाना हो जाना मुहब्बत में तो आसां है ॥

शाम भी थी धुआं-धुआं, हुस्न भी था उदास-उदास ।
दिल को कई कहानियां, याद-सी आके रह गईं ॥

ज़िन्दगी को भी मुंह दिखाना है ।

रो चुके तेरे बेकरार बहुत ॥

मुहब्बत में मेरी तनहाइयों के हैं कई उनवां^२ ।
तेरा आना, तेरा मिलना, तेरा उठना, तेरा जाना ॥

हुस्न को इक हुस्न ही समझे नहीं और ऐ 'फिराक़' ।
मेहरवां, नामेहरवां क्या-क्यो समझ बैठे थे हम ॥

'फिराक़' तू ही मुसाफ़िर है तू ही मंज़िल भी ।
किधर चला है मुहब्बत की चोट खाये हुए ॥

न रहज़नों से^३ रुके रास्ते मुहब्बत के ।
वो क़ाफ़ले नज़र आये लुटे-लुटाये हुए ॥

देखिये कब इस निज़ामे-ज़िन्दगी की^१ सुबह हो ।
आसमानों को भी जैसे आ रही है नींद सी ॥

◇ ◇ ◇
मुद्तें गुज़रीं तेरी याद भी आई न हमें ।
और हम भूल गये हों तुझे, ऐसा भी नहीं ॥

◇ ◇ ◇
कहां का वस्ल^२ तनहाई ने शायद भेस बदला है ।
तेरे दम भर के आ जाने को हम भी क्या समझते हैं ॥

◇ ◇ ◇
न कोई वादा, न कोई यक़ीं, न कोई उमीद ।
मगर हमें तो तेरा इन्तज़ार करना था ॥

◇ ◇ ◇
उस रहगुज़ार पर है रवां कारवाने-इश्क़ ।
कोसों जहाँ किसी को खुद अपना पता नहीं ॥

◇ ◇ ◇
ज़िन्दगी क्या है आज इसे ऐ दोस्त ।
सोच लें और उदास हो जायें ॥

◇ ◇ ◇



‘हफ़ीज़’ जालंधरी

तशकीलो-तकमीले-फ़न में जो भी ‘हफ़ीज़’ का हिस्सा है
निस्फ़ सदी का किम्सा है दो-चार बरस की बात नहीं

परिचय

आपने अपनी आयु में इस प्रकार की कथायें अवश्य सुनी होंगी कि एक बार जब मारे गर्मी के चील अंडा छोड़ रही थी और मनुष्य, पशु सब की जवानें बाहर निकल आई थी तो बैजूबावरा ने मल्हार गा दिया और देखते-देखते मूसलाधार वर्षा होने लगी। या तानसैन ने आधी रात को दीपक-राग छेड़ दिया और शहर भर के बुझे हुए दीपक आप ही आप जल उठे।

ऐसी कथाओं को आप मनघड़ंत और कल्पित बातें कह सकते हैं लेकिन इन कथाओं में काव्य-विषय और उसके रूप(संगीत धर्म) के परस्पर सम्बन्ध की ओर जो स्पष्ट संकेत मिलता है, उसकी किसी प्रकार अवहेलना नहीं की जा सकती और यही कारण है कि किसी महान् कवि की किसी रचना के बारे में कभी इस प्रकार की बातें सुनने में नहीं आई कि कविता का विषय तो शृंगाररस का है और शब्द भक्तिरस के प्रयुक्त किये गये हैं।

मोहम्मद हफीज 'हफीज' जालंधरी की शायरी का अध्ययन करने से जो बात सबसे पहले हमें अपनी ओर खींचती है, वह यही विषय और रूप का परस्पर सम्बन्ध है। उसके यहाँ एक शब्द पर दूसरा शब्द, एक पंक्ति पर दूसरी पंक्ति और एक शेर पर दूसरा शेर इस प्रकार ठीक बैठा हुआ और उसे आगे बढ़ाता हुआ मिलता है, मानो किसी चित्र पर पड़ा हुआ पर्दा सरक रहा हो। और फिर जब पूरा चित्र हमारे सामने आता है तो जाना-पहचाना होने पर भी हमें उसमें कुछ ऐसा नया अर्थ, नया प्रसंग और नया सौंदर्य नजर आने लगता है कि हम उस पर से नज़रें हटाना पसंद नहीं करते। नये और पुरानेपन के इस

समावेश से 'हफ़ीज़' ने अपने यहाँ जो निरालापन उत्पन्न किया है, वह आधारित है उसके छोटे-छोटे संगीतधर्मी छन्दों के चुनाव पर (जिसके लिए उसने हिन्दी पिंगल का भी आश्रय लिया है), विचारों की एकाग्रता पर, चित्र-चित्रण के लिए चित्र से मेल खाती हुई उपमाओं पर। अतएव जब हम उसकी कविता 'वसंत' या 'अभी तो मैं जवान हूँ' पढ़ते हैं (या उसके मुँह से सुनते हैं) तो हम पर एक विचित्र प्रकार की मस्ती और उन्माद सा छा जाता है। 'जलवा-ए-सहर' के विषय-वस्तु की ओर ध्यान दिये बिना केवल शब्दों के उतार-चढ़ाव से ही ऐसा मालूम होता है, जैसे नींद में डूबा हुआ पूरा संसार जाग उठा हो और एक अंतिम अंगड़ाई के साथ सारी शिथिलता को परे झटक कर दिनचर्या के लिये तैयार हो रहा हो। 'तारों भरी रात' सुनते समय न केवल पूरे विश्व के सो जाने का विश्वास हो जाता है, बल्कि स्वयं सुनने वाले पर निद्रा आक्रमण करने लगती है, और जब हम 'बरसात' सुनते हैं तो लगता है, वर्षा ऋतु में हम किसी बाग की सैर कर रहे हैं, भूला भूलने वाली मल्हार गा रही हैं और उनके अरमानों भरे गीत हमारे दिल में हूक-सी उत्पन्न कर रहे हैं।

'उसके मुँह से सुनते हैं' लिखने की आवश्यकता मुझे इसलिए हुई कि एक बड़ा शायर होने के साथ-साथ 'हफ़ीज़' एक बड़ा अभिनेता भी है। आज तक कोई ऐसा मुशायरा (कवि-सम्मेलन) दूसरे शायरों के लिये 'शुभ' सिद्ध नहीं हुआ जिसमें 'हफ़ीज़' मौजूद हो। अपनी एक-दो तानों से ही वह पूरे मुशायरे पर छा जाता है और लोग-बाग बार-बार उसी के शेर सुनने की फ़र्माइश करने लगते हैं। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि वह केवल मुशायरों का शायर है और उसकी सफलता का भेद उसकी गलेबाजी या उसकी विभिन्न शारीरिक हरकतों में निहित है और इसलिये उसे गायक या मसख़रा कहकर टाला जा सकता है। (शुरू-शुरू में ऐसी कोशिशें ज़रूर की गई थीं) नहीं, गायक या मसख़रे की बजाय मौलिक रूप से वह न केवल एक बड़ा शायर है बल्कि उर्दू शायरी में वह एक कड़ी का सा महत्त्व रखता है और मेरे इस कथन में शायद संदेह की कम गुंजाइश होगी कि 'इक़बाल' के तुरन्त बाद जिन उर्दू-शायरों ने शायरी को जीवन के निकटतर लाने, विषय से लग्गा खाते हुए छन्दों का 'ग्राविष्कार' करने और खूब सोच-समझ कर भाषा तथा शैली को सरल बनाने के सफल प्रयास किये हैं और इस प्रकार नये शायरों के लिये नई राहें खोली हैं, उनमें 'अस्तर' शीरानी और 'हफ़ीज़' जालंधरी का नाम सबसे ऊपर आता है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक और प्राचीन घटनाओं को 'शाहनामा

इस्लाम' (चार संस्करण) के नाम से काव्य का रूप देने और शुष्कता तथा गद्य से स्वच्छ रखने में 'हफीज़' ने जिस कलात्मक निपुणता का प्रमाण दिया है, निःसंदेह वह उसी का काम था। फ़िदौसी (प्रसिद्ध ईरानी कवि) ने महमूद गज़नवी के कहने पर 'शाहनामा' लिख कर ईरान के बादशाहों की महानताओं को फिर से जीवित करने का जो अद्वितीय काम किया था, ठीक उसी प्रकार 'हफीज़' ने अपनी धार्मिक भावनाओं से प्रभावित होकर इस्लामी इतिहास और इस्लाम की आन-बान को ज़िन्दा करने की कोशिश की है।

'शाहनामा इस्लाम' के अतिरिक्त उसकी कविताओं के कई और संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'नगमा-ए-ज़ार', 'सोज़ो-साज़' और 'तलखाबा-ए-शीरी' उल्लेखनीय हैं। इन संग्रहों की नज़्मों, ग़ज़लों और गीतों की विशेषता वही असाधारण प्रभाव है, जिसमें पाठक आप ही आप बहता चला जाता है।

१९२१ में जब उसने पहले-पहल परम्परागत शायरी से हटकर नया रंग अपनाया तो, जैसा कि सदैव होता है, रूढ़िवादियों ने उस पर अपने छुरी-काँटे तेज़ किये। इस बारे में हफीज़ एक स्थान पर स्वयं लिखता है :

“मुझे ऐसे लोगों की भीड़-भाड़ में से राह निकालनी पड़ी है जिनका बोध अभी दबोच लेने, तिकका-बोटी कर डालने और खा जाने से आगे नहीं बढ़ा। साहित्य-वाटिका उनकी शिकारगाह है। मुझे उनके इक्के-दुक्के से भी वास्ता पड़ा और उनकी टोलियाँ भी मुझ पर लपकीं—भपटी। पहले ये भभकी देते हैं, कोई डर जाये या उलझ पड़े तो उसकी खैर नहीं। उनसे बचने के लिए केवल एक शस्त्र उपयोगी है—बेपरवा मुस्कराहट।”

अतएव उसने अपने इसी शस्त्र का प्रयोग किया और कान लपेटकर, मुस्कराता हुआ, अपनी डगर पर चलता रहा और अब तक चल रहा है।

उर्दू शायरी के इस निराले पथिक का जन्म १४ जनवरी १९०० को जालंधर (पंजाब) में हुआ। इस प्रसंग से यह शताब्दि और वह साथ-साथ चल रहे हैं। स्वयं उसके कथनानुसार कोई अन्य होता तो एक इसी आधार पर शायर से कहीं उच्च पदवी की मांग कर बैठता—“यह मेरा अहसान है कि मैं शायर होने का ज़िक्र भी दबी ज़बान से करता हूँ।”

वह अभी बहुत छोटा था जब उसे मोहल्ले की मस्जिद में बिठा दिया गया, जहाँ ६ वर्ष की आयु में ही उसने क़ुरान शरीफ़ पढ़ लिया, बहुत से सूरे (क़ुरान शरीफ़ के खंड) कंठस्थ कर लिए और करीमा और मामकीमा (शेख़ सादी (ईरानी कवि) की बच्चों की नज़्में) रट लीं। लेकिन इससे आगे वह मस्जिद

में न चल सका, जिसका कारण उसके कथनानुसार नैतिक भी था और भौतिक भी। फिर उसे मिशन स्कूल में भरती कराया गया, लेकिन वहाँ से वह दूसरी कक्षा ही से भाग निकला। सरकारी पाठशाला में प्रविष्ट हुआ, चौथी कक्षा में था कि वहाँ से भी भाग लिया। आर्य पाठशाला में और फिर मिशन हाई स्कूल में ले जाया गया लेकिन 'गरिब' से उसकी जान जाती थी और 'गरिब' के घंटे में वह प्रतिदिन भाग निकलता था, अतः दूसरे दिन उसकी खूब पिटाई होती थी। भागने और पिटने के इस संघर्ष में आखिर भागने की विजय हुई और वह सातवीं कक्षा से ऐसा भागा कि फिर कभी पाठशाला का मुँह न देखा।

यह बात सचमुच आश्चर्यजनक है कि इतनी कम शिक्षा और घर के अत्यंत असाहित्यिक वातावरण के होते हुए उसने सात वर्ष की छोटी-सी आयु में तुकबन्दी शुरू कर दी और फिर ग्यारह वर्ष की आयु में बातायदा शेर कहने लगा। अपने उन दिनों के बारे में स्वयं उसका बयान देखिये :

‘मेरे घराने पर मौत भपट रही थी। मेरे भाइयों को प्लेग और हैजा लिये जा रहे थे और मुझे काफ़िये और गज़ल।’

काफ़िये और गज़ल के लिए नियमानुसार उसे किसी 'उस्ताद' की ज़रूरत पड़ी। अतएव उसने करीबी बस्ती के एक शायर सरफ़राज़ खां 'सरफ़राज़' (जो उसके कथनानुसार उस ज़माने में जैसे शेर कहते थे आज बुढ़ापे में भी वैसे ही कहते हैं) की शरण ली। लेकिन 'सौभाग्यवश' उन्होंने कोई विशेष परामर्श न दिया। फिर फ़ार्सी के एक महा पंडित और कवि मौलाना गुलाम कादिर 'गिरामी' को कुछ गज़लें दिखाई, जिस पर 'गिरामी' साहब ने मश्वरा दिया कि किसी का शिष्य बनने की बजाय उसे स्वयं ही अपनी रचनाओं पर बार-बार आलोचनात्मक दृष्टि डालनी चाहिये। अतः इस मश्वरे पर अमल करते हुए उसने फिर किसी 'उस्ताद' के आगे घुटने नहीं टेके और अन्त में इस दावे का हक़दार हो गया कि :

अहले-जबां तो हैं बहुत, कोई नहीं है अहले-दिल।

कौन तेरी तरह 'हफ़ीज़' दर्द के गीत गा सका ?

और

‘हफ़ीज़’ अहले-जबां कब मानते थे।

बड़े जोरों से मनवाया गया हूँ ॥

आज 'हफ़ीज़' जालंधरी जिसे 'अब्बुलअसर' (प्रभावशालियों का पिता) कहा जाता है, जिसकी कविता सम्बन्धी सेवाओं के आधार पर (कदाचित् युद्ध के पक्ष

में, 'मैं तो छोरा को भरती कराये आई रे'—ऐसी प्रचारात्मक कवितायें लिखने के कारण) अंग्रेजी सरकार ने उसे 'खान बहादुर' का खिताब दिया था और जिसे पाकिस्तान सरकार अपना सबसे बड़ा राष्ट्रीय-कवि मानती है और हर वर्ष एक बड़ी रकम वृत्ति-स्वरूप प्रदान करती है, किसी ज़माने में अत्यन्त निर्धन और निराश्रय रह चुका है। उसने रेलवे लाइन पर मेटी की है, इत्र बेचा है, ताले बनाने और कपड़े सीने का धंधा किया है। डाकघर के बाहर बैठकर लोगों के पत्र लिखे हैं, रेलवे स्टेशनों पर मजदूरी और सेना की ठेकेदारी की है। नये कवियों को कवितायें लिख-लिखकर देना और सिगर मशीन कम्पनी की नौकरी इत्यादि सैकड़ों पापड़ बेले हैं। जीवन के साथ इन तरह-तरह की समझौता-बाज़ियों की तरह काव्य-रूप से तो नहीं लेकिन काव्य-विषय के साथ उसने काफ़ी समझौताबाज़ियाँ की हैं। इसके अतिरिक्त (विशेषकर आजकल) वह 'धर्म' की छत्र-छाया में इस हद तक सिमटा हुआ है कि उसकी कलात्मक योग्यताओं को देखते हुए यह कहने की इच्छा होती है—'काश ! वह सुधारक बनने की कोशिश न करता !'

अभी तो मैं जवान हूँ

(१)

अभी तो मैं जवान हूँ !

हवा भी खुशगवार है गुलों पे भी निखार है,
तरन्नुम^१ हज़ार है बहार पुरबहार है,

कहां चला है साक्रिया ?

इधर तो लौट इधर तो आ,

अरे ये देखता है क्या ?

उठा सबू^२ , सबू उठा,

सबू उठा, प्याला भर प्याला भर के दे इधर,

चमन को सिम्त कर नज़र समां^४ तो देख, बेखबर,

वो काली-काली बदलियां,

उफ़क^५ पे हो गई अयां^६ ,

वो इक हुणूमे-मैकशां^७ ,

है सू-ए-मैकदा रवां^८ ,

ये क्या गुमां है बदगुमां समझ न मुझ को नातवां^९,

खयाले-जुहद^{१०} अभी कहां ?

अभी तो मैं जवान हूँ !

१. संगीत २. सुराही ३. ओर ४. समय ५. क्षितिज ६. प्रकट
७. मद्यपों का समूह ८. मधुशाला की ओर जा रहा है ९. दुर्बल १०. उपा-
सना का विचार

(२)

इबादतों का ज़िक्र है निजात^१ की भी फ़िक्र है,
जन्नत है सवाब^२ का खयाल है अज़ाब^३ का,

मगर सुनो तो शैख जी !

अजीब शं हैं आप भी !

भला शबाबो - आशिकी,

अलग हुए भी हैं कभी ?

हंसीन जलवारेज़ हों^४ अदायें फ़ितनाखेज़^५ हों,
हवायें इत्रबेज़^६ हों तो शौक़ क्यों न तेज़ हों,

निगार-हाये फ़ितनागर^७ ,

कोई इधर कोई उधर,

उभारते हैं ऐश पर,

तो क्या करे कोई बशर^८ ?

चलो जी क्रिस्ता मुस्तसर तुम्हारा नुक्ता-ए-नज़र^९ ,

दुरुस्त है तो हो, मगर,

अभी तो मैं जवान हूँ !

१. मुक्ति २. पुण्य ३. पापों का दण्ड ४. जलवे दिखा रहे हों

५. फ़ितने खड़े करने वाली ६. सुगंधियां बिखेर रही हों ७. फ़ितने उठाने वालों (माशूको) के मुखड़े ८. प्राणी ९. दृष्टिकोण (विचार)

(३)

ये गश्त^१ कोहसार^२ की ये सैर छूएबार^३ की,
ये बुलबुलों के चहचहे ये गुलरुखों के^४ कहकहे,

किसी से मेल हो गया,
तो रंजो-फ़िक्र खोगया,
कभी जो बस्त^५ सो गया,
ये हँस गया वो रोगया,

ये इश्क की कहानियाँ ये रस भरी जवानियाँ,
उधर से मेहरबानियाँ इधर से लनतरानियाँ^६ ,

ये आस्मान ये ज़मीं,
नज़्जाराहाये दिलनशीं^७ ,
इन्हें हयात - आफ़रीं^८ ,
भला मैं छोड़ दूँ यहीं !

है मौत इस क़दर करीं^९ मुझे न आयेगा यक़ीं,

नहीं-नहीं, अभी नहीं,
अभी तो मैं जवान हूँ !

१. सैर २. पहाड़ी स्थान ३. नदी किनारा ४. फूलों जैसे चेहरे
वालों के ५. भाग्य ६. डींगें ७. सुन्दर दृश्य ८. जीवन-वधक
९. निकट

(४)

न ग़म कणूदो-बस्त^१ का बुलंद का न पस्त का,
न बूद^२ का न हस्त^३ का न वादा-ए- अलस्त^४ का,

उमीद और यास गुम,
हवास गुम कयास गुम,
नज़र से आस पास गुम,
हमा^५, बजुज^६ गिलास गुम,

न मै में कुछ कमी रहे क़दह^७ से हमदमी रहे,
नशिस्त^८ ये ज़मीं रहे यही हमाहमी रहे,

वो राग छेड़ मुतरिबा^९ ,
तरबफ़ज़ा^{१०}, अलमरुबा^{११},
असर सदा-ए-साज़ का^{१२},
जिगर में आग दे लगा,

हर एक लब^{१३} पे हो सदा न हाथ रोक साक्रिया,

पिलाये जा पिलाये जा,
अभी तो मैं जवान हूँ !

१. खोलने-बांधने का २. अतीत ३. वर्तमान ४. आदि काल का प्रण
(क़ुरान में एक स्थान पर आता है कि जब खुदा इन्सान को बना चुका तो उसने
उससे पूछा कि क्या मैं तेरा खुदा हूँ ? इन्सान ने उत्तर दिया कि हां तू मेरा
खुदा है। उसी की ओर संकेत है) ५. सभी कुछ ६. सिवाय ७. प्याला
८. महफ़िल ९. गायिका १०. आनन्दवर्धक ११. शोक को उड़ा देने
वाला १२. साज़ की आवाज़ का असर १३. होंठ

ईद का चांद

जीती रहो, मगर मुझे आता नहीं नज़र ।
 बेटी कहां है चांद ? मुझे भी बता, किधर ?
 अफ़सोस, अब निगाह भी कमज़ोर हो गई ।
 नेमत^१ खुदा ने दी थी बुढ़ापे में खो गई ॥
 मीनारे - खानकाह के ऊपर^२ ? कहाँ ? कहां ?
 कुछ भी नहीं, कोई भी नहीं है वहां कहां ?
 हां, डालियों के बीच में होगा वहीं कहीं ।
 वो है जहां पे अब्र^३ की सुखी कहीं-कहीं ॥
 अब हो चुकी है उम्र भी नौ और आठ साल ।
 गुज़रे तेरे खुसर^४ को भी गुज़रे हैं आठ साल ॥
 तेरी तरह से मैं भी कभी हां जवान थी ।
 वो दिन भले थे और भली उनकी शान थी ॥
 हर इक से पहले देखती थी मैं हिलाले-ईद^५ ।
 दस-बीस दिन से रहता था हरदम खयाले-ईद ॥
 अब दिन तुम्हारे, वक्त तुम्हारा, तुम्हारी ईद ।
 बेटी ! तुम्हारी ईद से है अब हमारी ईद ॥

१. सुख-सामग्री २. एक प्रकार की मस्जिद के मीनार के ऊपर
 ३. बादल ४. सुसर ५. ईद का चांद

गीत

जाग सोज़े-इश्क़^१ जाग !

जाग सोज़े-इश्क़ जाग !!

जाग काम देवता फ़ितना - हाए नौ^२ जगा ।

बुझ गया है दिल मेरा फिर कोई लगन लगा ॥

सर्द हो गई है आग !

जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

पड़ गई दिलों में फूट क्या विजोग पड़ गया ।

पृथ्वी पे चार खूट एक सोग पड़ गया ॥

सर नगूँ^३ है शेशनाग !

जाग सोज़े - इश्क़ जाग ॥

तूने आंख बंद की कायनात^४ सोगई ।

हुस्ने - खुदपसंद^५ की दिन से रात हो गई ॥

ज़र्द पड़ गया सुहाग !

जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

अब न वो सफ़र न सैर रहबरी न रहज़नी ।

कुछ नहीं तेरे बग़ैर दोस्ती न दुश्मनी ॥

अब लगाव है न लाग !

जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

१. प्रेम-ज्वाला २. नये फ़ितने ३. सिर झुकाये हुए ४. ब्रह्मा

५. आत्मप्रशंसक सौंदर्य

ऐ मुग़न्नी - ए - शबाब^१ जाग ख्वाबे - नाज़ से ।
दिल-शिकस्ता है रबाब अर्सा - ए - दराज़ से^२ ॥

मर गये क़दीम^३ राग ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

तू जो चश्म वा करे^४ हर उमंग जाग उठे ।
आहो - नाला जाग उठे राग रंग जाग उठे ॥
जोग से मिले बिहाग ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

फिर उसी उठान से तीर उठे कमां उठे ।
सब्र की ज़बान से शोर अलअमां^५ उठे ।
जाग उठे दिलों के भाग ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

जाग ऐ नज़र फ़िरोज़^६ जाग ऐ नज़र नवाज़^७ ।
जाग ऐ ज़माना सोज़^८ जाग ऐ ज़माना साज़ ॥
जाग नींद को तियाग^९ ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

१. यौवन के गायक २. बहुत समय से ३. प्राचीन ४. आँख खोले
५. हे भगवान! ६,७. नज़र को रौनक़ प्रदान करने वाला ८. ज़माने को जला
देने वाला ९. त्याग

राजलें

हम में ही थी न कोई बात याद न तुमको आ सके ।

तुमने हमें भुला दिया हम न तुम्हें भुला सके ॥

तुम ही न सुन सके अगर, किस्सा-ए-ग़म सुनेगा कौन ?

किस की ज़बां खुलेगी फिर, हम न अगर सुना सके ॥

होश में आ चुके थे हम, जोश में आ चुके थे हम ।

बज़म का रंग देख कर सर न मगर उठा सके ॥

रोनक़े-बज़म बन गये, लब पे हिकायतें^१ रहीं ।

दिल में शिकायतें रहीं, लब न मगर हिला सके ॥

शौक़े-विसाल^२ है यहां, लब पे सवाल है यहां ।

किस की मजाल है यहां, हम से नज़र मिला सके ।

ऐसा भी कोई नामावर, बात पे कान धर सके ।

सुन के यक़ीन कर सके, जा के उन्हें सुना सके ।

अज्ज़ से^३ और बढ़ गई बरहमी-ए-मिज़ाजे-दोस्त^४ ।

अब वो करे इलाज़े-दोस्त जिसकी समझ में आ सके ।

अहले-ज़बां^५ तो हैं बहुत, कोई नहीं है अहले-दिल ।

कौन तेरी तरह 'हफ़ीज़' दर्द के गीत गा सके



१. कथाएं २. मिलने की उत्सुकता ३. नम्रता प्रकट करने

४. महबूब के स्वभाव की कद्रता ५. भाषाविज्ञ

फुटकर शेर

दीवानगी-ए-इश्क^१ के बाद, आ ही गया होश ।
 और होश भी वो होश कि दीवाना बना दे ॥
 हम खूने - ज़िगर पी के चले जायेंगे साक़ी ।
 ले शीशा-ए-दिल^२ तोड़ दे पैमाना बना दे ॥

◇ ◇ ◇
 इश्क न हो तो दिल्लगी, मौत न हो तो खुदकुशी ।
 ये न करे तो आदमी आख़िरे-कार क्या करे ?

◇ ◇ ◇
 हाय किस दर्द से की ज़ब्त की तलक़ीन^३ मुझे ।
 हँस पड़े दोस्त जो मैंने कभी रोना चाहा ।
 आने वाले किसी तूफ़ान का रोना रोकर ।
 नाखुदा^४ ने मुझे साहिल पे डबोना चाहा ॥

◇ ◇ ◇
 फ़रिश्ते को न मैं शैतान समझा ।
 नतीजा ये कि बहकाया गया हूँ ॥
 मुझे तो इस ख़बर ने खो दिया है ।
 सुना है मैं कहीं पाया गया हूँ ॥

◇ ◇ ◇
 हो गया जब इश्क हम-आग़ोशे-तूफ़ाने-शबाब^५ ।
 अक़ल बैठी रह गई साहिल पे शरमाई हुई ॥

◇ ◇ ◇
 अब इब्तिदा-ए-इश्क का आलम^६ कहां 'हफ़ीज़' ।
 कश्ती मेरी डबो के वो दरिया उतर गया ॥

◇

◇

◇

१. इश्क का दीवानापन २. दिल-रूपी शीशा ३. हिदायत ४. मांझी
 ५. यौवन के तूफ़ान से बग़लगीर ६. इश्क के प्रारंभ की स्थिति

ये खूब^१ क्या है, ये ज़िस्त^२ क्या है, बशर^३ की असली सरिस्त क्या है ?
 बड़ा मज़ा हो तमाम चेहरे अगर कोई बेनकाब कर दे ॥
 तेरे करम^४ के मुआमले को तेरे करम ही पे छोड़ता हूँ ।
 मेरी खतायें गुमार कर ले मेरी सज़ा का हिसाब कर दे ॥

मेरी ज़िंदगी पर तअज़्जुब नहीं था ।
 मेरी मौत पर उनको हैरानियां हैं ॥
 नदामत हुई हथ में जिनके बदले ।
 जवानी की दो-चार नादानियां हैं ॥
 मेरा तजरुबा है कि इस ज़िन्दगी में ।
 परेशानियां ही परेशानियां हैं ॥

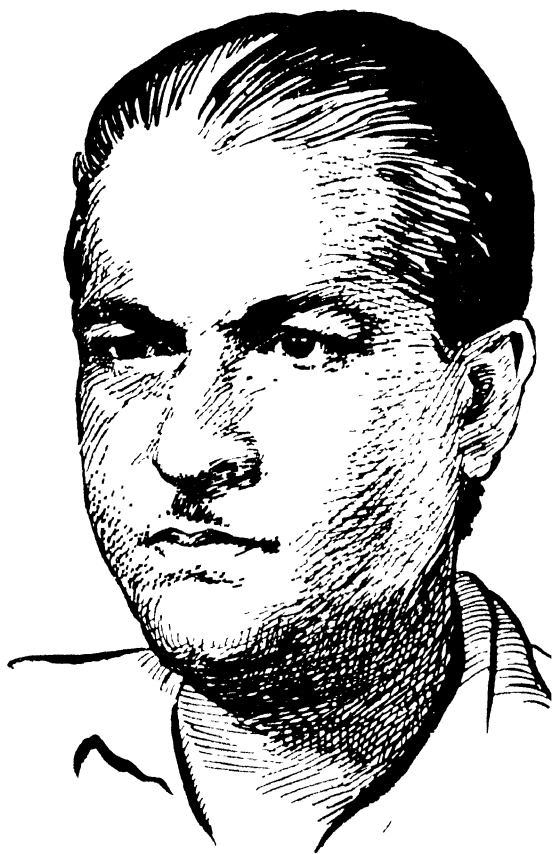
है अज़ल की^५ इस ग़लत-बख़शी^६ पे हैरानी मुझे ।
 इश्क़ लाफ़ानी^७ मिला है ज़िन्दगी फ़ानी^८ मुझे ॥

मेरे डूब जाने का बाइस^९ तो पूछो ।
 किनारे से टकरा गया था सफ़ीना^{१०} ॥

क्या नाखुदा^{११} बग़ैर कोई डूबता नहीं ।
 मुझको मेरे खुदा से पशेमां^{१२} न कीजिये ॥

गुज़रे हुए ज़माने का अब तज़करा^{१३} ही क्या ।
 अच्छा गुज़र गया, बहुत अच्छा गुज़र गया ॥

१. अच्छा २. बुरा ३. आदमी ४. कृपा ५. सृष्टि के पहले
 दिन की ६. अनुपयुक्त दान ७. अमर ८. नश्वर ९. कारण १०. नाव
 ११. मांभी १२. लज्जित १३. जिक्र



‘अख्तर’ शोरानी

मेरा हर शेर है ‘अख्तर’ मेरी जिन्दा तस्वीर
देखने वालों ने हर लफ्ज़ में देखा है मुझे

परिचय

‘अख्तर’ शीरानी का नाम जबान पर आते ही ‘गेटे’ का वह कथन याद आ जाता है जिसमें इस जर्मन दार्शनिक ने प्रेम तथा वेदना की भावना का जिक्र करते हुए कहा था कि प्रेम और वेदना की भावना विश्व की प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है, लेकिन इसका सजीव रूप नारी है।

जहाँ तक नारी को और उसके कारण प्रेम तथा वेदना को अपना काव्य-विषय बनाने का प्रश्न है, गेटे के इस ‘सजीव रूप’ को हम वर्डज्वर्थ के यहाँ ‘लूसी’ के रूप में देखते हैं, कीट्स की कविता में वह ‘फ्रैनी ब्रौनी’ बनकर हमारे सामने आता है और उर्दू का सब से बड़ा रोमांसवादी शायर ‘अख्तर’ शीरानी उसे ‘सलमा’ कहकर पुकारता है।

उर्दू के कुछ समालोचकों की दृष्टि में ‘अख्तर’ की ‘सलमा’ भी वर्डज्वर्थ की ‘लूसी’ और कीट्स की ‘फ्रैनी’ की तरह कवि की कल्पित प्रेयसी है—एक पवित्र परछाई, एक अलौकिक सुन्दरी—क्योंकि ‘सलमा’ के अतिरिक्त ‘अख्तर’ के यहाँ ‘रेहाना’, ‘अजरा’, ‘शीरी’, ‘शमसा’ इत्यादि कई नायिकाओं का उल्लेख मिलता है और समान मधुरता और भावुकता के साथ मिलता है।

‘अख्तर’ अपनी ‘सलमा’ की प्रशंसा करते हुए कहता है :

बहारे-हुस्न^१ का तू गुन्चा-ए-शादाब^२ है सलमा,
तुझे फ़ितरत ने अपने दस्ते-रंगीं से^३ संवारा है,
बहिस्ते-रंगो-बू का^४ तू सरापा इक नजारा है,

१. सौन्दर्य के वसन्त २. पल्लवित कलि ३. रंगीन हाथों से ४. रंग और सुगंध के स्वर्ग का

तेरी सूरत सरासर पैकरे-महताब^१ है सलमा,
 तेरा जिस्म इक हुजूमे-रेशमो-कमख्वाब^२ है सलमा,
 शबिस्ताने-जवानी^३ का तू इक ज़िन्दा सितारा है,
 तू इस दुनिया में बहरे-हुस्ने-फ़ितरत^४ का किनारा है,
 तू इस संसार में इक आसमानी ख्वाब है सलमा ।

और 'अज़रा' के सम्बन्ध में वह कहता है :

परी-ओ-हूर की तस्वीरे-नाज़नीं 'अज़रा' !
 शहीदे-जलवा-ए-दीदार^५ कर दिया तू ने ।
 नज़र को महशारे-अनवार^६ कर दिया तू ने ॥
 बहारो-ख्वाब की तनवीरे-मरमरी^७ 'अज़रा' ।
 शराबो-शेर की तफ़सीरे-दिलनशीं^८ 'अज़रा' !

और 'रेहाना' के बारे में लिखता है :

उसे फूलों ने मेरी याद में बेताब देखा है ।
 सितारों की नज़र ने रात भर बेख्वाब देखा है ॥
 वो शम्मए-हुस्न^९ थी, पर सूरते-परवाना^{१०} रहती थी ।
 यही वादी है वो हमदम^{११} जहाँ 'रेहाना' रहती थी ॥

लेकिन 'अख्तर' के एक परम मित्र हकीम नय्यर वास्ती ने अभी हाल में 'अख्तर व सलमा' नामक एक पुस्तक में बड़े विस्तार से बताया है कि 'सलमा' शायर की कोई कल्पित प्रेयसी नहीं बल्कि इसी संसार की एक जीवित सुन्दरी थी जो लाहौर में रहती थी और जिससे शायर को असीम प्रेम था और जो स्वयं भी उसे जी-जान से चाहती थी । दोनों में बराबर पत्र-व्यवहार होता था, लेकिन सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण वे जीवन में केवल दो-तीन बार ही एक दूसरे से मिल पाये; और जब 'सलमा' का विवाह हो गया और वह लाहौर से गुजरात चली गई तो शायर के लिए उसका विछोह असह्य हो उठा । वह दिन-रात शराब के नशे में शर्क रहने लगा और उसके दिल के तारों से ऐसे नगमे फूट निकले जो उर्दू की रोमांसवादी शायरी के लिए अन्तिम शब्द बन गये ।

वास्तविकता जो भी हो, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'सलमा'

-
१. चाँद की मूर्ति २. रेशम का ढेर ३. जवानी के शयनागार
 ४. प्रकृति के सौन्दर्य के सागर का ५. दर्शन के जलवे का शहीद
 ६. प्रलयक्षेत्र की ज्योति ७. मरमरीं आलोक ८. हृदय-स्पर्शी व्याख्या
 ९. सौन्दर्य का दीपक १०. पतंगे की तरह ११. साथी

‘अस्तर’ की शायरी का कलेवर भी है और आत्मा भी। वह प्राचीन शायरों की रहस्यमय प्रेमिकाओं के विपरीत इसी संसार की नारी है। उसकी छाती में पत्थर की बजाय दिल है, दिल में कोमल भावनाएँ हैं, जिसे शायर से प्रेम है और जो अपना प्रेम प्रकट भी करती है। लेकिन कभी-कभी समाज उसे आज्ञा नहीं देता कि वह शायर के प्रेम का उत्तर प्रेम से दे सके। बात बिल्कुल सीधी-सादी मालूम होती है और प्राचीन तथा आधुनिक काल के अनगिनत उर्दू शायर इस विषय पर बहुत कुछ लिख चुके हैं, लेकिन जिस भावावेग, प्रवाह और रमणीय ढंग से ‘अस्तर’ ने इन अनुभवों एवं अनुभूतियों को शायरी के साँचे में ढाला है, उर्दू का प्राचीन अथवा नवीन कोई शायर उस तक नहीं पहुँच पाता।

मैंने जो ‘अस्तर’ को उर्दू का सबसे बड़ा रोमांसवादी शायर कहा है तो मैं समझता हूँ इस सम्बन्ध में मैंने किसी अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया। रोमांसवाद एक बहुत विशाल तथा उलझी हुई धारणा है और प्रत्येक रोमांसवादी कवि रोमांस के क्षेत्र में रहते हुए भी एक दूसरे से अलग हो जाता है। कोई प्रेमिका की कल्पना-भर से ही आनन्दित हो लेता है, कोई उसके शरीर को छूना बल्कि उसे इस प्रकार अपने साथ सटाना चाहता है कि दोनों एक दूसरे में विलीन होकर रह जायें। कोई रोमांस के नाम पर प्रकृति पर आसक्त हो जाता है। यही भेद किसी को ‘शैले’ बनाता है, किसी को ‘वर्डज्वर्थ’, किसी को ‘कीट्स’ और किसी को ‘बायरन’; लेकिन विभिन्न सामाजिक स्थितियों तथा विभिन्न व्यक्तिगत प्रवृत्तियों के होते हुए भी समस्त रोमांसवादी कवियों में बहुत से अंश समान होते हैं, और एक सीमा तक वे एक-सी बातें करते नज़र आते हैं। ‘अस्तर’ शीरानी के रोमांसवाद को ‘दाग़’, ‘शाद’ अज़ीमाबादी और अज़मत उल्ला ‘अज़मत’ के रोमांसवाद से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन शायरों ने भी अपने-अपने समय में, अपने विशेष ढंग से रोमांस की बाँसुरी बजाई। विशेषतः अज़मत अल्ला ‘अज़मत’ ने जिस प्रकार परम्परागत ग़ज़ल से विद्रोह किया और बहुत से हिन्दी छन्दों में गीत और रोमान्टिक कविताएँ लिखीं और उर्दू शायरी को पहली बार (Sonnet) से परिचित कराया, उर्दू शायरी उसके इस उपकार को कभी नहीं भूल सकती। ‘अस्तर’ ने अपने इन पूर्वगामियों की इन परम्पराओं को न केवल आगे बढ़ाया है बल्कि उन्हें नई शैली और नया अर्थ पहनाया है, और वह जिस निडरता और अचूकता के साथ खुलकर सामने आया है उर्दू शायरी में उसका उदाहरण मिलना कठिन है। ‘हाली’ ने अपने ‘मुकद्दमा शैरो-शायरी’ में (जिसकी तुलना हम अंग्रेज़ी साहित्य के ‘Lyrical Ballads’

के Preface से कर सकते हैं। प्राचीन परम्परागत शायरी के विरुद्ध यथार्थवाद के लिए बहुत-सी गिरहें खोलीं। महबूब के लिए पुल्लिंग [फ़ारसी राजल के प्रभाव के कारण उर्दू शायरी में महबूब (प्रेयसी) के लिए पुल्लिंग का प्रयोग होता था] को अस्वाभाविक कहकर उसका खंडन किया। लेकिन स्वयं उन्होंने भी इसका कोई उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया। (संभव है इसका कारण यह हो कि प्रेम तथा रोमांस उनकी शायरी का क्षेत्र नहीं था।) अख्तर' शीरानी उर्दू का सब से पहला शायर है जिसने प्रेयसी को प्रेयसी के रूप में देखा अर्थात् उस के लिए स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग किया। इतना भर ही नहीं, उसने बड़े साहस के साथ बार-बार उसका नाम भी लिया।

रूढ़ियों के प्रति इस विद्रोह द्वारा न केवल उर्दू शायरों के दिलों की झिझक दूर हुई और उर्दू शायरी के लिए नई राहें खुली, उर्दू शायरी को एक नई शैली और नया कोण भी मिला। उर्दू की रोती-बिसूरती शायरी में ताज़गी और रंगीनी आई। और मैं 'अख्तर' को उर्दू का सब से बड़ा रोमांसवादी शायर इसलिए भी कहता हूँ कि संभवतः आने वाले युग में भी कभी उस जैसा रोमांसवादी शायर उत्पन्न नहीं होगा। 'उस जैसा' से मेरा भाव केवल रोमांसवादी शायर से है।

'अख्तर' की शायरी केवल जीवन के सौंदर्य और उसके लालित्य की शायरी है। सुन्दर रंगों और सुन्दर सपनों की शायरी। वह पूरे संसार को अपने विचारों तथा भावनाओं में रंगा हुआ देखता है। प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन करते हुए उसे अनुभव होता है कि प्रकृति के दृश्य उसकी आत्मगत (Subjective) भावनाओं से प्रभावित हैं। यदि वह उदास है तो ओस में नहाई हुई कलियाँ उसे उदास नज़र आती हैं और यदि वह प्रसन्न है तो अधखिले पुष्प उसे मुस्कराते हुए दिखाई देते हैं। सामाजिक परिस्थितियों से अलग-थलग उसकी शायरी एक ऐसे निश्चित तत्त्व का भावावेग प्रस्तुत करती है जो अधे कामदेव के नेतृत्व में केवल सौन्दर्य और प्रेम के राग अलापता है। वह नारी की सुन्दरता पर केवल आसक्त ही नहीं, उसका पुजारी भी है और उस पर मर-मिटने को अपना सौभाग्य समझता है।

और इसीलिए मैं 'अख्तर' शीरानी को उर्दू का सब से बड़ा रोमांसवादी शायर कहता हूँ क्योंकि नारी को और उसके कारण प्रेम और रोमांस को

अपना काव्य-विषय बनाने वाले आधुनिक उर्दू शायर, आत्मगत (Subjective) अनुभूतियों के साथ-साथ परगत (Objective) प्रेरणाओं को भी अपने सम्मुख रखते हैं। सामाजिक प्रतिबन्धों से घबराकर संसार से निकल भागने की अपेक्षा वे सामाजिक प्रतिबन्धों को तोड़ने पर उतारू हैं, और इस सिलसिले में अंधे कामदेव तक को आखें प्रदान कर रहे हैं।

‘अख्तर’ शीरानी जिसका असल नाम मुहम्मद दाऊद खां था, ४ मई १९०५ को टोंक राज्य में पैदा हुआ। वहीं कुरान की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। बाद में उर्दू की प्रारम्भिक पुस्तकें अपनी चची से पढ़ीं और फिर मौलवी अहमद जमां और साबिर अली ‘शाकिर’ से फ़ारसी की शिक्षा प्राप्त की। ‘अख्तर’ के कथनानुसार जब वह ‘शाकिर’ साहब का शिष्य था तो उन्हीं दिनों उसमें काव्य-प्रवृत्ति उत्पन्न हुई थी।

सन् १९२० में जब ‘अख्तर’ के पिता हाफ़िज़ महमूद खां शीरानी, जो अपने समय के एक विख्यात बुद्धिजीवी थे, ओरियंटल कालेज लाहौर में फ़ारसी के प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए तो ‘अख्तर’ भी उनके साथ लाहौर चला आया। अपनी एकमात्र और लाडली संतान होने के कारण हाफ़िज़ साहब ‘अख्तर’ को उच्च शिक्षा दिलाने के इच्छुक थे और इसके लिए अपनी ओर से उन्होंने भरसक प्रयत्न भी किया, परन्तु लाहौर की साहित्यिक बैठकों और काव्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति ने ‘अख्तर’ को ‘मुन्शी फ़ाज़िल’ से आगे नहीं बढ़ने दिया, और अपनी उस छोटी सी आयु में ही ‘अख्तर’ को अपनी नज़्मों पर इतनी प्रशंसा मिली कि भविष्य का यह महान रोमांसवादी शायर घर वालों के कड़े विरोध के बावजूद शिक्षा से विमुख हो शायरी के मैदान में कूद पड़ा।

उन्हीं दिनों कुछ समय तक उसने उर्दू की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका ‘हुमायूँ’ के सम्पादन का काम किया। फिर १९२५ में ‘इन्तखाब’ का सम्पादन किया। १९२८ में ‘खयालिस्तान’ निकाला और १९३१ में ‘रोज़ान’ जारी किया और उसके बाद कुछ समय तक मौलाना ताजवर नजीबाबादी (जिनसे शुरू-शुरू में ‘अख्तर’ ने अपनी कविताओं पर संशोधन भी लिया था) की मासिक पत्रिका ‘शाहकार’ का सम्पादन किया।

इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त ‘अख्तर’ ने अपनी कई पुस्तकें, उदाहरणतः गद्य में ‘जुहाक’, ‘आईना-खाने में’ और ‘धड़कते दिल’ और पद्य में ‘फूलों के

गीत', 'नगमा-ए-हरम', 'सुबहे-बहार', 'अख्तरिस्तान', 'लाला-ए-तयूर', 'तयूरे-आवारा', 'शहनाज' और 'शहरूद' यादगार छोड़ीं।

यादगार छोड़ीं—इसलिए कि आज 'अख्तर' हमारे बीच नहीं है और अपनी रचनाओं के साथ-साथ वह स्वयं भी हमारे लिए स्मृतिमात्र रह गया है। ६ सितम्बर १९४८ को उर्दू के इस महान रोमांसवादी शायर ने बड़ी दयनीय स्थिति में कुछ समय तक एक भयंकर रोग में ग्रस्त रहने के बाद लाहौर के एक अस्पताल में दम तोड़ दिया।

सलमा

कहती हैं सब “ये किसकी तड़पा गई है सूरत
‘सलमा’ की शायद इसके मन भा गई है सूरत
और उसके गम में इसकी मुरझा गई है सूरत
मुरझा गई है सूरत, कुम्हला गई है सूरत
संवला गई है सूरत, सलमा से दिल लगाकर”
बस्ती की लड़कियों में बदनाम हो रहा हूं।

पनघट पे जबकि सारी होती हैं जमझ्र आकर
गागर को अपनी रखकर धूँघट उठा-उठा कर
ये किस्सा छेड़ती हैं मुझको बता-बता कर
“सलमा से बातें करते देखा है इसको जाकर
हम से नज़र बचाकर” सलमा से दिल लगाकर
बस्ती की लड़कियों में बदनाम हो रहा हूं।

रातों को गीत गाने जब मिलके आती हैं सब
तालाब के किनारे धूमें मचाती हैं सब
जंगल की चांदनी में मंगल मनाती हैं सब
तो मेरे और सलमा के गीत गाती हैं सब
और हंसती जाती हैं सब, सलमा से दिल लगाकर
बस्ती की लड़कियों में बदनाम हो रहा हूं।

अजीजों की तरह ये क्यों मकां में आ नहीं सकता ?

जब उससे पूछता है वो, उसे समझा नहीं सकता ॥

खिलौने देके उसको मुस्करा देता है वो अक्सर ।

और एक हल्का सा थप्पड़ भी लगा देता है वो अक्सर ॥

तेरे क़ासिद के ये अफ़कार^१ दिल को गुदगुदाते थे ।

और अपने भोलेपन से मेरे जज़्बों को हँसाते थे ॥

नहीं मौकूफ़^२ उन्हीं अय्याम पर^३ जब भी खयाल आया ।

तसव्वुर^४ , तेरे बाद उसका भी नक्शा सामने लाया ॥

मगर आज इस तरह देखा है वो नक्शे-हसीं मैंने ।

कि रख दी खाके-हैरत पर^५ मुहब्बत की जबी^६ मैंने ॥

वही नन्हा-सा क़ासिद नौजवां होकर मिला मुझको ।

जमाने के तग़य्युर^७ ने परीशां कर दिया मुझको ॥

जुनूने-इब्तिदा - ए - इश्क़ ने^८ करवट सी ली दिल में ।

पस-अज़-मुद्दत^९ ये लैला आगई फिर अपने महमिल^{१०} में ॥

तेरे क़ासिद से मिलते वक़्त मुझको शर्म आती थी ।

मगर उसकी निगाहों में शरारत मुस्कराती थी ॥

शरारत का ये नज़्जारा मेरी हैरत का सामां^{११} था ।

कि इस पर्दे के अन्दर तेरा राज़े-इश्क़ उरियां^{१२} था ॥

१. विचार २. सीमित ३. दिनों पर ४. कल्पना ५. आश्चर्य की खाक (आश्चर्य के पैरों) पर ६. माथा ७. परिवर्तन ८. प्रेम की शुरूआत के उन्माद ने ९. बहुत समय के बाद १०. कजावा (ऊंट की काठी) ११. सामान १२. नग्न (स्पष्ट)

आज की रात

कितनी शादाब^१ है दुनिया की फ़ज़ा^२ आज की रात !

कितनी सरशार^३ है गुलशन की हवा आज की रात !

कितनी फ़य्याज़^४ है रहमत^५ की घटा आज की रात !

किस क़दर खुश है खुदाई से खुदा आज की रात !

कि नज़र आयेगी वो माहलका^६ आज की रात !

आज क्या बात है दुनिया के नज़ारे खुश हैं ?

बाग़ के फूल, सरे-चर्ख^७ सितारे खुश हैं ।

एक बेनाम सी सरमस्ती के मारे खुश हैं ।

एक में खुश नहीं जितने भी हैं सारे खुश हैं ।

है खुशी चार तरफ़ नमासरा^८ आज की रात !

गायबाना जो हमें नामे^९ लिखा करती थी ।

दूर से हम पे जो दिल अपना फ़िदा करती थी ।

दादे-अशआर^{१०} जो गुमनाम दिया करती थी ।

होके बेपर्दा जो पर्दे में रहा करती थी ।

सामने होगी वही शोख-अदा^{११} आज की रात !

दास्ताने - दिले - बेताब^{१२} सुनायेंगे उन्हें ।

आज रोयेंगे गले मिलके रुलायेंगे उन्हें ।

खुद ही फिर रोने पे हंस देंगे, हंसायेंगे उन्हें ।

और ज़ुरत की तो सीने से लगायेंगे उन्हें ।

नित नये जज़बों की है नश्वोनुमा^{१३} आज की रात !

दिल की रग-रग में है बेताब मुहब्बत उसकी ।

आंख के पर्दे पे लहराती है सूरत उसकी ।

१. पल्लवित २. वातावरण ३. उन्मत्त ४. उदार
 ५. अनुकम्पा ६. चांद जैसी अनुपम सुन्दरी ७. आकाश पर
 ८. गीत गा रही है ९. पत्र १०. शेरों पर दाद ११. चंचल अदाओं
 वाली (सुन्दरी) १२. बेचैन दिल का वृत्तांत १३. बढ़ोतरी

खलवते - रूह में^१ आबाद है उल्फत उसकी ।

मेरे जज़्बात पे तारी^२ है लताफ़त^३ उसकी ।

और कुछ याद नहीं इसके सिवा आज की रात !

लेकिन इज़हारे - खयालात^४ करेंगे क्योंकर ?

शर्म आती है मुलाक़ात करेंगे क्योंकर ?

बात करनी है मगर बात करेंगे क्योंकर ?

ख़त्म ये ख़्वाब की सी रात करेंगे क्योंकर ?

आह ये आज की ये ख़्वाबनुमा^५ आज की रात !

ऐ दिल ऐसा न हो कुछ बात बनाये न बने ।

हाले - दिल जो भी सुनाना है सुनाये न बने ।

पास आयें तो मगर पास बिठाये न बने ।

शर्म के मारे उन्हें हाथ लगाये न बने ।

कि तसव्वुर^६ से भी आती है हया^७ आज की रात !

यूँ तो हर तरह अदब^८ मद्दे - नज़र रखना है ।

हसरते - दिल का^९ लिहाज़ आज मगर रखना है ।

बेखुदी ! देख, तुझे मेरी ख़बर रखना है ।

नाज़नीं क़दमों पे^{१०} यूँ नाज़ से सर रखना है ।

कि तड़प उठे दिले-अज़र्जो-समा^{११} आज की रात !

हम में कुछ ज़ुर्रते-गोयाई^{१२} भी होगी कि नहीं ?

हिम्मते - नासियाफ़र्सई^{१३} भी होगी कि नहीं ?

शर्म से दूर शिकेबाई^{१४} भी होगी कि नहीं ?

यूसुफ़े-दिल जुलेखाई भी होगी कि नहीं^{१५} ?

आज की रात उफ़, ओ मेरे खुदा आज की रात !

१. आत्मा के एकान्त में २. छाई हुई ३. लालित्य,
माधुर्य ४. विचारों का प्रकटीकरण ५. स्वप्निल रूपी ६. कल्पना
७. लज्जा ८. शिष्टाचार ९. दिल की हसरत का १०. (प्रेयसी के)
सुकुमल पैरों पर ११. धरती तथा आकाश का हृदय १२. बोलने का
साहस १३. माथा टेकने का साहस १४. भिन्नक १५. जुलेखा के
प्रेमी यूसुफ़ की ओर संकेत है कि तू प्यार कर सकेगा या नहीं ?

फुटकर शेर

मिट चले मेरी उमीदों की तरह हर्फ^१ मगर ।
आज तक तेरे खतों से तेरी खुशबू न गई ॥

आज क्रिस्मत से आई है बरसात की रात ।
क्या बिगड़ जायेगा रह जाओ यहीं रात की रात ॥

वा इश्क-पेशा^२ हूं मैं जिसके जवान नग्मे ।
गाता है चान्दनी में हर नौजवाने-सहरा^३ ॥

दर है न आस्तां^४ न हरम है न बुतकदा ।
या रब मचल पड़ी है हमारी जबी^५ कहां ?

मुहब्बत इस तरह मालूम हो जाती है दुनिया को ।
कि ये मालूम होता है, नहीं मालूम होती है ॥

तुम अपना आस्तां अच्छी तरह पहचान सकते हो ।
हमें तो ये हमारी ही जबीं मालूम होती है ॥

दो चांद हैं पहलू में अब चांद कहें किस को ?
साक्री को अगर कह दें, पैमाने को क्या कहिये ?

एक मुहब्बत थी मिट गई या रब !
तेरी दुनिया में अब धरा क्या है ?

१. अक्षर २. प्रेमी ३. मरुस्थलों में भटकने वाले नौजवान (प्रेमी)

४. दहलीज ५. माथा

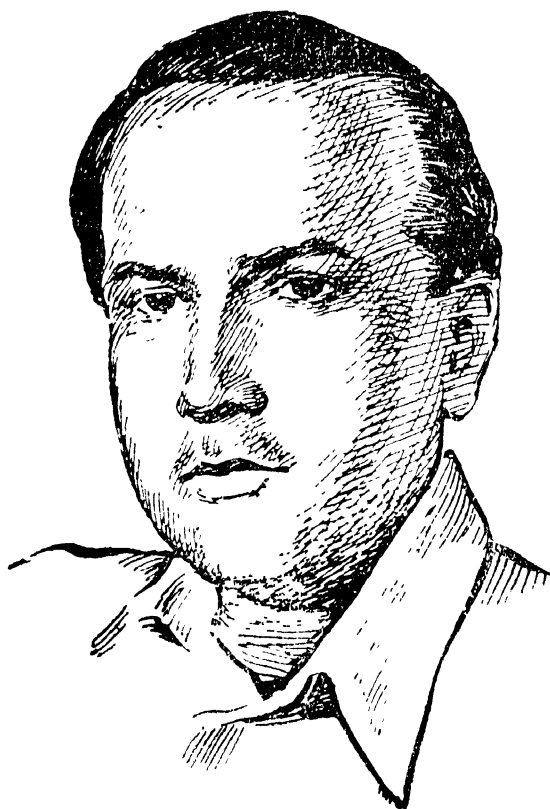
दुनिया की सैर करने को ठहरे नहीं हैं हम ।
दम ले लिया है मंज़िले - दुशवार^१ देखकर ॥

◇ ◇ ◇
उसके अह्दे - शबाब^२ में जीना ।
जीने वालो तुम्हें हुआ क्या है ?

◇ ◇ ◇
ज़िदगी की हकीकत, आह न पूछ ।
मौत की वादियों में इक आवाज़ ॥

◇ ◇ ◇
उनकी सोहबत^३ का तसव्वुर^४ और हम ।
ज़िदगी धोखा थी कुछ दिन के लिए ॥

◇ ◇ ◇
मर गये हम आखिर को इस तरह भी क्या जीते ?
ज़िदगी का हर लम्हा मौत का फ़साना था ॥



अबदुलहमीद 'अदम'

मैं मैकदे की राह से होकर गुज़र गया
वरना सफ़र हयात का काफी तथील था

परिचय

मेरी तलाश से मायूस लौटने वाले ।

तेरी हद्द में^१ आकर तुझे पुकारूँगा ॥

‘अदम’ का यह शेर उन समालोचकों के लिए एक चैलेंज है जो शायर की सीमाओं को जाने बिना कुछ बंधे-टिके नियमों की टोपी उसके सिर पर रखकर देखते हैं कि ठीक बैठती है या नहीं । उदाहरणतः स्वयं ‘अदम’ के सम्बन्ध में यदि समालोचक को यह मालूम न हो कि वह बुरी तरह शराब पीता है और आठों पहर इस कोशिश में रहता है कि उसका नशा उतरने न पाये तो प्रत्यक्ष है कि वह उसके :

कौन कौसर^२ तक मुसाफ़रत^३ तें करे ।

मैकदा^४ फ़िदौस^५ से नज़दीक है ॥

इस प्रकार के शेरों को उस नखशिख के साथ नहीं देख सकता, जिन्हें शायर ने संवारने और जिलाने ही का नहीं अपनी आत्मा की आवाज़ बनाने का प्रयत्न किया है । इस ‘मैकदे’ के प्रेम ने ‘अदम’ को कहीं का नहीं रखा । उसकी पत्नी जिसे दूसरे महायुद्ध के दिनों में वह तेहरान से ब्याह कर लाया था उसके इसी ‘मैकदे’ के प्रेम के हाथों तंग आकर उसे छोड़ गई । आपने विशेष रूप से उसी से मिलाने और उसके शेर सुनवाने के लिए अपने यहाँ कुछ मित्रों को निमंत्रित

१. सीमाओं में २. ज़मत में बहने वाली शराब की एक नहर ३. सफ़र

४. शराबख़ाना ५. ज़मत

किया है। उसने आप से वायदा किया है कि वह ठीक सात बजे आपके यहाँ पहुँच जायेगा लेकिन सात के साढ़े सात, फिर आठ और फिर नौ बज गये लेकिन आपके माननीय अतिथि का कोई पता नहीं। आप परेशान हैं, आपके मित्र परेशान हैं, महफ़िल बर्खास्त हुआ चाहती है कि एक दोहरे बदन का व्यक्ति लड़खड़ाता-संभलता कमरे में प्रवेश करता है और महफ़िल के वातावरण में चारों ओर 'प्रश्नचिह्न' लटकता देखकर बड़ी उदासीनता से केवल इतना कहता है :

“आखिर पीना तो शराब ही थी। यहाँ क्या और वहाँ क्या ? मेरे कुछ दोस्त मिल गये थे और रास्ते में शराबखाना था.....”

यह 'मैकदा' या शराबखाना, जो हर स्थान पर उसके रास्ते की बाधा बन जाता है, उसका पूरा जीवन और पूरी शायरी है। यहीं से शुरू होती है और यहीं खत्म हो जाती है। और यही कारण है कि उसकी शायरी में विविध विषयों का लगभग अभाव है और उसकी कुछ एक गज़लें तो एक-दूसरी की प्रतिध्वनि-सी मालूम होती हैं। वही शराब और साकी की स्तुति, संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति उदासीनता और शराब के प्याले को संसार की प्रत्येक वस्तु पर प्रधानता देने के सुन्दर बहाने। शब्द “सुन्दर बहाने” का प्रयोग मैंने किसी प्रकार के व्यंग्य के लिये नहीं किया क्योंकि उसके बहाने सचमुच बहुत सुन्दर हैं। आज का शायर यदि चाहे भी तो इस सामाजिक वास्तविकता से इन्कार नहीं कर सकता कि ‘ग़मे-रोज़गार’ (जीविका आदि तटाने की सांसारिक चिंताओं) के आगे संसार की समस्त चिन्तायें हथियार डाल देती हैं; लेकिन ज़रा ‘अदम’ के तेवर देखिये कि मदिरा-पान में शरण लेने के लिये वह ग़मे-रोज़गार ही को दोषी ठहराता है :

दी जिसने अहले-होश को^१ तरगीबे-मैकशी^२ ।

मेरा खयाल है कि ग़मे-रोज़गार था ॥

यही नहीं, वह तो उसकी यहाँ तक लाज रखता है :

गरूरे-मैकशी^३ की कौन-सी मंज़िल है ये साकी ?

खनक सागर^४ की आवाज़े-खुदा^५ मालूम होती है ॥

आधुनिक काल के इस मस्त-अलस्त शायर का जन्म जून १९०६ में तलवंडी

१. होश वालों को २. मदिरा-पान की प्रेरणा ३. मदिरा-पान के अभिमान ४. प्याला ५. खुदा की आवाज़

मूसाखां (सरहद प्रान्त, पाकिस्तान) में हुआ। बचपन, शिक्षा आदि के जानने की बहुत कोशिश करने पर भी मुझे केवल इतना मालूम हो सका है कि उसकी शिक्षा बी० ए० तक की है। पिछले दिनों एक इंडो-पाकिस्तान मुशायरे के सिलसिले में वह दिल्ली आया था और मेरा इरादा था कि उससे जी खोलकर बातें करूँगा और वह सब कुछ पूछ लूँगा जिसकी मुझे इस पुस्तक के लिए आवश्यकता थी, लेकिन जब मुशायरे में तो क्या लाख ढूँढ़ने पर वह पूरी दिल्ली में भी कहीं नज़र न आया और केवल उस समय उसकी खबर मिली जब वह वापस कराची पहुँच चुका था तो प्रत्यक्ष है कि मुझे सुनी-सुनाई बातों का सहारा लेना पड़ा। इस प्रसंग में मुझे उसके एक मित्र और उर्दू के तरुण शायर नरेशकुमार 'शाद' से पर्याप्त सहायता मिली क्योंकि दिल्ली में एक 'शाद' ही था जिसे मालूम था कि 'अदम' सचमुच दिल्ली में है। 'शाद' से मुझे मालूम हुआ कि अपनी नौकरी के बारे में ('अदम' पाकिस्तान सरकार के आडिट एण्ड अकाउंट्स विभाग में गज़ेटेड ऑफ़िसर है) बहुत होशियार और जिम्मेदार है। हाँ, यह अलग बात है कि किसी दिन यदि उसका दफ़्तर जाने को जी न चाहे तो दफ़्तर के अन्य कर्मचारी श्रद्धावश या न जाने किस कारण से उसका सारा काम स्वयं ही कर देते हैं। कराची में नियुक्त होने से पहले वह काफ़ी समय तक रावलपिण्डी और लाहौर में भी रह चुका है और स्वर्गीय 'अख़्तर' शीरानी से उसकी गाढ़ी छनती थी (शायद मदिरापान की सौझ के कारण)। अस्तु, उस 'अदम' में जो अपनी शायरी में नज़र आता है और उस 'अदम' में जिसे उसके घनिष्ठ मित्र जानते हैं, रत्ती बराबर फ़र्क नहीं है। अतः उसके व्यक्तित्व और शायरी की इस प्रवृत्ति का यह समन्वय अपनी समस्त त्रुटियों और हीनताओं के बावजूद उस विशेष लक्षण का साधन बना जिसे आम परिभाषा में "कवि की शुद्धहृदयता अथवा निर्मलता" कहा जाता है—अर्थात् कवि का वही बात कहना जो माँग तांगे की न होकर उसकी अपनी अनुभूतियों में से उत्पन्न होती है और सैद्धांतिक मतभेद के बावजूद अपने में अपनी महानता मनवाने की क्षमता रखती है। एक शेर देखिये :—

साक़ी मेरे खुलूस^१ की शिहत^२ को देखना ।
 फिर आगया हूँ गदिशे-दौरा^३ को टालकर ॥

लेकिन शुद्धहृदयता-मात्र से भी बात नहीं बनती । शायरी में बात बनाने के लिए शुद्धहृदयता के साथ-साथ और भी बहुत कुछ आवश्यक है । इस बोध की आवश्यकता होती है कि 'गदिशे-दीरा' को ढालना उतना ही कठिन है जितना शायर ने उसे इस शेर में सहल बताया है । अतएव क्रियात्मक जीवन के प्रति अवहेलना तथा चिन्तन की कमी ने उसे अवसन्नतावादी शायर बना दिया और उसने अपने इर्द-गिर्द एक चारदीवारी खड़ी कर ली जिससे न वह स्वयं बाहर निकलना चाहता है और न यह चाहता है कि बाहर की गर्म हवा उसे लगे । लेकिन यहाँ फिर किसी व्यक्ति के चाहने या न चाहने का प्रश्न आ खड़ा होता है । और चूँकि कोई चाहे कितना ही बड़ा अवसन्नतावादी क्यों न हो आखिर को मनुष्य होता है और मनुष्य चाहे अपने गिर्द कितनी ऊँची और मजबूत दीवारें खड़ी कर ले बाहर की गर्मी-सर्दी उसे ढूँढ़ ही लेती है, अतः जब 'अदम' ढूँढ़ लिया जाता है तो बेबमी के साथ ही सही, चौंकने पर वह अवश्य विवश हो जाता है :

कभी-कभी तो मुझे भी खयाल आता है ।

कि अपनी सूरते-हालात^१ पर निगाह करूँ ॥

और इस प्रकार जब वह उसी शुद्धहृदयता के साथ 'सूरते-हालात पर निगाह' करता है तो उसके कलम से :

ये अकल के सहमे हुए बीमार डरादे ।

क्या चारा-ए-नासाजिये-हालात करेगे^२ ?

ऐसे शेर निकलने लगते हैं और कभी-कभी तो वह 'सूरते-हालात' और 'नासाजिये-हालात' पर सोचते-सोचते मदिरा-स्तुति की सीमा से निकलकर एक दम विचारक और दार्शनिक बन जाता है :

दूसरों से बहुत आसान है मिलना साझी ।

अपनी हस्ती से मुलाकात बड़ी मुश्किल है ॥

और

बृह्ने-फितरत में थीं जितनी नाकशूदा उलझने^३ ।

एक मरकज^४ पर सिमट आईं तो इन्सां बन गईं ॥

१. स्थिति २. दुखपूर्ण परिस्थितियों का उपाय ३. प्रकृति के मस्तिष्क में कभी न सुलझने वाली जितनी उलझनें थीं ४. केन्द्र

लेकिन ऐसे शैरों की उसके यहाँ अधिक संख्या नहीं है । अधिक संख्या उन्हीं शैरों की है जिनमें शायर को 'सूरते-हालात' पर सोचने से भय लगता है और यदि वह सोचता भी है तो यह कहकर चुप हो जाता है :

अभी ह्वादिसे-दीरां^१ पे कौन गौर करे ?

अभी तो महफ़िले-हस्ती^२ शराबखाना है ॥

और यों आधुनिक उर्दू शायरी का यह मध्यम शायर उसी मार्ग का पथिक है जिस मार्ग को शताब्दियों पहले फ़ारसी के अमर शायर, उमर खय्याम ने तराशा था और जिसे पार करके आज के शायर कहीं से कहीं पहुँच चुके हैं ।

राजलें

मैकदा^१ था चांदनी थी मैं न था ।
 इक मुजस्सिम^२ बेखुदी^३ थी मैं न था ॥
 इश्क जब दम तोड़ता था तुम न थे ।
 मीत जब सर धुन रही थी मैं न था ॥
 तूर^४ पर छेड़ा था जिस ने आप को ।
 वो मेरी दीवानगी थी मैं न था ॥
 वो हसीं बैठा था जब मेरे करीब ।
 लज्जते - हमसायगी^५ थी मैं न था ॥
 मैकदे के मोड़ पर रुकती हुई ।
 मुद्दतों की तिश्नगी^६ थी मैं न था ॥
 मैं और उस गुंवादहन की^७ आरजू ।
 आरजू की सादगी थी मैं न था ॥
 गेसुओं के^८ साये में आराम - कश^९ ।
 सर-बरहना^{१०} ज़िन्दगी थी मैं न था ॥
 दौरों-काबा^{११} में 'अदम' हैरत-फ़रोश^{१२} ।
 दो जहां की बदज़नी^{१३} थी मैं न था ॥



१. मधुशाला २. मूर्तिमान ३. आत्म-विस्मृति ४. एक पहाड़ का नाम जिस पर हज़रत मूसा ने खुदा से बातें की थीं । ५. सामीप्य का आनन्द ६. प्यास ७. अधखिले फूल ऐसा सुन्दर मुँह रखने वाली की ८. केशों के ९. विश्रामकर्ता १०. नंगे सिर ११. मन्दिर और काबा १२. आश्चर्य फैलाने वाला १३. दुर्भावना (ऊब)

सर रह गया है दोश पर श्री दिल नहीं रहा ।
 क्या इस जहान में कोई क्रांतिल नहीं रहा ?
 ऐ चश्मे - यार^१ अब न तगाफ़ुल^२ न इल्तफ़ात^३ ।
 क्या मैं किसी सलूक के क्राबिल नहीं रहा ?
 ऐ नाखुदा^४ ! सफ़ीने^५ का अब कोई ग़म न कर ।
 हम फ़र्ज कर चुके हैं कि साहिल नहीं रहा ॥
 पर्दा उठा कि अब मेरी मस्ती है मैं नहीं ।
 जिस से तुझे हया^६ थी वो हायल^७ नहीं रहा ॥
 कुछ तो तेरे खुलूस की ताज़ीम^८ थी 'अदम'^९ ।
 वरना वो जान - बूझ कर गाफ़िल नहीं रहा ॥

◊

◊

◊

दिल है बड़ी खुशी से इसे पायमाल कर ।
 लेकिन तेरे निसार^{१०} ज़रा देख-भाल कर ॥
 इतना तो दिलफ़रेब न था दामे-ज़िन्दगी^{११} ।
 ले आए एतबार के सांचे में ढाल कर ॥
 साक़ी मेरे खुलूस की शिद्दत^{१२} को देखना ।
 फिर आगया हैं ग़दिशे-दीरां^{१३} को टाल कर ॥
 ऐ दोस्त तेरी जुल्फ़े-परीशां^{१४} की खैर हो ।
 मेरी तबाहियों का न इतना खयाल कर ॥
 लाया हैं यूँ बचा के हवादिस से^{१५} जीस्त^{१६} को ।
 लाते हैं जैसे कोह^{१७} से चश्मा निकाल कर ॥
 थोड़े से फ़ासले में भी हायल^{१८} हैं लगज़िशे^{१९} ।
 साक़ी संभाल कर, मेरे साक़ी संभाल कर ॥
 हम से 'अदम' छुपाओ तो खुद भी न पी सको ।
 रक्खा है तुमने कुछ तो सुराही में डालकर ॥

१. मित्र की दृष्टि २. बेपरवाही ३. कृपादृष्टि (प्रेम) ४. मांझी ५. नाव
 ६. लाज ७. बाधक ८. आदर, सम्मान ९. बलिहारी १०. जीवन का जाल
 ११. आधिक्य १२. संसार-चक्र १३. बिखरे केश १४. दुर्घटनाओं से
 १५. जीवन १६. पहाड़ १७. बाधक १८. लड़खड़ाहटें

इजाजत हो तो मैं तसदीक^१ कर लूं तेरी जुल्फों से ।
सुना है ज़िन्दगी एक खूबसूरत दाम^२ है साक़ी ॥

मैं^३ सी हसोन चीज़ हो और वाक़ई हराम ।
मैं कसरते-शक्क^४ से घबरा के पी गया ॥

जुल्मतों से^५ न डर कि रस्ते में ।
रोशनी है शराबख़ाने की ॥

खाली है अभी ज़ाम में कुछ सोच रहा हूं ।
ऐ गर्दिशे - अय्याम^६ मैं कुछ सोच रहा हूं ॥
साक़ी तुझे एक थोड़ी सी तकलीफ़ तो होगी ।
सागर को ज़रा थाम मैं कुछ सोच रहा हूं ॥
‘पहले बड़ी रग़बत^७ थी तेरे नाम से मुझको ।
अब सुन के तेरा नाम मैं कुछ सोच रहा हूं ॥
हल कुछ तो निकल आयेगा हालात की ज़िद का ।
ऐ कसरते-आलाम^८ मैं कुछ सोच रहा हूं ॥

हमको फ़ुर्सत नहीं मूसा^९ को कहो सुन आये ।
क्यों बुलाते हैं, क्या काम है, क्या कहते हैं ?

तौबा को तोड़ने की तो नीयत न थी मगर ।
मौसम का एहताराम^{१०} न करते तो जुल्म था ॥

१. पुष्टि २. जाल (फंदा—केशों की जाल से उपमा दी गई है)
३. शराब ४. सन्देहों के आधिक्य ५. अन्वेषण से ६. काल-चक्र ७. लगाव
८. दुःखों की भरमार ९. हज़रत मूसा जिसने एक किंवदन्ती के अनुसार तूर
पर खुदा से बातें की थीं (इस शेर की दूसरी पंक्ति में खुदा की ओर संकेत
है) १०. सम्मान

‘इक सितारा, इक कली, इक मै का कतरा, एक जुल्फ़ ।
जब इकट्ठे हो गये तामीरे-जन्नत^१ हो गई ॥

कुर्सत का वक्त ढूँढ के मिलना कभी अज़ल^२ ।
तुम्हको भी काम है, अभी तुम्हको भी काम है ॥

हशर का खैर कुछ भी नतीजा हो ऐ ‘अदम’ !
कुछ गुप्तगू तो हम भी करेंगे खुदा के साथ ॥

इश्क़ ने सौंपा है काम अपना, अब तो निभाना ही होगा ।
मैं भी कुछ कोशिश करता हूँ, आप भी कुछ इमदाद करें ॥

तखलीक़े-कायनात^३ के दिलचस्प जुर्म पर ।
हँसता तो होगा आप भी यज़दाँ^४ कभी-कभी ॥

पहुँच सका न मैं बरवक्त अपनी मंज़िल पर ।
कि रास्ते में मुझे रहबरोँ ने घेर लिया ॥

सिर्फ़ इक क़दम उठा था ग़लत राहे-शौक़^५ में ।
मंज़िल तमाम उम्र मुझे ढूँढती रही ॥

१. स्वर्ग का निर्माण

२. मृत्यु

३. विश्व-निर्माण

४. भगवान

५. प्रेम-मार्ग



‘सागर’ निज़ामी

✓ आसान नहीं इस दुनिया में ख्वाबों के सहारे जी सकना
संगीन हकीकत है दुनिया ये कोई सुनहरी ख्वाब नहीं

परिचय

‘सागर’ की शायरी और उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में यदि केवल एक वाक्य ही पर्याप्त समझना हो तो यह कहकर चुप हुआ जा सकता है कि ‘सागर’ हर मुशायरा लूट लेता है। लेकिन यहाँ चूँकि उसके सम्बन्ध में एक से अधिक वाक्यों की आवश्यकता है, इसलिए अपने अनुभव के आधार पर मैं यह कहूँगा कि मुशायरे के अतिरिक्त वह अपने प्रत्येक मित्र और परिचित का दिल भी लूट लेता है। सुकण्ठ और सुभाषी तो वह है ही, आयु के लिहाज से आधी सदी पार कर चुकने के बावजूद अभी तक वह सजीला भी है। इसके अतिरिक्त पहली मुलाकात में ही जिस तरह वह आप से बेतकल्लुफ हो जाएगा; जिस तरह अपने व्यक्तिगत जीवन की प्रिय, अप्रिय घटनाओं की सविस्तार चर्चा करेगा और अनुरोध-पूर्वक आपसे आपकी आत्मकथा सुनेगा; अपनी डिब्बिया से पान निकाल कर आप को पेश करेगा और बड़ी नेतकल्लुफी से आप का पेश किया हुआ सिगरेट क़बूल करेगा, उससे उसके व्यक्तित्व से तो आप प्रभावित होंगे ही, उसे अपना घनिष्ट मित्र भी समझने लगेंगे।

‘सागर’ से यों तो मैं एक समय से परिचित था और एक राष्ट्रवादी शायर के नाते कौन उससे परिचित नहीं है ? सरोजनी नायडू और ‘जोश’ भन्नीहायादी की तरह स्वतन्त्रता-आंदोलन के दिनों में उसके नरमे भी घर-घर गूँज चुके हैं और बहुत कम मुशायरे ऐसे होंगे जिनमें उसका योग अनिवार्य न समझा गया हो, लेकिन व्यक्तिगत रूप से पहली बार उससे मेरा परिचय १९४६ में ‘जोश’

साहब के यहां हुआ था जब काश्मीर के एक मुशायरे में भाग लेने वह बम्बई से आया था और उसकी आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय थी। उन परिस्थितियों में भी, जबकि उसके कथनानुसार कई बार उसकी जेब में ट्राम का टिकट खरीदने के लिए एक इकन्नी न होती थी कि वह काम ढूंढने के लिए घर से निकल सके, मैंने उसके होंठों पर वही मधुर मुस्कराहट देखी जो आजकल देखता हूँ—आजकल, जबकि वह आल-इंडिया रेडियो दिल्ली में छः सौ से ऊपर वेतन पा रहा है।

“आदमी को हर हाल में हालात का मुकाबला करना चाहिये।” अपनी उन दिनों की दुरवस्था का जिक्र करने के बाद उसने कहा, “हालात के आगे हथियार डाल देना बुज्जदिली है। इन्सान अगर खुद-एतमादी और खुदारी (आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान) को हाथ से न जाने दे और बराबर हालात का मुकाबला करता रहे तो एक दिन हालात उसके आगे हथियार डाल देते हैं।”

हालात ने उसके आगे हथियार डाल दिये हों, यह बात नहीं, और वह अपनी इस नौकरी से सन्तुष्ट होकर बैठ गया हो, यह बात भी नहीं। हालात की टेढ़ी-मेढ़ी सड़क पर, जिसकी शायद कोई मंजिल नहीं, वह बराबर आगे बढ़ रहा है। यह नौकरी और इस प्रकार की दूसरी नौकरियां जो उसने जीवन में अपनाईं, उसके लिए एक पड़ाव-मात्र हैं, क्योंकि कभी-कभी मनुष्य को विश्राम की भी आवश्यकता होती है।

उर्दू शायरी का यह मुसाफिर जो मुशायरों और जीविका जुटाने के सम्बंध में नगरी-नगरी घूम चुका है, सन् १९०५ में अपने नहिाल अलीगढ़ में पैदा हुआ। वहीं प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की और वहीं शायर के रूप में अपने पर-पुर्जों निकाले। मामा आबिद ‘रजा’ स्वयं शायर थे, इसलिए जब भी अलीगढ़ में कोई मुशायरा होता था, बाहर से आने वाले शायर अधिकतर उन्हीं के यहां ठहरते थे। शाम को मुशायरे में पढ़ने के लिए दिन भर पढ़ने का (गलेबाजी का) अभ्यास होता था, अतएव जिस तरह बच्चे बड़ों की नक़ल करते हैं, तेरह वर्ष के नन्हे ‘सागर’ ने भी देखा-देखी तुक-बंदी और गलेबाजी शुरू कर दी। उस समय उसकी आयु सोलह वर्ष की थी जब अलीगढ़ में एक अखिल भारतीय मुशायरा हुआ और किसी तरह ‘सागर’ को भी उसमें पढ़ने का अवसर मिल गया और वहां उसने बड़े सुरीले तरन्नुम के साथ ये क्षेत्र पढ़े :

बचपन ही में किया मुझे गम ने शिकस्तापा^१ ।

तै होंगी कैसे मंजिलें या रब शबाब की^२ ?

गदिश रही नसीब में या रब तमाम उम्र ।

‘सागर’ बना के क्यों मेरी मिट्टी खराब की ॥

उस मुशायरे में तो ‘सागर’ की मिट्टी खराब होने की बजाय उसे खूब-खूब दाद मिली, अलबत्ता घर पहुँचने पर उसकी मिट्टी जरूर खराब हुई। पिता डाक्टर थे और उन्हें बेटे की शायरी सुनने का नहीं, शायरी के कारण बेटे को पीटने का शौक था, अतएव ‘सागर’ की खूब पिटाई हुई। लेकिन ज्यों-ज्यों ‘सागर’ की पिटाई होने लगी त्यों-त्यों शायरी से ‘सागर’ का सम्बन्ध और भी गहरा होता गया और उसके बाद कुछ वर्षों में ही अलीगढ़ से निकलकर उसका नाम पूरे भारत में फैल गया और हर मुशायरे के लिए बुलावे आने लगे।

स्वभाव में उद्विग्नता का तत्व तो बचपन ही से था, अतएव होश सम्भालने पर जब अपने कुल का इतिहास सामने आया तो खून के आँसू रुला गया। अंग्रेजी शासन और देश की परतन्त्रता के प्रति घृणा-भाव तीव्रतर हो उठा और न केवल उसकी कलम ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विष उगलना शुरू किया बल्कि शिक्षा को नमस्कार कर वह क्रियात्मक रूप से स्वतन्त्रता-आन्दोलन में शामिल हो गया। देश की स्वतन्त्रता और देश-प्रेम के सम्बन्ध में उसका यह फैसला :

“जहाँ तक हिन्दोस्तान की आजादी, हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद (ऐक्य) और एक मुत्तहद (अखंड) आजाद मुल्क का सवाल है, मैं इनके मुकाबले में दुनिया की बादशाहत को ठुकरा दूंगा। मुझे हिन्दोस्तान और उसकी आजादी, अपने माँ-बाप, अपने भाई, अपनी बीवी और अपनी जान से भी ज्यादा अजीज (प्रिय) हैं। मैं मर जाना पसंद करूँगा लेकिन उन तबकों (वर्गों) का साथ न दूँगा जो हिन्दोस्तान की आजादी के दुश्मन हैं। यह मेरा महफूज (सुरक्षित) और मजबूत (सुदृढ़) ईमान है, जो कभी मुतजलजल (प्रकम्पित) नहीं हुआ और कभी नहीं होगा।”

उस समय भी अटल रहा जब उसके कथनानुसार उसके ‘बुरे दिन’ थे और

१. पांव तोड़ डाले (थका दिया)। २. जवानी की।

* परदादा सरदार शहबाज खां ‘झुंझर के नवाब की सेना में सेनापति थे और चूँकि मुगल बादशाह के पक्ष में अंग्रेजों से लड़े थे इसलिए उनके पूरे खानदान को सूली पर लटका दिया गया था। उनके केवल एक पुत्र जो उन दिनों बहुत छोटे थे किसी प्रकार बच गये और उन्हीं से यह कुल आगे चला।

यदि वह चाहता तो पलक भपकने की देर में 'बुरे दिन' बहुत अच्छे दिनों में परिवर्तित हो सकते थे । लेकिन उसने ऐसा नहीं किया और विभिन्न स्थानों से विभिन्न पत्र-पत्रिकायें निकालकर (जिनमें 'एशिया' सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ), कभी किसी प्रेस में नौकरी करके, कभी फ़िल्म जगत में जाकर और कभी केवल मुशायरों की थोड़ी-सी आय पर निर्वाह करते हुए उन बुरे दिनों को धक्के दिये और हर कदम और हर मोड़ पर इस प्रतिज्ञा को छाती से लगाता रहा कि :

जब तिलाई^१ रंग सिक्कों को नचाया जायेगा ।

जब मेरी ग़ैरत^२ को दौलत से लड़ाया जायेगा ॥

जब रगे-इफ़लास^३ को मेरी दबाया जायेगा ।

ऐ वतन ! उस वक्त भी मैं तेरे नरमे गाऊँगा ॥

और अपने पांव से अंबारे-ज़र^४ ठुकराऊँगा ॥

जब मुझे पेड़ों से उरियां^५ करके बांधा जायेगा ।

गर्म आहन^६ से मिरे होंटों को दागा जायेगा ॥

जब दहकती आग पर मुझको लिटाया जायेगा ।

ऐ वतन ! उस वक्त भी मैं तेरे नरमे गाऊँगा ॥

तेरे नरमे गाऊँगा और आग पर सो जाऊँगा ॥

हुक्म आखिर क़त्लगह^७ में जब सुनाया जायेगा ।

जब मुझे फांसी के तख्ते पर चढ़ाया जायेगा ॥

जब यकायक तख्ता-ए-खूनी^८ हटाया जायेगा ।

ऐ वतन ! उस वक्त भी मैं तेरे नरमे गाऊँगा ॥

अहद^९ करता हूँ कि मैं तुझ पर फ़िदा^{१०} हो जाऊँगा ॥

आज देश स्वतन्त्र है । आज उसकी यह प्रतिज्ञा इतिहास का अंग बन चुकी है । मुशायरों में भी आज ग़लेबाज़ी का वह पहले ऐसा जोर-शोर नहीं रहा, लेकिन 'सागर' को अपनी इस प्रतिज्ञा और इस प्रकार की अन्य प्रतिज्ञाओं पर आज भी गौरव है और यथोचित गौरव है । अतएव पिछले दिनों जब दिल्ली के एक मुशायरे में वह भाग लेने आया तो उपस्थित जनों में से किसी मसख़रे ने उस पर यह वाक्य कसा कि "लीजिये एक भांड भी तशरीफ़ ला रहे हैं" तो लज्जित होने की बजाय 'सागर' ने तुरन्त इसका उत्तर यों दिया, "हां, मैं भांड हूँ और मुझे फ़ख़ है कि मैं क़ौम का भांड हूँ ।"

१. सुनहरी २. स्वाभिमान ३. दरिद्रता की नस ४. धन का ढेर ५. नग्न ६. लोहे ७. बध-स्थान ८. फांसी का तख्ता ९. प्रतिज्ञा १०. न्यै-दावर

नया पुजारी

कोई है बहारे - चमन का^१ पुजारी
 कोई है गुलो-यासमन^२ का पुजारी,
 बुते - मौलवी को^३ कोई पूजता है
 कोई कशक्रा-ए-बरहान का^४ पुजारी,
 गुलामे-गुलामाने-जमजम^५ है कोई
 कोई मौजे-गंगो-जमन का^६ पुजारी,
 मगर मेरा जौक्रे-परस्तिश^७ जुदा है ।
 मैं 'सागर' हूं अपने वतन का पुजारी ॥
 ऋषिकेश में कोई बैठा हुआ है
 कोई हर की पौड़ी के गुन गा रहा है,
 बनारस की गलियों में फिरता है कोई
 मजारों पे जाकर कोई नाचता है,
 कलीसा^८ में है महवे-तसलीम^९ कोई
 कोई देर^{१०} में मूर्ती पूजता है,
 मगर मेरा जौक्रे-परस्तिश जुदा है ।
 मैं 'सागर' हूं अपने वतन का पुजारी ॥
 हर इक क़ैदे-फ़र्जी^{११} से आजाद हूं मैं
 तरक्की दहे - बड़मे - ईजाद^{१२} हूं मैं,
 अक़ीदे^{१३} मेरे सामने कांपते हैं
 उसूले-मुहब्बत की बुनियाद हूं मैं,
 न जुन्नार^{१४} का ग्राम न तसबीह^{१५} का ग्राम ।
 दिमागी गुलामी से आजाद हूं मैं ॥

१. बाग की बहार का २. फूलों ३. मौलवी के बुत को ४. ब्रह्मन के तिलक का ५. जमजम (काबे का एक कुआँ) के गुलामों का गुलाम
 ६. गंगा, जमना की लहरों का ७. उपासना की अभिरुचि ८. गिरजाघर
 ९. उपासना में निमग्न १०. मन्दिर ११. मनघड़ंत क़ैद १२. संसार को उन्नत करने वाला १३. मान्यतायें १४. जनेऊ १५. माला

नाग

मस्ती का लहराता पैकर^१ सर से पा तक^२ काले ।

मौत की वादी के रखवाले, ऐ कहरो^३ के पाले ॥

अब्रे-सियाह^४ उतरा है ज़मीं पर ताज़ा शबनम पीने ।

हब्शी कोई लूट रहा है या मोती के खज़ीने^५ ॥

मैं भी इक मोती को उठा लूँ ?

ऐ बाम्बी के बासी !

आओ मैं तन मन में बसा लूँ, ऐ बाम्बी के बासी ॥

अपनी ही मस्ती की धुन में भूम रहे हो ऐसे ।

जैसे कोई दखनी कंवारी मदिरा पीकर भूमे ॥

अंधियारी दर्पन है तुम्हारा नूर^६ तुम्हारा हाला^७ ।

रात की देवी क्या जंगल में भूल गई है माला ?

अपने गले में तुमको डालूँ ?

ऐ बाम्बी के बासी !

आओ मैं तन मन में बसा लूँ, ऐ बाम्बी के बासी ॥

कुसुम की टहनी पर भौरे ने या डाला है डेरा ।

बिन पत्तों की शाख पे या कोयल ने रैन-बसेरा ॥

बिजली से मामूर^८ घटायें उमड़ रही हों जैसे ।

या सावन की काली रातें सिमट गई हों जैसे ॥

आओ तुमको बीन बना लूँ !

ऐ बाम्बी के बासी !

आओ मैं तन मन में बसा लूँ, ऐ बाम्बी के बासी ॥

या कोई मगरूर जवानी भूम रही हो पीकर ।

या तूफ़ानों में लहराये जैसे काला सागर ॥

१. शरीर (मूर्ति) २. सिर से पैरों तक ३. आफ़तों ४. काला बादल
५. खज़ाने ६. प्रकाश ७. कुण्डल ८. परिपूर्ण

पाप की मीठी अंधियारी हो या मस्ती का सवेरा ।

मौत की रौशन-तारीकी^१ हो या जीवन का अंधेरा ॥

उम्मीदों का दीप जला लूँ !

ऐ बाम्बी के बासी !

आओ मैं तन मन में बसा लूँ, ऐ बाम्बी के बासी ॥

ऐ बाम्बी के बसने वाले तुम क्या हो जहरोले ।

लाखों नाग हैं इन्सानों में गोरे, काले, पीले ॥

मुल्ला, नेता, पीर और पण्डित, राजे, पांडे, लाले ।

बस्ते हैं दुनिया में तुमसे बढ़कर डसने वाले ॥

तुमसे मैं क्या मन को डसा लूँ ?

ऐ बाम्बी के बासी !

आओ मैं तन मन में बसा लूँ, ऐ बाम्बी के बासी ॥

बिष है तुम्हारा बूँद बराबर, इनका जहर समन्दर ।

डंक तुम्हारा वीरानों तक, इनका डसना घर-घर ॥

तेरा काटा एक दिन जीवे, इनका काटा पल भर ।

सहर^२ तुम्हारा सर पर बोले, इनका जादू मन पर ॥

मन से इनका जहर हटा लूँ !

ऐ बाम्बी के बासी !

आओ मैं तन मन में बसा लूँ, ऐ बाम्बी के बासी ॥

इन्सानी नागों के बयां^३ हों क्या जहरी अफ़साने ।

तेरा डसना छुप-छुपकर है, इनका खुले-खुलाने ॥

डसते हैं और फिर कहते हैं मौत न आने पाये ।

तेरा बिष तो रखता है हर ज़ख़मी दिल पर फाये ॥

दारू-ए-आलाम^४ चुरा लूँ !

ऐ बाम्बी के बासी !

आओ मैं तन मन में बसालूँ, ऐ बाम्बी के बासी ॥

बुझा हुआ दीपक

जीवन की कुटिया में हूँ मैं बुझा हुआ सा दीपक ।
आशा के मन्दिर में हूँ मैं बुझा हुआ सा दीपक ॥
बुझा हुआ सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ सा दीपक ।

कजराये - दीवट पे धरा हूँ यूँ कुटिया में हाए ।
जैसे कोयल सीस नवाकर अम्बुआ पर सो जाए ॥
जैसे श्यामा गाते - गाते कुहरे में खो जाए ।
जैसे दीपक आग में अपनी आप भस्म हो जाए ॥
बिरह में जैसे आँख किसी क्वारी की पथरा जाए ।
बुझा हुआ सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ सा दीपक ॥

आतम, हिरदय, जीवन, मृत्यु, सतयुग, कलियुग, माया ।
हर रिश्ते पर मैंने अपने नूर^१ का जाल बिछाया ॥
चारों ओर चमक कर अपनी किरनों को दौड़ाया ।
जितना ढूँढ़ा उतना खोया, खोकर खाक न पाया ॥
बीत गये जुग लेकिन 'सागर' मुझ तक कोई न आया ।
बुझा हुआ सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ सा दीपक ॥

आखिर बिल्कुल बुझ जाने की हो ली जब तैयारी ।
आकर मेरे कान में बोली इक शब^२ यूँ अधियारी ॥
जग में जिसको कोई न पूछे वो किस्मत की मारी ।
मन-मन्दिर में मुझ को बिठा लो ऐ ज्योति के रसिया ॥

बुझे हुए से दीपक तुम, मैं थकी हुई अंधियारी ।
 बुझा हुआ सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ सा दीपक ॥

अंधियारी की बातें सुनकर मन बोला—उठ जाग ।
 यही तेरी मंजिल है दीपक ! यही हूँ तेरे भाग ॥
 भड़क उठी सीने में बिरह की दबी हुई सी आग ।
 आशा के मन्दिर में गूँजा इक तूफानी राग ॥
 आँखों में जलते आंसू थे, होंटों पर थीं आँहें ।
 डाल दीं अंधियारी के गले में रोककर मैंने बाँहें ॥
 बुझा हुआ सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ सा दीपक ॥

फुटकर शेर

सब्र नहीं है जिन्दगी जब नहीं है आशिकी ।
दिल पे नहीं है अस्त्रियार, उन पे हो अस्त्रियार क्यों ?
अपना ही बुतकदा^१ सजा, अपने ही बुत पे लोट जा ।
तेरे दिमागो-दिल पे हो, दँरो - हरम^२ का बार क्यों ?

◇

◇

◇

उसी लम्हे को शायर यास^३ की तकमील^४ कहते हैं ।
मुहब्बत जब मिजाजे-आशिकी पर बार^५ हो जाये ॥

◇

◇

◇

मेरी खाक^६ पर साजे - यकतार^७ लेकर ।
उमीद अब भी इक गीत सा गा रही है ॥

◇

◇

◇

समझना तेरा कोई आसां है जालिम !
ये क्या कम है खुदआश्ना^८ हो गये हम ॥
भटक कर पड़े रहजनों^९ के जो हाथों ।
लुटे इस कदर रहनुमा^{१०} हो गये हम ॥
जुनूने - खुदी^{११} का ये ऐजाज^{१२} देखो ।
कि जब मौज आई खुदा हो गये हम ॥
मुहब्बत ने उम्रे-अबद^{१३} हम को बख्शी ।
मगर सब ये समझे फ़ना हो गये हम ॥

◇

◇

◇

१. मन्दिर २. मन्दिर - मस्जिद ३. निराशा ४. पूर्णता ५. भार
६. मिट्टी (कब्र) ७. इकतारा ८. आत्म - परिचित ९. लुटेरों के १०. पथ-
प्रदर्शक ११. अहम्मन्यता १२. चमत्कार १३. अमरत्व

रोकती ही रह गई मासूम दूर-अंधेशियां^१ ।
 उन के लब^२ पर मेरा जिक्रे-नातमाम^३ आ ही गया ॥
 है जहां इश्को-हविस^४ को एतराफ़े-बेकसी^५ ।
 तलखी-ए-हस्ती के^६ कुर्बानि^७ वो मुक़ाम आ ही गया ॥
 जैसे सागर से छलक जाये मचलती मौजे-में^८ ।
 कांपते होंटों पे उनके मेरा नाम आ ही गया ॥

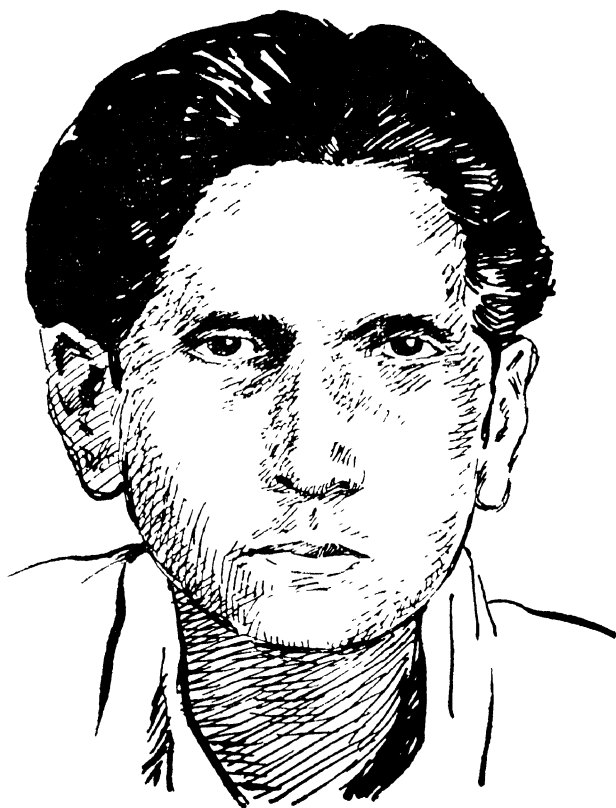
◇ ◇ ◇
 ये तेरा तसव्वुर है या मेरी तमन्नाएं ।
 दिल में कोई रह-रह के दीपक से जलाये है ॥
 जिस सिम्त^९ न दुनिया है, ऐ दोस्त न उक़बा^{१०} है ।
 उस सिम्त मुझे कोई खींचे लिए जाये है ॥

◇ ◇ ◇
 तेरे सर की क़सम गर तू न हो मेरे तसव्वुर^{१०} में ।
 मेरी नाजूक तबीयत पर ये दुनिया बार^{११} हो जाये ॥

◇ ◇ ◇
 ख़िरद^{१२} को ये ज़िद भी न लुटती ये दौलत ।
 इसी ज़िद पे हमने जवानी लुटा दी ॥

◇ ◇ ◇
 कैफ़े-ख़ुदी^{१३} ने मौज को कश्ती बना दिया ।
 फ़िक्रे-ख़ुदा है अब न ग़मे-नाख़ुदा^{१४} मुझे ॥

१. दूरदर्शितायें २. होंठ ३. समाप्त न होने वाली चर्चा ४. प्रेम तथा कामवासना ५. विवशता का स्वीकरण ६. जीवन की कटुता के ७. शराब की लहर ८. ओर ९. परलोक १०. कल्पना ११. भार १२. ज्ञान १३. अहम्मन्यता के उन्माद १४. मल्लाह की चिंता



‘मजाज’ लखनवी

ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

परिचय

“एक ऐसा वक्त भी गुज़रा है जब ‘मजाज़’ के नाम पर गर्लज़ कालेज, अलीगढ़ में लाट्रियां डाली जाती थीं कि ‘मजाज़’ किस के हिस्से में पड़ता है और उस की नज़में तकियों के नीचे छुपा कर आंसुओं से सींची जाती थीं और जब कंवारियां अपने भावी बेटों के नाम उसके नाम पर रखने की कसमें खाती थीं और अपने कहकहों, चूड़ियों की खनखनाहट और उड़ते हुए दोपट्टों की लहरों में ‘मजाज़’ के शेर गुनगुनाती थीं....”

‘मजाज़’ के सम्बन्ध में इस्मत चुगताई (प्रसिद्ध उर्दू लेखिका) के ये शब्द पढ़ने के बाद जब मैं आज के मजाज़ की ओर देखता हूँ, विशेष रूप से इस समय जबकि मैं उसके जीवन और उसकी शायरी के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिखने जा रहा हूँ और मैंने नये सिरे से उसकी समूची शायरी का अध्ययन किया है और मुझे उससे अपनी तमाम मुलाकातें याद आ रही हैं तो मुझे बड़े दुख से कहना पड़ता है कि आज नौजवान और सुन्दर से सुन्दर लड़कियों के इतने प्रिय शायर के जीवन की सबसे बड़ी रिक्तता औरत है।

खाइयेगा इक निगाहे-सुल्फ़ का कब तक फ़रेब ?

कोई अफ़साना बनाकर बदगुमां हो जाइये^१।

यह शेर ‘मजाज़’ ही का है। सोचता हूँ, किस भावना के वशीभूत ‘मजाज़’ ने यह शेर कहा होगा ! ‘मजाज़’ के नाम पर लाट्रियां डालने वाली लड़कियों ने

१. प्रेमिका की एकमात्र कृपा-दृष्टि (लगाव) का कब तक धोखा खायें ?

कोई प्रेम-कथा गढ़ कर क्यों न मन बहला लिया जाए ?

‘मजाज’ को बदगुमानी तो नहीं हाँ खुशफ्रहमी (आत्मप्रवंचना) में ज़रूर डाले रखा और यह उसके जीवन की ट्रेजिडी है कि वह सब कुछ समझते हुए भी उस आत्मप्रवंचना में ग्रस्त रहा ।

मुझको अहसासे-फरेबे-रंगो-बू^१ होता रहा ।

मैं मगर फिर भी फरेबे-रंगो-बू खाता रहा ॥

जान-बूझकर ‘रंगो-बू’ का फरेब खाने का परिणाम यह हुआ कि ‘मजाज’ ने अपनी कल्पित नायिकाओं की परछाइयाँ शराब के प्याले में तलाश करनी शुरू कर दीं और अपनी ‘सुशीलता’ के सहारे शराब को शिकस्त देते स्वयं शराब का शिकार हो गया और फिर शराब ने उससे बुरी तरह बदला लिया । उसने गिर-गिरकर सँभलने की लाख कोशिश की, लेकिन हुआ यही कि उसके दिल का लोच और उसकी चितनशीलता शराब से हार गई और उसे अपनी पराजय का अनुभव भी हो गया :

क्या सुनोगी मेरी मजरूह^२ जवानी की पुकार,
मेरी फ़य्यदि-जिगरदोज़,^३ मेरा नाला-ए-ज़ार^४,
शिद्दे-क़र्ब में^५ डूबी हुई मेरी गुफ़्तार^६,
मैं कि खुद अपने मजाके-तरब-आगी^७ का शिकार,
वो गुदाजे-दिले-मरहूम^८ कहाँ से लाऊँ ?
अब मैं वो जज़्बा-ए-मासूम^९ कहाँ से लाऊँ ?

और

मेरी बर्बादियों का, हमनशीनो^{१०},
तुम्हें क्या, खुद मुझे भी ग़म नहीं है ।

लेकिन यह केवल शायर के स्वाभिमान की बात है । अन्यथा ‘मजाज’ को अपनी बर्बादियों का ग़म है और बहुत अधिक ग़म है । जानने वाले जानते हैं कि हर तूफ़ान के बाद मजाज की मूकता और दीर्घ मूकता कितनी सार्थक होकर सामने आती रही है और हर ‘पाप’ के बाद वह किस प्रकार उसका ‘प्रायश्चित्त’ करता रहा है । जब अपने प्रेम में विफल होने के बाद उसे देहली छोड़नी पड़ी

१. रंग तथा सुगंधि (सौन्दर्य) के धोखे की अनुभूति २. घायल ३. दिल दुखाने वाली फ़र्याद ४. आर्तनाद ५. तीव्र वेदना में ६. बातचीत ७. प्रसन्न स्वभाव ८. मरे हुए (बुझे हुए) दिल का लोच ९. अबोध भावना १०. साथियो

तो उसकी क्या हालत हुई ? जब शराब की अधिकता के कारण पहली बार उसका मानसिक संतुलन बिगड़ा तो स्वस्थ होने के बाद उसकी क्या हालत थी ? जब उसे आल-इंडिया रेडियो उर्दू मासिक-पत्रिका 'आवाज़' (यह नाम 'मजाज' ही का दिया हुआ है) का सम्पादन छोड़ना पड़ा तो उसकी क्या हालत थी ? और दोबारा शराब की अधिकता के कारण राँची मेंटल हस्पताल में रहने के बाद, जब पिछले दिनों वह बाहर निकला है तो इन दिनों उसकी क्या हालत है ?—जानने वाले जानते हैं कि उसको अपनी बर्बादी का कितना गम है और यही गम प्रकाश की वह हल्की-सी किरन है जो हम से कहती है कि "इन्तजार करो, 'मजाज' अब भी सँभल सकता है ।"

'मजाज' से मेरी पहली मुलाकात बड़े नाटकीय ढंग से हुई । यह १९४८ की एक रात के दस-ग्यारह बजे की बात है कि महीनों की दौड़धूप के बाद किसी प्रकार मैंने और 'साहिर' लुधियानवी ने नया मोहल्ला, पुल बंगश (दिल्ली) में एक खाली मकान ढूँढ़ निकाला था । मोहल्ला मुसलमानों का था और उन दिनों शहर का वातावरण मुसलमानों के पक्ष में अच्छा न था । अर्थात् एक चीज 'साहिर' के पक्ष में थी और दूसरी मेरे; अतएव हम दोनों विचित्र प्रकार का डर तथा भिन्नक महसूस कर रहे थे और चाहते थे कि हमारे मकान में प्रवेश करने की किसी को कानों-कान खबर न हो । 'साहिर' सामान ढो रहा था और मैं गली के बाहर सामान की रखवाली कर रहा था कि एक ओर से एक दुबला-पतला, तीखे नैन-नक्श का व्यक्ति बुरी तरह लड़खड़ाता और बुड़बुड़ाता हुआ मेरे निकट आ खड़ा हुआ ।

" 'अख्तर' शीरानी मर गया—"

"—हाय 'अख्तर' शीरानी तू उर्दू का बहुत बड़ा शायर था—बहुत बड़ा ।"

वह बार-बार यही वाक्य दोहरा रहा था और हाथों से शून्य में टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें बना रहा था और न जाने किसे कोसने दे रहा था कि मैं घबरा गया और अपनी उस समय की घबराहट में मैं न जाने उससे क्या कुछ कह डालता कि ठीक उसी समय कहीं से 'जोश' मलीहाबादी निकल आये (उन दिनों वे उसी मोहल्ले में रहते थे) और मुझे पहचान कर बोले "इन्हें संभालो प्रकाश ! ये 'मजाज' हैं ।"

'मजाज' की शायरी का प्रशंसक और उससे मिलने का इच्छुक होने पर भी उस समय 'मजाज' को संभालने की बजाय अपने-आपको संभालना अधिक आवश्यक था । फिर भी 'साहिर' के लौटने तक मैं 'मजाज' के अनुरोध पर उसी की

तरह शून्य में टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें खींचता रहा और उसके उस मेज़बान को उसी तरह बुरा-भला कहता रहा, जिसने घर में शराब होने पर भी उसे और शराब न पीने दी थी और अपनी मोटर में बिठा कर रेलवे पुल के पास छोड़ दिया था ।

[ये पंक्तियाँ लिखते समय मुझे 'मजाज़' की वह क्रुद्धता याद आ रही है जिसका उल्लेख उसने 'साहिर' लुध्यानवी के नाम अपने एक पत्र में किया था और अपनी निष्कपटता के बावजूद मैं डरता हूँ कि कहीं 'मजाज़' पर मेरे इस लेख की प्रतिक्रिया भी वही न हो । 'सवेरा' (लाहौर) के सम्पादन काल में 'साहिर' ने 'मजाज़' का परिचय कराते हुए यह लिख दिया था कि 'मजाज़' पर दो बार दीवानगी का दौरा पड़ चुका है और वह दिन-रात शराब पीता है और गली-कूचों में मारा-मारा फिरता है—'मजाज़' ने इस परिचय के उत्तर में गिला किया था कि :

कुछ तो होते हैं मुहब्बत में जनों^१ के आसार^२ ।
और कुछ लोग भी दीवाना बना देते हैं ॥

मेरी अभिलाषा है कि 'मजाज़' को मेरे इस लेख से इस प्रकार का आभास न हो ।]

'मजाज़' से अपनी इस मुलाकात का जिक्र करने की आवश्यकता मुझे इस लिए हुई क्योंकि इससे मुझे उसकी शायरी की पृष्ठभूमि को समझने में बड़ी सहायता मिली है । उसके बाद भी मैं प्रायः मजाज़ से मिलता रहा हूँ और मुझे दो-तीन मास तक उसका मेज़बान होने का सौभाग्य भी प्राप्त हो चुका है और होश में भी और नशे में भी मैं उसकी ज़बान से तरह-तरह की बातें सुन चुका हूँ, लेकिन उसकी वह पहली मुलाकात मुझे कभी नहीं भूलती जब वह नशे में धुत होने पर भी 'अख्तर शीरानी', 'अख्तर शीरानी' पुकार रहा था और उसे उर्दू का बहुत बड़ा शायर कह रहा था ।

वास्तविकता यह है कि 'अख्तर' शीरानी और 'मजाज़' की शायरी की पृष्ठ-भूमि एक है अर्थात् मौलिक रूप से दोनों रोमांटिक शायर हैं । वहाँ भी बेकार जीवन की उदासी का निखार है और यहाँ भी । वहाँ भी शराब है और यहाँ भी । वहाँ भी कोई न कोई 'सलमा' और 'अज़रा' है (अख्तर शीरानी की काल्पनिक प्रियतमाएं) और यहाँ भी कोई 'जोहरा जबी' । वहाँ भी गालिब,

मोमिन, हाफ़िज़ और ख़य्याम का नख़शिख़ है और यहाँ भी । लेकिन आगे चल कर जो चीज़ 'मजाज़' को 'अस्तूर' शीरानी से अलग करती है, वह है 'मजाज़' की प्रगतिशील प्रवृत्ति । खालिस रूप-रस की शायरी करते हुए भी वह अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के प्रभावों तथा परिवर्तनों से पहलू नहीं बचाता । हुस्न और इश्क़ का एक अलग संसार बसाने की इच्छा के प्रतिकूल वह हुस्न और इश्क़ पर लगे प्रतिबन्धों तथा समाज के अन्यायों के विरुद्ध अपना दुःख तथा क्रोध प्रकट करता है ।

दैवीय अप्सराओं की ओर देखने की बजाय उसकी नज़र रास्ते के गन्दे लेकिन ललित सौंदर्य पर पड़ती है और इन दृश्यों के निरीक्षण के बाद वह जन-साधारण की तरह जीवन के दुःख-दर्द के बारे में सोचता है और फिर अपनी सोच को जिस कविता में ढालता है उसमें किसी 'जोहरा ज़बी' से प्रेम-मात्र ही नहीं होता, एक विद्रोह की भावना भी होती है । यह विद्रोह वह कभी जीवन-व्यवस्था के विरुद्ध करता है, कभी साम्राज्य के विरुद्ध और कभी जीवन की निराशाओं और असफलताओं के वशीभूत इतना कठोर तथा उत्तेजित हो जाता है कि अपनी 'जोहरा ज़बीनों' के 'सुन्दर महल' तक फूँक डालना चाहता है ।

कदाचित् इसीलिए 'मजाज़' की शायरी पर आलोचना करते हुए उर्दू के एक बुजुर्ग शायर तथा आलोचक ने एक बार लिखा था कि "उर्दू में एक कीट्स (Keats) पैदा हुआ था लेकिन इन्क़लाबी भेड़िये उसे उठा ले गये ।"

'मजाज़' को इन्क़लाबी भेड़िये उठा ले गये या वह स्वयं भोली-भाली भेड़ों के रेवड़ से निकल आया, इस लम्बे तर्क की यहाँ गुंजाइश नहीं है, हाँ इस वास्तविकता से उर्दू का कोई पाठक इन्कार नहीं कर सकता कि 'मजाज़' ने जिस प्रकार व्यक्तिगत दुखों को सामाजिक पृष्ठभूमि में जाँचा है और यथार्थवाद तथा रोमांसवाद का संगम तलाश किया है और उसके यहाँ जो लोच तथा विमलता, प्रेम तथा राजनीति, शृंगार तथा चिन्तन का सुन्दर समन्वय मिलता है, वह उस की कला-सम्पन्नता के अतिरिक्त इस बात का सूचक भी है कि कोई लेखक या कवि केवल शून्य में जीवन व्यतीत नहीं कर सकता और न ही अपनी कल्पना के पंखों पर उड़कर अधिक देर तक किसी कृत्रिम स्वर्ग में जीवित रह सकता है ।

सन् १९३५ में, जब 'मजाज़' को शायरी करते अभी केवल पाँच वर्ष ही हुए थे और भारत में अभी प्रगतिशील लेखक-संघ की नींव भी नहीं पड़ी थी, 'मजाज़' ने अपना परिचय इन शब्दों में कराया था :

खूब पहचान लो असरार^१ हूँ मैं ।
 जिन्से-उल्फ़त^२ का तलबगार हूँ मैं ॥
 ख़वाबे-इशरत में हैं अरबाबे-ख़िरद^३ ।
 और इक शायरे-बेदार^४ हूँ मैं ॥
 ऐब जो हाफ़िज़ो-ख़य्याम में था ।
 हां कुछ उसका भी गुनहगार हूँ मैं ॥
 हूरो-ग़िलमां का यहाँ ज़िक्क नहीं ।
 नौ-ए-इन्सां का परस्तार हूँ मैं ॥

बेशक वह 'हाफ़िज़' और 'ख़य्याम' (प्रसिद्ध फ़ारसी कवि जो रूप और मदिरा के उपासक थे) के 'ऐब' का गुनहगार है लेकिन नौ-ए-इन्सां (मानव) की परस्तिश (उपासना) की यही भावना हर अवसर पर उसकी सहायता करती रही है। यह कोई साधारण बात नहीं है कि अपनी मस्ती तथा सौंदर्य-प्रेम में डूबे रहने तथा मौलिक रूप से रोमांसवादी शायर होते हुए भी यदि हर क़दम पर नहीं तो हर मोड़ पर वह प्रगतिशील आन्दोलन के साथ रहा है। मेरे इस दावे के प्रमाण में 'मजाज़' के निम्नलिखित शेर देखिये जिन्हें मैं तिथिवार प्रस्तुत कर रहा हूँ :

हदें वो खँच रखी हैं हरम^५ के पासबानों ने ।
 कि बिन मुज़रिम बने पेग़ाम भी पहुँचा नहीं सकता ॥ (१६३६)
 जवानी की अँधेरी रात है, जुलमत^६ का तूफ़ान है ।
 मेरी राहों में नूरे-माहो-अंजुम^७ तक गुरेज़ा^८ है ॥
 खुदा सोया हुआ है अहरमन^९ महशर-बदामां^{१०} है ।
 मगर मैं अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ता ही जाता हूँ ॥ (१६३७)
 मुफ़लिसी औरूये मज़ाहिर^{११} हैं नज़र के सामने ।
 सँकड़ों सुलताने-जाबिर^{१२} हैं नज़र के सामने ॥

१. मजाज़ का असल नाम असरारुलहक़ है २. वह वस्तु जिसे प्रेम कहते हैं ३. बुद्धिजीवी ऐश की नौद में डूबे हुए हैं ४. जागरूक कवि ५. काबे की चारदीवारी ६. अंधकार ७. चाँद-सितारों का प्रकाश ८. क़स्ती कतराये हुए ९. शैतान १०. प्रलय मचा रहा है ११. दृश्य १२. अत्याचारी बादशाह

सैकड़ों चंगेजो-नादिर^१ हैं नज़र के सामने ।

ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ^२ ? (१६३७)

जहने-इन्सानी^३ ने अब औहाम^४ की जुलमात^५ में,

ज़िन्दगी की सख्त, तूफ़ानी, अंधेरी रात में,

कुछ नहीं तो कम से कम ख़ाबे-सहर^६ देखा तो है,

जिस तरफ़ देखा न था अब तक, उधर देखा तो है । (१६३९)

बोल री ओ धरती बोल ।

राज सिहासन डाँवाँडोल ॥ (१६४५)

ये इंकलाब का मुज़दा^७ है इंकलाब नहीं ।

ये आफ़ताब^८ का परतौ^९ है आफ़ताब नहीं ॥ (१६४७)

सब्ज़ा-ओ-बर्गो-लाला-ओ-सर्वो-समन^{१०} को क्या हुआ ?

सारा चमन उदास है हाए चमन को क्या हुआ ?

कोई बताए अज़मते-खाके-वतन^{११} को क्या हुआ ?

कोई बताए ग़रते-अहले-वतन को^{१२} को क्या हुआ ? (१६५०)

इन शेरों में आपको जन-चेतना, स्वतन्त्रता-आन्दोलन, जन-आन्दोलन में कलाकारों की जिम्मेदारी, स्वतन्त्रता तथा स्वतन्त्रता की प्रतिक्रिया इत्यादि हर चीज़ की झलकियाँ मिल जाएँगी । 'झलकियाँ' मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि 'मजाज' कितना ही बड़ा और कैसा ही सामयिक विषय क्यों न प्रस्तुत कर रहा हो कविता के मूल्यों को कभी हाथ से नहीं जाने देता; और चूँकि उसका दृष्टिकोण मूलरूप से रोमांसवादी है, और इसलिए उसकी कविता हर समय उसके साथ रहती है और उसने क्लासिकल शायरी से विमुख होने की बजाय पुरानी उपमाओं, संकेतों तथा शब्दों को नये अर्थ पहनाना ही उचित समझा है, इसलिए कुछ-एक स्थानों को छोड़कर, जहाँ सामाजिक तथा राजनीतिक त्रुटियों के प्रति उत्तेजित हो वह कुछ भावुक तथा ध्वंसात्मक हो गया है, सामूहिक रूप

१. आक्रमणकारी बादशाह जिन्होंने भारत में लूट-मार मचाई थी

२. ऐ मेरे हृदय की व्यथा तथा ऐ मेरे हृदय के उन्माद ! मैं क्या करूँ ?

३. मानव-मस्तिष्क ४. भ्रम ५. अंधकार ६. सुबह होने का सपना

७. शुभ समाचार ८. सूरज ९. प्रतिबिम्ब १०. हरियाली, फूल, पत्ते,

सर्व तथा चमेली ११. देश की मिट्टी की महानता १२. देशवासियों के

आत्म-गौरव को

से वह सामाजिक तथा राजनीतिक क्रांति के लिए गरजता नहीं, गाता है। और मेरे लिए यही उसकी शायरी का सबसे बड़ा गुण है।

‘मजाज़’ के कविता-संग्रह ‘आहंग’ की भूमिका में फ़ैज़ अहमद ‘फ़ैज़’ ने भी उसे क्रांति के ढंढोरची की बजाय क्रांति के गायक की उपाधि देते हुए बिल्कुल ठीक लिखा था कि :

“ ‘मजाज़’ की इंकिलाबियत आम इंकिलाबी शायरों से मुस्तलिफ़ है। आम इंकिलाबी शायर इंकिलाब के बारे में गजरते हैं, ललकारते हैं, सीना कूटते हैं, इंकिलाब के मुतअन्निक गा नहीं सकते... वे सिर्फ इंकिलाब की हौलनाकी (भयानकता) देखते हैं, उसके हुस्न को नहीं पहचानते। यह इंकिलाब का तरांगी-पसंद (प्रगतिशील) नहीं रजअत-पसंद (प्रतिक्रियावादी) तसव्वुर (दृष्टिकोण) है। ”

“ ‘मजाज़’ उर्दू शायरी का कीट्स (Keats) है। ”

“ ‘मजाज़’ सही अर्थों में प्रगतिशील शायर है। ”

“ ‘मजाज़’ शृंगार रस तथा मदिरा का शायर है। ”

“ ‘मजाज़’ नीम-पागल लेकिन निष्कपट व्यक्ति है। ”

“ ‘मजाज़’ बड़ा हाज़िरजवाब और लतीफ़ागो है। ”

“ ‘मजाज़’ शराबी है। ”

“ ‘मजाज़’ केवल शायर है। ”

‘मजाज़’ को पढ़ने वाले, ‘मजाज़’ से मिलने वाले, ‘मजाज़’ को जानने वाले घूम-फिरकर ‘मजाज़’ के सम्बन्ध में इन्हीं बिन्दुओं पर पहुँचते हैं, लेकिन यही बिन्दु मिल-जुलकर एक ऐसे उज्ज्वल केन्द्र पर अवश्य मिल जाते हैं जहाँ ‘मजाज़’ और केवल ‘मजाज़’ लिखा हुआ है।

अपनी शायरी तथा व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का मालिक यह शायर २ फ़रवरी १९०९ के दिन लखनऊ में पैदा हुआ। बी० ए० तक की शिक्षा लखनऊ, आगरा और अलीगढ़ में प्राप्त की और आगरा निवास के दिनों में उसने उर्दू के प्रसिद्ध शायर स्वर्गीय ‘फ़ानी’ बदायूनी के नेतृत्व में अपनी उस प्रकाशमान शायरी का प्रारम्भ किया जिसकी चमक आगरा, अलीगढ़, दिल्ली और फिर पूरे भारत में फैल गई।

आज ‘मजाज़’ चुप है। काश कि उसकी यह चुप्पी तूफ़ान से पहले का उमस सिद्ध हो और वह एक बार फिर नये रंग-रूप के साथ हमारी महफ़िल पर छाने के लिए इधर आ निकले।

लेकिन नहीं !

उर्दू का यह अलबेला शायर ६ दिसम्बर १९५५ को
हमेशा-हमेशा के लिए वहाँ चला गया जहाँ से कोई कभी
लौटकर नहीं आता ।

झुप गये वो साजे-हस्ती छेड़कर ।

अब तो बस आवाज़ ही आवाज़ है ॥

आवारा

शहर की रात और मैं नाशादो-नाकारा^१ फिरूँ,
जगमगाती - जागती सड़कों पे आवारा फिरूँ,
गैर की बस्ती है कब तक दरबदर मारा फिरूँ ?

ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

भिलमिलाते क्रुमक्रुमों की राह में जंजीर सी,
रात के हाथों में दिन की मोहनी तस्वीर सी,
मेरे सीने पर मगर दहकी हुई शमशीर सी^२,

ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

ये रुपहली छांव ये आकाश पर तारों का जाल,
जैसे सूफ़ी का तसव्वुर जैसे आशिक़ का खयाल^३,
आह लेकिन कौन जाने, कौन समझे जी का हाल,

ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

रात हँस हँस के ये कहती है कि मैखाने में चल,
फिर किसी शहनाजे-लालारुख^४ के काशाने में^५ चल,
ये नहीं मुमकिन तो फिर ऐ दोस्त वीराने में चल,

ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

१. उदास, बेकार २. कवि रात तथा अपनी मनःस्थिति का सुन्दर वर्णन करते हुए कहता है : (सड़क पर) बिजली के हंडों की जंजीर-सी बनी हुई है, मानो रात के हाथों में दिन की मोहनी सूरत हो, परन्तु मेरी छाती पर दहकती हुई तलवार पड़ रही है। ३. तसव्वुर तथा खयाल अर्थात् कल्पना तथा विचार। संत तथा प्रेमी के विचार तथा कल्पनाएँ सदैव उलझी हुई होती हैं।

४. लाला के फूल ऐसे मुखड़े वाली सुन्दरी ५. सुन्दर सुसज्जित घर में

रास्ते में रुक के दम ले लूँ मेरी आदत नहीं,
लौटकर वापस चला जाऊँ मेरी फ़ितरत नहीं,
और कोई हम-नवा^१ मिल जाये ये किस्मत नहीं,
ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

मुन्तज़िर है एक तूफ़ाने - बला^२ मेरे लिए,
अब भी जाने कितने दरवाज़े हैं वा^३ मेरे लिए,
पर मुसीबत है, मेरा अहदे - वफ़ा^४ मेरे लिए,
ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

जी में आता है कि अब अहदे-वफ़ा भी तोड़ दूँ,
उनको पा सकता हूँ मैं, ये आसरा भी तोड़ दूँ,
हां मुनासिब है, ये ज़ंजीरे-हवा^५ भी तोड़ दूँ,
ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

इक महल की आड़ से निकला वो पीला माहताब^६,
जैसे मुल्ला का अमामा^७, जैसे बनिये की किताब,
जैसे मुफ़लिस की जवानी, जैसे बेवा का शबाब^८,
ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

दिल में एक शोला भड़क उट्ठा है, आखिर क्या करूँ ?
मेरा पैमाना छलक उट्ठा है, आखिर क्या करूँ ?
ज़रूम सीने का महक उट्ठा है, आखिर क्या करूँ ?
ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

१. साथी २. विपत्तियों का तूफ़ान ३. खुले ४. प्रेम निभाने की प्रतिज्ञा ५. हवा की ज़ंजीर (कभी न निभने वाली बात) ६. चाँद ७. पगड़ी ८. विधवा का यौवन । इस पद्य में चाँद की तुलना सभी ऐसी चीज़ों से की गई है, जो जर्जर तथा बुझी-बुझी-सी हैं क्योंकि कवि की मनःस्थिति इस समय ऐसी है कि उसे चाँद तक अप्रिय लग रहा है ।

जी में आता है ये मुर्दा चाँद तारे नोच लूँ,
 इस किनारे नोच लूँ और उस किनारे नोच लूँ,
 एक दो का जिक्र क्या, सारे के सारे नोच लूँ,
 ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

मुफ़लिसी और ये मजाहिर^१ हैं नज़र के सामने,
 सैकड़ों सुलताने - जाबिर^२ हैं नज़र के सामने,
 सैकड़ों चंगेज़ो - नादिर हैं नज़र के सामने,
 ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

ले के इक चंगेज़ के हाथों से खंजर तोड़ दूँ,
 ताज पर उसके दमकता है जो पत्थर तोड़ दूँ,
 कोई तोड़े या न तोड़े मैं ही बढ़कर तोड़ दूँ,
 ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

बढ़ के इस इन्दरसभा का साज़ो-सामां फूंक दूँ,
 इसका गुलशन^३ फूंक दूँ उसका शबिस्तां^४ फूंक दूँ,
 तख्ते-सुल्तां^५ क्या, मैं सारा कसरे-सुलतां^६ फूंक दूँ,
 ऐ गमे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

१. दृश्य २. अत्याचारी बादशाह ३. फुलवाड़ी ४. शनागार

५. बादशाह का तख्त ६. बादशाह का महल

एतराफ़

अब मेरे पास तुम आई हो तो क्या आई हो !

मैंने माना कि तुम इक पैकरे-रानाई^१ हो,
चमने-दहर^२ में रूहे-चमन-आराई^३ हो,
तलअते-मेहर^४ हो फ़िर्दौस^५ की बरनाई^६ हो,
बिन्ते-महताब^७ हो गर्दू^८ से उतर आई हो,
मुझसे मिलने में अब अंदेशा-ए-रुसवाई^९ है ।
मैंने खुद अपने किये की ये सज़ा पाई है ॥

खाक में आह मिलाई है जवानी मैंने,
शोला-ज़ारों^{१०} में जलाई है जवानी मैंने,
शहरे-खूबां^{११} में गंवाई है जवानी मैंने,
ख़ाबगाहों में जगाई है जवानी मैंने,
हुस्न ने जब भी इनायत की नज़र डाली है ।
मेरे पैमाने-मुहब्बत^{१२} ने सिपर^{१३} डाली है ॥

उन दिनों मुझ पे क्रयामत का जुनू^{१४} तारी था,
सर पे सरशारी-ए-इशरत का^{१५} जुनू तारी था,
माहपारों^{१६} से मुहब्बत का जुनू तारी थी,
शहरयारों^{१७} से रक्ताबत^{१८} का जुनू तारी थी,
बिस्तरे-मख़मलो-संजाब^{१९} थी दुनिया मेरी ।
एक रंगीनो-हसीं ख़ाब थी दुनिया मेरी ॥

१. लावण्यता की प्रतिमा २. संसार-रूपी वाटिका ३. वाटिका को
सँवारने वाली ४. सूर्यमुखी ५. स्वर्ग ६. जवानी ७. चाँद की बेटी
८. आकाश ९. बदनामी का भय १०. अग्नि-स्थानों ११. परिस्तान
१२. प्रेम की प्रतिज्ञा १३. हार मानना १४. उन्माद १५. सुख-विलास की
पूर्ति १६. चाँद के टुकड़े (सुन्दरियाँ) १७. अधिकारी वर्ग १८. प्रतिद्वन्द्विता
१९. संसार मेरी दृष्टि में रेशम के बिस्तर ऐसा सुखप्रद था ।

संग^१ को गौहरे-नायाबो-गिरां^२ जाना था,
 दस्ते-पुरखार को^३ फ़िर्दौसे-जवां^४ जाना था,
 रेग^५ को सिलसिला-ए-आबे-रवां^६ जाना था,
 आह, ये राज अभी मैंने कहां जाना था ?
 मेरी हर फ़तह में है एक हज़ीमत^७ पिनहां^८ ।
 हर मुसरत में है राज़े-ग़मो-हसरत^९ पिनहां ॥
 क्या सुनोगी मेरी मजरूह^{१०} जवानी की पुकार,
 मेरी फ़र्यादे-जिगरदोज़, मेरा नाला-ए-ज़ार^{११},
 शिद्दे-कब में^{१२} डूबी हुई मेरी गुफ़्तार^{१३},
 मैं कि खुद अपने मज़ाके-तरब-आगीं का^{१४} शिकार,
 वो गुदाज़े-दिले-मरहूम^{१५} कहां से लाऊं ?
 अब मैं वो ज़बा-ए-मासूम कहां से लाऊं ?
 मेरे साये से डरो तुम मेरी क़ुरबत^{१६} से डरो,
 अपनी ज़ुरत की क़सम अब मेरी ज़ुरत से डरो,
 तुम लताफ़त^{१७} हो अगर मेरी लताफ़त से डरो,
 मेरे वादों से डरो मेरी मुहबबत से डरो,
 अब मैं अलताफ़ो-इनायत का^{१८} सज़ावार नहीं,
 मैं वफ़ादार नहीं, हां मैं वफ़ादार नहीं,
 अब मेरे पास तुम आई हो तो क्या आई हो ?

१. पत्थर २. अमूल्य मोती ३. कंटीले जंगल को ४. जवान स्वर्ग
 ५. रेत ६. बहते जल का सिलसिला ७. पराजय ८. निहित ९. ग़म
 और हसरत का भेद १०. घायल ११. दिल दुखाने वाली फ़र्याद
 १२. तीव्र वेदना में १३. बातचीत १४. सुन्दर स्वभाव का १५. मृत
 (बुझे हुए) दिल का लोच १६. सामीप्य १७. समीपता १८. कोमलता
 (सक्षमता) १९. क़पाओं का

गजल

खातिरे-अहले-नज़र^१ हुस्न को मन्जूर नहीं ।
 इसमें कुछ तेरी खता दीदा-ए-महज़ूर^२ नहीं ॥
 साख छुपते हो मगर छुप के भी मसहूर^३ नहीं ।
 तुम अजब चीज़ हो नज़दीक नहीं, दूर नहीं ॥
 जुरंते-अर्ज पे^४ वो कुछ नहीं कहते लेकिन ।
 हर अदा से ये टपकता है कि मन्जूर नहीं ॥
 दिल धड़क उठता है खुद अपनी ही हर आहट पर ।
 अब कदम मंज़िले-जानां से^५ बहुत दूर नहीं ।
 हाय वो वक़्त कि जब बे-पिये मदहोशी थी ।
 हाय ये वक़्त कि अब पी के भी मखमूर नहीं ॥
 देख सकता हूँ जो आंखों से वो काफ़ी है 'मजाज़' ।
 अहले-इरफ़ां की^६ नवाज़िश मुझे मन्जूर नहीं ॥



१. नज़र रखने वालों (प्रेमियों) की खातिर २. विछोह की मारी हुई
 आंखें ३. छुपे हुए ४. निवेदन के दुःसाहस पर ५. प्रेमिका के निवास-स्थान
 से ६. महात्मा लोगों की ।

कुछ तुझको खबर है हम क्या क्या, ऐ शोरिशे-दीरां^१ भूल गये ।
 वो जुल्फ़े-परीशां^२ भूल गये, वो दीदा-ए-गिरयां^३ भूल गये ॥
 ऐ शौक़े-नज़ारा क्या कहिये, नज़रों में कोई सूरत ही नहीं ।
 ऐ जौक़े-तसव्वुर^४ क्या कीजे, हम सूरते-जानां भूल गये ॥
 अब गुल से नज़र मिलती ही नहीं, अब दिल की कली खिलती ही नहीं ।
 ऐ फ़सले - बहारां^५ रखसत हो, हम लुत्फ़े-बहारां भूल गये ॥
 सब का तो मुदावा^६ कर डाला, अपना ही मुदावा कर न सके ।
 सब के तो गरेबां सी डाले, अपना ही गरेबां भूल गये ॥
 ये अपनी वफ़ा का आलम^७ है, अब उनकी जफ़ा को क्या कहिये ।
 इक नश्तरे-ज़हर-आगी^८ रख कर नज़दीके-रगे-जां^९ भूल गये ॥

१. कालचक्र २. बिखरे केश ३. आंसू बहाने वाली आँखें ४. कल्पना करने की अभिरुचि ५. वसन्त ऋतु ६. इलाज ७. हालत ८. विष में बुझा हुआ एक नश्तर ९. गले के निकट ॥

फुटकर शेर

कुछ तुम्हारी निगाह काफ़िर थी ।
कुछ मुझे भी खराब होना था ॥

◇ ◇ ◇

ये मेरे इश्क की मजबूरियाँ मअज़-अल्ला^१ ।
तुम्हारा राज तुम्हीं से छुपा रहा हूँ मैं ॥

◇ ◇ ◇

हम अर्ज-वफ़ा भी कर न सके, कुछ कह न सके, कुछ सुन न सके ।
यां हमने ज़बां ही खोली थी, वां आंख भुकी शरमा भी गये ॥

◇ ◇ ◇

जुनूने-शौक^२ अब भी कम नहीं है ।
मगर वो आज भी बरहम नहीं है ॥
बहुत मुश्किल है दुनिया का संवरना ।
तेरी जुल्फों का पेचो-खम नहीं है ॥

◇ ◇ ◇

संभाला होश तो मरने लगे हसीनों पर ।
हमें तो मौत ही आई शबाब के बदले ॥

◇ ◇ ◇

इश्क का जौक्रे-नज़ारा^३ मुफ़्त में बदनाम है ।
हुस्न खुद बेताब है जलवे दिखाने के लिए ॥

◇ ◇ ◇

१. हे भगवान ! २. प्रेमोन्माद ३. देखने का शौक

दिल को महवे-गमे-दिलदार^१ किये बैठे हैं ।
 रिंद बनते हैं मगर जहर पिये बैठे हैं ॥
 चाहते हैं कि हर इक ज़र्रा शगूफा बन जाए ।
 और खुद दिल में इक खार^२ लिये बैठे हैं ॥

◇ ◇ ◇
 अपना गम औरों को दे औरों का गम लेने से क्या ?
 तेरी कश्ती पार लग जायेगी इस खेने से क्या ?
 बात तो जब है कि मर जा अर्सागाहे - रज़म^३ में ।
 इस पे दम देने से क्या, और उस पे दम देने से क्या ?

◇ ◇ ◇
 वाइजे - सादा - लोह^४ से कहदो छोड़े उकबा^५ की बातें ।
 इस दुनिया में रक्खा क्या है, उस दुनिया में क्या होगा ?
 तुम भी 'मजाज' इन्सान हो आखिर लाख छुपाओ इश्क अपना ।
 ये भेद मगर खुल जायेगा ये राज मगर अफ़शां^६ होगा ॥

◇ ◇ ◇
 तेरे माथे पे ये आंचल बहुत ही खूब है लेकिन ।
 तू इस आंचल से इक परचम^७ बना लेती तो अच्छा था ॥

◇ ◇ ◇
 देख शमशीर है ये, साज है ये, जाम है ये ।
 तू जो शमशीर उठा ले तो बड़ा काम है ये ॥

१. प्रेमिका के गम में लीन २. कांटा ३. युद्धक्षेत्र (कार्य-क्षेत्र) ४. भोले
 उपदेशक ५. परलोक ६. प्रकट ७. झंडा



फैज़ अहमद 'फैज़'

मुक़ाम 'फैज़' कोई राह में जँचा ही नहीं
जो कू-ए-यार से निकले तो सू-ए-दार चले

मारिगल

‘शेर लिखना जुर्म न सही लेकिन बिना सबब शेर लिखते रहना कुछ ऐसी अकलमंदी भी नहीं है।’ फ़ैज़ अहमद ‘फ़ैज़’ के पहले कविता-संग्रह ‘नक्शे-फ़र्यादी’ में उसके इस कथन को पढ़कर मुझे ‘ग़ालिब’ का वह वाक्य याद आता है जिसमें उर्दू के उस महान शायर ने कहा था कि “जब से मेरे सीने का नासूर बन्द हो गया है, मैंने शेर कहना छोड़ दिया है।”

‘सीने का नासूर’ चाहे प्रेम की भावना हो चाहे स्वतन्त्रता, देश और जन-मित्रता की, शेर (कविता) ही के लिए नहीं, समस्त ललित कलाओं के लिए अनिवार्य है। अध्ययन, परिश्रम तथा तपस्या से हमें बात कहने का ढंग तो आ सकता है लेकिन अपनी बात को सार्थक बनाने और दूसरे के दिल में उतारने के लिए हमें स्वयं अपने दिल में उतरना पड़ता है। संसार भर के साहित्य में हमें ऐसे कई उदाहरण मिल जाएंगे कि किसी कवि या लेखक ने कुछ-एक बहुत अच्छी कवितायें, एक बहुत अच्छा उपन्यास और दस-पन्द्रह बहुत अच्छी कहानियाँ लिखने के बाद लिखने से तौबा कर ली और फिर समालोचकों और पाठकों के अनुरोध पर जब उसने नये सिरे से अपना कलम उठाया तो वह बात पैदा न हो सकी जो उसके ‘कच्चेपन’ के ज़माने में आप ही आप पैदा हो गई थी। कदाचित् इसी बात के वशीभूत ‘नक्शे-फ़र्यादी’ की भूमिका में ‘फ़ैज़’ ने अपनी दो-चार कविताओं को ‘क्राबिले-बर्दाशत’ कहते हुए लिखा था कि “आज से कुछ वर्ष पहले एक विशेष भावना के मातहत शेर आप ही आप दिल से निकलते थे लेकिन अब विषयों की तलाश करनी पड़ती है... हम में से अक्सर

कवियों की कविता किसी आत्मगत या परगत प्रेरणा पर आश्रित होती है और यदि उन प्रेरणाओं के वेग में कमी आजाय या उनके प्रकटीकरण के लिए कोई सहल रास्ता सुझाई न दे तो या तो भावनाओं की तोड़-फोड़ करनी पड़ती है या कहने के ढंग की... ऐसी हालत पैदा होने से पहले कवि का कर्तव्य है कि जो कुछ उसे कहना हो कह ले, महफ़िल का शुक्रिया अदा करे और आज्ञा चाहे।''

‘फ़ैज़’ की आत्मगत तथा परगत प्रेरणाओं में सब से उग्र प्रेरणा ‘सौन्दर्य’ है (थी), बल्कि उसने तो यहाँ तक कह दिया था कि :

लेकिन उस शोख के आहिस्ता से खुलते हुए होंट ।

हाय उस जिस्म के कम्बख्त दिलावेज^१ खतूत^२ ॥

आप ही कहिये कहीं ऐसे भी अफ़सू^३ होंगे ?

अपना मौजू-ए-सुखन^४ इनके सिवा और नहीं ।

तबअए-नायर^५ का वतन इनके सिवा और नहीं ॥

लेकिन इस वन्द के शुरू के ‘लेकिन’ से पहले उसने जिन चीजों को अपना ‘मौजू-ए-सुखन’ बनाना पसंद नहीं किया था और :

इन दमकते हुए शहरों की फ़रावां^६ मखलूक^७ ।

क्यों फ़क़त मरने की हसरत में जिया करती है ?

ये हसीं खेत फटा पड़ता है जोबन जिनका ।

किस लिए इनमें फ़क़त भूख उगा करती है ?

ऐसे प्रश्न उत्तर दिये बिना छोड़ दिये थे वही ‘साधारण और महत्वहीन’ प्रश्न बाद में उसकी आत्मगत और परगत प्रेरणाओं का स्रोत बने और इन्हीं प्रश्नों ने उसे महफ़िल का शुक्रिया अदा करके उठ आने से रोका और उर्दू शायरी को एक बड़ा शायर प्रदान किया ।

फ़ैज़ अहमद ‘फ़ैज़’ उर्दू के उन गिनती के बड़े शायरों में से हैं जिन्होंने काव्य-कला में नये प्रयोग तो किये लेकिन उनकी नींव पुराने प्रयोगों पर रखी, और इस अटल सच्चाई को कभी विस्मृत नहीं किया कि हर नई चीज़ पुरानी कोख से जन्म लेती है। यही कारण है कि उसकी शायरी का अध्ययन करते हुए हमें किसी प्रकार की अपरिचितता का अनुभव नहीं होता। अस्पष्ट और मस्तिष्क की पहुँच से परे की उपमाओं से वह हमें उलझन में नहीं डालता बल्कि

अपने कोमल तथा मृदु स्वर में हम से सरगोशियाँ करता है और उसकी सरगोशी इतनी अर्थपूर्ण होती है कि कुछ-एक शब्द कान में पड़ते ही हम उसकी पूरी बात समझ जाते हैं। ज़रा 'नक्शे-फ़र्यादी' का पहला पन्ना उलटिये :

रात यूँ दिल में तेरी खोई हुई याद आई।
जैसे वीराने में चुपके से, बहार आजाए ॥
जैसे सहराओं में हौले से चले बादे-नसीम^१।
जैसे बीमार को बेवजह करार^२ आ जाए ॥

प्रेमिका की याद आना कोई नया विषय नहीं है लेकिन इन सुन्दर उपमाओं और अपनी भावाभिव्यक्ति द्वारा उसने इसे विल्कुल नया और अनूठा बना दिया है। इस एक 'क़तए' ही की नहीं, यह उसकी सारी रचनाओं की विशेषता है कि वे नई भी हैं और पुरानी भी। आधुनिक काल की उत्पत्ति हैं लेकिन अतीत की उपज हैं। नये विषय पुराने नख-शिख में और पुराने विषय नई शैली में प्रस्तुत करने की जो क्षमता 'फ़ैज़' को प्राप्त है आधुनिक काल के बहुत कम उर्दू शायर उस तक पहुँचते हैं। ज़रा 'ग़ालिब' का यह शेर देखिये :

दिया है दिल अगर उसको बशर^३ है क्या कहिये ?
हुआ रक़ीब तो हो, नामाबर है क्या कहिये ?

और अब इसी विषय को 'फ़ैज़' की कविता 'रक़ीब' के दो शेरों में देखिए :

तू ने देखी है वो पेशानी, वो रुख़सार, वो होंट,
ज़िन्दगी जिनके तसव्वुर में मिटा दी हमने।
हमने इस इश्क़ में क्या खोया है क्या पाया है ?
जुज़^४ तेरे और को समझाऊँ तो समझा भी न सकूँ।

महबूब, आशिक़, रक़ीब तक ही सीमित नहीं, 'फ़ैज़' ने हर समय नई और पुरानी बात और नई और पुरानी शैली का बड़ा सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। 'ग़ालिब' का एक और शेर देखिये :

लिखते रहे जुन्न की हिकायाते-ख़ूँचकां^५।
हरचन्द इसमें हाथ हमारे क़लम हुए^६ ॥

और 'फ़ैज़' का शेर है :

१. प्रभात समीर २. चैन ३. मनुष्य ४. सिवा ५. खून-भरी गाथा
६. कट गये

हम परवरिशे-लौहो-क़लम^१ करते रहेंगे ।

जो दिल पे गुज़रती है रक़म करते रहेंगे^२ ॥

इन उदाहरणों से मेरा अभिप्राय 'फ़ैज़' और 'ग़ालिब' की शायरी के समान मूल्यों को दिखाना नहीं है और मेरा मन्तव्य यह भी नहीं है कि हमें समस्त प्रचीन परम्पराओं को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना चाहिये । कुछ परम्पराएँ, चाहे वे साहित्य की हों, संस्कृति की या अन्य सामाजिक बातों की, अपना ऐतिहासिक कर्तव्य पूरा करने के बाद अपनी मौत आप मर जाती हैं । उन्हें नये सिरे से जिलाने का मतलब गड़े मुर्दे उखाड़ना और ऐतिहासिक विकास से अपनी अनभिज्ञता का प्रमाण देना है । लेकिन इससे भी खतरनाक क्रम यह है कि नयेपन की दौड़ में पुरानी चीज़ों को केवल इसलिये घृणित समझ लिया जाए कि वे पुरानी हैं । धरती, आकाश, चाँद-सितारे, सूरज, समुद्र, पहाड़ सब पुराने हैं लेकिन ये सब हमें पसन्द हैं और इसलिये पसन्द हैं क्योंकि प्रतिक्षण हम इन्हें बदलते रहते हैं अर्थात् इनके बारे में हमारा दृष्टि-कोण बदलता रहता है । हम इनके बारे में नई बातें मालूम कर लेते हैं और इस प्रकार ये समस्त चीज़ें सदैव नई बनी रहती हैं ।

यह एक बड़ी विचित्र लेकिन प्रशंसनीय वास्तविकता है कि प्राचीन और आधुनिक उर्दू शायरी की महफ़िल में खपकर भी 'फ़ैज़' अपना एक अलग व्यक्तित्व चरित्र (Individuality) रखता है । उसने तुक, छन्द, पिंगल आदि में कोई उल्लेखनीय प्रयोग नहीं किया और न कभी अपना व्यक्तित्व चरित्र प्रकट करने के लिये स्वर्गीय 'मीरा जी' (उर्दू के प्रयोगवादी शायर) की तरह यह कहा है कि "बहुसंख्यक शायरों की नज़में अलग हैं और मेरी नज़में अलग; और चूँकि दुनिया की हर बात हर किसी के लिये नहीं होती, इसलिये मेरी नज़में भी सिर्फ़ उनके लिये हैं जो उन्हें समझने के योग्य हों ।" (यह व्यक्तिगत-चरित्र शायर का व्यक्तिगत-चरित्र है उसकी शायरी का नहीं ।) 'फ़ैज़' की शायरी के व्यक्तिगत चरित्र का भेद निहित है उसकी शैली के लोच और सरसता में, कोमल, मृदुल, लेकिन सौ-सौ जादू जगाने वाले शब्दों के चुनाव में; 'बेख्वाब किवाड़', 'तरसी हुई निगाहें' और 'आबाज़ में सोई हुई शीरीनी' ऐसे वर्णनों और विशेषणों में, और इन समस्त गुणों के साथ गहरी से गहरी बात कहने के सुन्दर सलीक़े में ।

अपनी शायरी की तरह अपने जीवन में भी किसी ने उसे ऊँचा बोलते

नहीं सुना । वह कुछ इस प्रकार बातें करता है जैसे उसके होंटों से अगर एक ज़रा ऊँची आवाज़ निकल गई तो न जाने कितने मोती चकनाचूर हो जायेंगे ।

वह सेना में कर्नल रहा जहाँ किसी कोमल-स्वभाव व्यक्ति की गुँजाइश नहीं होती । उसने कालेज में प्रोफ़ेसरी की जहाँ लड़के प्रोफ़ेसर तो प्रोफ़ेसर शैतान तक को अपना स्वभाव बदलने पर विवश कर दें । उसने रेडियो की नौकरी की जहाँ अपने मातहतों को न डाँटना अफ़सर की नालायक़ी की दलील समझी जाती है । उसने जर्नलिज्म ऐसा जान-जोख़म पेशा अपनाया और काफ़ी दिनों तक 'पाकिस्तान टाइम्ज़' का सम्पादक रहा और फिर जब पाकिस्तान सरकार ने उस पर हिंसा द्वारा सरकार का तख़्ता उलटने का आरोप लगाकर उसे जेल की सलाखों के पीछे बन्द कर दिया तो उस समय भी उसके होंटों से कुछ इस प्रकार के बोल निकले :

फ़िक़्रे-दिलदारिये-ग़ुलज़ार^१ क़रूँ या न क़रूँ ?

ज़िक़्रे-मुग़ानि-गरिफ़तार^२ क़रूँ या न क़रूँ ?

क्रिस्ता-ए-साज़िशे-अशियार^३ क़हूँ या न क़हूँ ?

शिक़वा-ए-यारे-तरहदार^४ क़रूँ या न क़रूँ ?

जाने क्या वज़्र^५ है अब रस्मे-वफ़ा की ऐ दिल !

वज़्र-ए-देरीना^६ पे इसरार क़रूँ या न क़रूँ ?

'फ़ैज़' के स्वर की यह कोमलता, और गम्भीरता उसके क्लासिकल साहित्य के गहन अध्ययन और मौलिक रूप से उसके रोमांसवादी शायर होने पर आधारित है । लेकिन उसका रोमांसवाद चूँकि भौतिक संसार का रोमांसवाद है (बिल्कुल शुरू की कुछ ग़ज़लों और नज़मों को छोड़कर) और शायर का कर्तव्य उसके निकट यह है कि वह जीवन से अनुभव प्राप्त करे और उस पर अपनी छाप लगा कर फिर उसे जीवन को वापिस कर दे, अतः उसने बहुत शीघ्र सुख़ होंटों पर मुस्कराहटों की ज्योति, मरमरी हाथों की कपकपाहटों, मखमली बांहों और दमकते हुए कपोलों के सुनहले पदों के उस पार वास्तविक सत्य की झलक देख ली । आशाओं के क्रतलघर, भूख उगाने वाले खेत, खाक में लियड़े हुए और खून में नहाये हुए बदन और दुर्बलों के कौरों पर झपटती हुई चीलें देख लीं और

१. देश-प्रेम की चिन्ता २. बन्दी पक्षियों की चर्चा ३. शैरों की साज़िश का क्रिस्ता ४. बाँके, रंगीले यार की शिकायत ५. रंग-ढंग (तरीक़ा) ६. पुराने ढंग

अपनी प्रेमिका (रोमांसवाद) से कहने लगा :

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे ?

और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा ॥

राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा ।

मुझ से पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग ॥

और फिर रोमांस से बिल्कुल खाली उसने राजनैतिक कवितायें भी लिखीं और देश के प्रेम को ठीक उसी रूप में व्यक्त किया कि जो प्रेम उसे अपनी प्रेमिका से था । उर्दू के एक समालोचक 'मुमताज हुसैन' के कथनानुसार उसकी शायरी में यदि एक परम्परा 'क़ैस'^१ की है तो दूसरी 'मनसूर'^२ की ।

'फ़ैज' ने इन दोनों परम्पराओं को अपनी शायरी में कुछ इस प्रकार समो लिया है कि स्वयं उसकी शायरी एक नई परम्परा बन गई है । वह जब भी महफ़िल में आया एक छोटी-सी पुस्तक, एक कतआ, गज़ल के दो-चार शेर, कुछ योंही-सा काव्य-अभ्यास और कुछ विवशताओं की बातें लेकर आया, लेकिन जब भी आया खूब आया । दोस्त-दुश्मन ने सिर हिलाया । यार-दोस्तों में चर्चा हुई । कुछ लोगों ने उसकी पुस्तक यह कहकर पटक दी कि इसमें रक्खा ही क्या है, लेकिन फिर वही उसे गुनगुनाने भी लगे । यह कितनी आश्चर्यजनक वास्तविकता है कि केवल कुछ सौ शेर और पचास-एक नज़्मों का रचयिता होने पर भी 'फ़ैज' की शायरी एक बाक्रायदा 'स्कूल' (School of Poetry) बन चुकी है और नवीनतम पीढ़ी का कोई उर्दू शायर अपनी छाती पर हाथ रखकर इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि किसी-न-किसी रूप में वह 'फ़ैज' से प्रभावित नहीं हुआ । कहरा और निष्कपटता, प्रेम और राजनीति, रस और चिंतन का जितना सुन्दर समावेश फ़ैज अहमद 'फ़ैज' के यहाँ मिलता है और उसने जिस कौशलता से पुरानी परम्पराओं पर नई परम्पराओं का महल खड़ा किया है निःसंदेह वह 'फ़ैज' ही का हिस्सा है और उर्दू की आधुनिक शायरी उसकी इस देन पर जितना गर्व करे कम है ।

'फ़ैज' १९११ में स्यालकोट में पैदा हुआ और बी० ए० तक वहीं शिक्षा पाई । फिर गवर्नमेंट कालेज लाहौर से अंग्रेज़ी और अरबी में एम० ए० किया ।

१. लैला का आशिक (मजनूँ) २. एक बली, जिसने खुद को खुदा कहना शुरू कर दिया था ।

१९३६ में एम० ए० ओ० कालेज में लैक्चरर हो गया । १९४२ से ४७ तक भारत के सूचना विभाग में रहा और कर्नल के पद तक पहुँचा । पाकिस्तान बनने के बाद उसने अपना सैनिक-जीवन त्याग दिया और 'पाकिस्तान टाइम्स' का सम्पादक हो गया । उस काल में साहित्यिक कामों के अतिरिक्त मजदूर आन्दोलन से भी उसका गहरा सम्बंध रहा । १९५१ में 'रावलपिंडी साज़िश केस' में गिरफ़्तार होकर लगभग पांच वर्ष के बाद रिहा हुआ और फिर से 'पाकिस्तान टाइम्स' का सम्पादन कर रहा है । शायरी के अलावा उसने आलोचनात्मक लेख भी लिखे हैं ।

X मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

मैंने समझा था कि तू है तो दरखा^१ है हयात,
तेरा गम है तो गमे-दहर का^२ भगड़ा क्या है ?
तेरी सूरत से है आलम^३ में बहारों को सबात^४ ,
तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रक्खा क्या है ?

तू जो मिल जाये तो तकदीर नगू^५ हो जाये ।

यूँ न था मैंने फ़क़त^६ चाहा था यूँ हो जाये,
और भी दुख हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा,
अनगिनत सदियों के तारीक बहीमाना तलिस्म^७ ,
रेशमो - अतलसो - कमरूबाब में बुनवाये हुए,
जा-ब-जा बिकते हुए कूचा-ओ-बाज़ार में जिस्म,
खाक में लिथड़े हुए, खून में नहलाये हुए,
जिस्म निकले हुए अमराज के^८ तन्नूरों से,
पीप बहती हुई गलते हुए नासूरों से,

लौट जाती है उधर को भी नज़र क्या कीजे ?

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे ?
और भी दुख हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा,

मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

१. दीप्तिमान २. संसार के गम का ३. संसार ४. स्थायित्व
५. बदल जाये ६. केवल ७. अंधकारमय जादू ८. रोगों के

तनहाई

फिर कोई आया दिले-ज्वार ! नहीं कोई नहीं,
 राहरी^१ होगा, कहीं और चला जायेगा,
 टल चुकी रात, बिखरने लगा तारों का गुबार,
 लड़खड़ाने लगे ऐवानों में^२ ख्वाबीदा चिराग^३ ,
 सो गई रास्ता तक-तक के हर इक राहगुजार,
 अजनबी खाक ने धुँदला दिये कदमों के सुराग,
 गुल करो शम्मएँ, बढ़ा दो मै-ओ-मीना-ओ-अयाग^४,
 अपने बेख्वाब किवाड़ों को मुक़फ़ल कर लो^५,
 अब यहां कोई नहीं, कोई नहीं आयेगा ।



१. पथिक २. भवनों में ३. सोये हुए चिराग ४. शराब, सुराही,
 प्याला ५. ताले लगा लो

चन्द रोज़ और मेरी जान !

चन्द रोज़ और मेरी जान ! फ़क़त चन्द ही रोज़ !
 जुल्म की छांव में दम लेने पे मजबूर हैं हम,
 और कुछ देर सितम सह लें, तड़प लें, रो लें,
 अपने अजदाद^१ की मोरास है माजूर^२ हैं हम,
 जिस्म पर क़ैद है, जज़्बात पे जंजीरें हैं,
 फ़िक्र^३ महबूस^४ है, गुफ़्तार^५ पे ताज़ीरें^६ हैं,
 अपनी हिम्मत है कि हम फिर भी जिये जाते हैं,
 जिन्दगी क्या किसी मुफ़लिस की क़बा^७ है जिसमें,
 हर घड़ी दर्द के पेवंद लगे जाते हैं,
 लेकिन इस जुल्म की मीयाद के दिन थोड़े हैं,
 इक ज़रा सब्र कि फ़र्याद के दिन थोड़े हैं,
 अर्सा-ए-दहर की^८ भुलसी हुई वीरानी में,
 हम को रहना है, मगर यूँही तो नहीं रहना है,
 अजनबी हाथों का बेनाम गिरांवार^९ सितम^{१०},
 आज सहना है हमेशा तो नहीं सहना है,
 ये तेरे हुस्न से लिपटी हुई आलाम की^{११} गर्द,
 अपनी दो रोज़ा जवानी की शविसतों का शुमार,
 चाँदनी रातों का बेकार दहकता हुआ दर्द,
 दिल की बेसूद तड़प, जिस्म की मायूस पुकार,
 चन्द रोज़ और मेरी जान ! फ़क़त चन्द ही रोज़ !

१. पितृगण २. विवश ३. सोच ४. बन्दी ५. बोलने पर
 ६. दण्ड ७. चुगा ८. संसार-क्षेत्र की ९. बोझ (असह्य)
 १०. अत्याचार ११. दुखों की

मौजू-ए-सुखन*

गुल हुई जाती है अफ़सुर्दा, सुलगती हुई शाम,
धुल के निकलेगी अभी चश्मा-ए-महताब^१ से रात,
और—मुशताक^२ निगाहों की सुनी जायेगी,
और—उन हाथों से मस होंगे ये तरसे हुए हात ।

उन का आंचल है, कि रूख़सार, कि पैराहन^३ है ?
कुछ तो है जिस से हुई जाती है चिलमन रंगीं,
जाने उस जुल्फ़ की मौहूम^४ घनी छांओं में,
टमटमाता है वो आवेज़ा अभी तक कि नहीं ?

आज फिर हुस्ने-दिलआरा की वही धज होगी,
वही ख्वाबीदा^५ सी आंखें, वही काजल की लकीर,
रंगे-रूख़सार पे हल्का-सा वो गाज़े का गुंबार,
संदली हाथ पे धुंदली-सी हिना^६ की तहरीर^७ ।

अपने अफ़कार^८ की अशआर की दुनिया है यही,
जाने-मज़मू^९ है यही, शाहिदे-मानी^{१०} है यही !

आज तक सुखों-सियाह सदियों के साये के तले,
आदमो-हव्वा की औलाद पे क्या गुज़री है ?
मौत और जोस्त^{११} की रोज़ाना सफ़-आराई^{१२} में,
हम पे क्या गुज़रेगी, अजदाद^{१३} पे क्या गुज़री है ?

* काव्य का विषय

१. चाँद का चश्मा २. उत्सुक ३. लिबास ४. कल्पित ५. निद्रित
६. महंदी ७. लिखावट, चित्रण ८. चिन्तन ९. विषय की जान
१०. अर्थों की साक्षी ११. जीवन १२. मुक्ताबले १३. पितृगण

इन दमकते हुए शहरों की फ़रावां^१ मखलूक^२ ,
 क्यों फ़क़त मरने की हसरत में जिया करती है ?
 ये हसीं खेत, फटा पड़ता है जोबन जिन का,
 किस लिए इन में फ़क़त भूख उगा करती है ?
 ये हर इक सिम्त^३ पुर-असरार^४ कड़ी दीवारें,
 जल बुझे जिन में हज़ारों की जवानी के चिराग़,
 ये हर इक ग़ाम^५ पे उन ख़्वाबों की मक़तलगाहें^६ ,
 जिन के परती^७ से चिराग़ां^८ हैं हज़ारों के दिमाग़,
 ये भी हैं, ऐसे कई और भी मज़मू^९ होंगे,
 लेकिन उस शोख़ के आहिस्ता से खुलते हुए होंट,
 हाए उस जिस्म के कमबख़्त दिलावेज़^{१०} ख़तूत^{११} ,
 आप ही कहिये कहीं ऐसे भी अफ़सू^{१२} होंगे ?
 अपना मौजू-ए-सुखन इन के सिवा और नहीं,
 तबज़-ए-शायर का^{१३} बतन इनके सिवा और नहीं !

१. असंख्य २. जनता ३. और ४. भेदपूर्ण ५. कदम ६. कत्ल-
 घर ७. प्रतिबिम्ब ८. प्रकाशमान ९. आकर्षक १०. रेखायें
 ११. जादू १२. कवि की प्रकृति का

राजलें

दोनों जहान तेरी मुहब्बत में हार के ।
 वो जा रहा है कोई शबे-गम गुज़ार के ॥
 वीरां है मैकदा, खुमो-सागर उदास हैं ।
 तुम क्या गये कि रूठ गये दिन बहार के ॥
 इक फ़ुसर्ते-गुनाह^१ मिली वो भी चार दिन ।
 देखें हैं हम ने हीसले परवरदिगार^२ के ॥
 दुनिया ने तेरी याद से बेगाना कर दिया ।
 तुझ से भी दिलफ़रेब हैं ग़म रोज़गार के ॥
 भूले से मुस्करा तो दिये थे वो आज 'फ़ैज़' ।
 मत पूछ वलवले दिले-नाकर्दाकार^३ के ॥

◇

◇

◇

रंग पैराहन^४ का, खुशबू जुल्फ़ लहराने का नाम ।
 मौसमे-गुल^५ है, तुम्हारे बाम पर आने का नाम ॥
 दोस्तो, उस चश्मो-लब की कुछ कहो जिसके बग़ैर ।
 गुलिस्तां की बात रंगीं है, न मैख़ाने का नाम ॥

१. पाप करने का अवकाश २. भगवान् ३. जिस दिल ने गुनाह नहीं किया
 ४. लिबास ५. वसन्त ऋतु

फिर नज़र में फूल महके, दिल में फिर शम्माएं जलीं ।
 फिर तसव्वुर^१ ने लिया उस बज़म^२ में जाने का नाम ॥
 मोहतसिब^३ की खैर, ऊंचा है उसी के फ़ैज़^४ से ।
 रिद का, साक़ी का, मै का, खुम का पैमाने का नाम ॥
 हम से कहते हैं चमन वाले, ग़रीबाने-चमन^५ ।
 तुम कोई अच्छा-सा रख लो अपने वीराने का नाम ॥
 'फ़ैज़' उनको है तक्राज़ा-ए-वफ़ा^६ हम से जिन्हें ।
 आशना^७ के नाम से प्यारा है, बेगाने का नाम ॥

१. कल्पना २. महफ़िल ३. कोतवाल ४. कृपा (उदारता)
 ५. शराब का मटका ६. चमन (देश) से निकाले हुए ७. प्रेम निभाने की
 माँग ८. परिचित



नून० भीम० 'राशिद'

ऐ मेरी हम-रक्तस मुझको थाम ले
ज़िन्दगी से भागकर आया हूँ मैं

परिचय

कितनी विचित्र बात है कि 'राशिद' की शायरी में एशिया और एशियाई देशों का काफ़ी से अधिक वर्णन होने पर भी उसकी शायरी एशियाई नहीं, यूरोपियन है। और शायद इसीलिए १९४१ में उसके कविता-संग्रह 'मावरा' की भूमिका लिखते हुए कृष्णचन्द्र ने कहा था कि 'राशिद' ने अपनी शायरी का प्रारम्भ वहां से किया है जहाँ बहुत से शायर अपनी शायरी समाप्त कर देते हैं।

आज चौदह-पन्द्रह वर्ष बाद कृष्णचन्द्र के इस वाक्य को दोहराने की आवश्यकता बाक़ी नहीं रह जाती क्योंकि नई पीढ़ी के बहुत से उर्दू शायर 'राशिद' की डगर पर चलते-चलते कहीं से कहीं पहुँच चुके हैं, लेकिन जहाँ तक मुक्तछन्द (Free verse) टैक्नीक का सम्बन्ध है 'मावरा' (दूसरा संस्करण) की कुल ४२ नज़मों में से केवल २६ निर्बंध नज़मों द्वारा (बल्कि मेरी तुच्छ राय में तो केवल 'दरीचे के करीब', 'इन्तक़ाम', 'बेकरां रात के सप्ताटे में' और 'पहली किरन' ऐसी नज़मों द्वारा) वह सदैव उर्दू की 'प्रयोगवादी' शायरी का प्रवर्तक तथा अगुवा बना रहेगा।

'राशिद' से पहले 'इस्माइल' मेरठी और तसद्दुक हुसैन 'ख़ालिद' ने निर्बंध तथा अतुकान्त छन्द के लिये भूमि समतल करने की कोशिशें की थीं, लेकिन उनकी कोशिशें अधूरी और असफल रहीं और यद्यपि उर्दू की नाज़ुक-मिज़ाज ग़ज़ल को 'हाली' और 'अकबर' इलाहाबादी ने काफ़ी सस्तजान बना दिया था और 'इक़बाल' और 'जोश' ने तो ग़ज़ल पर नज़म को प्रधानता देकर उर्दू

शायरी में एक नई महानता और विशालता उत्पन्न कर दी थी लेकिन पिंगल तथा शैली में चौंका देने वाले प्रयोग का सेहरा 'राशिद' ही के सिर रहता है।

उर्दू शायरी में इस अपरिचित तथा बाहरी रूप को परिचित कराने से 'राशिद' का ध्येय उसके अपने कथनानुसार केवल 'नवीनता' नहीं था बल्कि :

“यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि न केवल एक जाति की मानसिक प्रवृत्तियाँ दूसरी जाति की मानसिक प्रवृत्तियों से भिन्न होती हैं बल्कि एक ही जाति विभिन्न कालों में विभिन्न प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ प्रस्तुत करती है। अतः एक काल में जो शैली या काव्यधारा या जीवन-दर्शन पसन्द किया जाता रहा हो, आवश्यक नहीं कि किसी अन्य काल में भी वह इतनी ही सर्वप्रियता प्राप्त कर सके। समय के ज्वारभाटे से जातियों के सोच-विचार, रूप-उद्भावना तथा नैतिकता के नियमों में आप ही आप अन्तर पड़ता रहा है। यह परिवर्तन जातियों की साहित्यिक प्रवृत्तियों पर भी उसी प्रकार प्रभाव डालता है जिस प्रकार उन की दिनचर्या पर। इन परिस्थितियों में कभी-कभी जाति अपने साहित्यकारों से विभिन्न प्रकार की कृतियों की आशा करने लगती है और जाति की इस मौन-माँग से साहित्य में परिवर्तन होने लगते हैं। लेकिन जब कोई जाति अपनी मानसिक हीनता के कारण यह माँग करने का साहस नहीं रखती तो कोई साहित्य-रत्न स्वयं ही प्रकट होकर इस गतिरोध को छिन्न-भिन्न कर देता है।

उर्दू शायरी का यह 'साहित्य-रत्न' जिसने स्वयं ही प्रकट होकर इस 'गतिरोध' को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया और सफल रहा, पहली अगस्त १९१० को पंजाब में पैदा हुआ और जब उसने होश संभाला तो प्रथम महायुद्ध के बाद भारत के सम्मुख नाना प्रकार की परिस्थितियाँ थीं। शताब्दियों की निद्रा तथा नैराश्य के बाद पराधीनता तथा अन्याय के विरुद्ध घोर घृणा जाग उठी थी और धर्म, नैतिकता तथा ग्रंथ-विश्वासों की गिरहें खुल रही थीं। अतएव मध्यवर्ग के निराशाग्रस्त युवकों की भाँति पंजाब के घुटे-घुटे वातावरण और रूढ़ि-परम्पराओं के पाले हुए, सामाजिक बंधनों में बेतरह जकड़े हुए, और काम के भूत से डराये तथा मनोदमन की शिक्षा पाये हुए युवक तुर मोहम्मद 'राशिद' को इन परिवर्तनशील परिस्थितियों में जिन्दगी 'एक जहर भरा जाम' नज़र आने लगी और जिन्दगी की हमाहमी से भागकर उसने काम की ठंडी छाया में सो जाना चाहा। विदेशी शासन-कर्ताओं के प्रति मन-मस्तिष्क में घृणा

का भाव उत्पन्न हुआ तो उसे कोई स्वस्थ रूप देने की बजाय उसने फिरंगी औरत के शरीर से खेलकर उसे फिरंगी जाति से 'इंतक़ाम' लेने का नाम दिया। औरतों के शरीरों से बार-बार लिपटने के बावजूद जब उसकी तृप्ति न हुई और अनगिनत चुम्बनों की मिठास भी उसे सन्तुष्ट न कर सकी तो उसे संसार की प्रत्येक वस्तु में कामवासना का पहलू नज़र आने लगा, यहाँ तक कि अपनी नज़म 'अज़नबी औरत' की नायिका भी उसे अपनी ही तरह कामग्रस्त नज़र आई, जो रोमांस की तलाश में हजारों मील दूर एशिया में आती है। और इस प्रकार उसकी ये मानसिक उलझनें इतनी कटु हो गईं कि वह 'खुदकशी' पर उतर आया।

नैराश्य, उद्वेग तथा अवसन्नता की ये घातक प्रवृत्तियाँ टी० एस० इलियट ऐसे पश्चिम के पतनशील कवियों की विशेषतायें हैं और जिस प्रकार काव्य मूल्यों से हटी होने के कारण इनके वर्णन के लिए इलियट को फ्रांस से निबन्ध तथा अतुंकांत छन्द लेने पड़े थे, उसी प्रकार इस छन्द को उपयुक्त देख 'राशिद' ने इसे अंग्रेज़ी से उर्दू में खपाया। इसमें संदेह नहीं है कि किसी विशेष छंद के अनुसार शेर गढ़ लेना काफ़ी आसान काम है लेकिन विचारों की गति के अनुसार छंद का निर्माण करना, विचारों के उतार-चढ़ाव के अनुसार पंक्तियों की लम्बाई-चौड़ाई निश्चित करना, ठीक स्थान पर तुक बिठाना और इन सब के सुन्दर समन्वय से एक सच्चा छंदबद्ध प्रभाव उत्पन्न करना इतना कठिन है कि यह हर किसी के बस की बात नहीं। इसके लिए 'राशिद' ऐसे कलाकार ही की आवश्यकता होती है जो प्रत्येक पंक्ति बल्कि प्रत्येक शब्द को नगीने की तरह जड़ सके।

लेकिन मनःस्थिति को उपयुक्त ढंग से प्रस्तुत करने के लिए पुरानी शैली के खड़खड़ाते राग को किसी नई लय में बदल देने से ही कोई शायर महान् शायर नहीं बन सकता। महान् शायरी रूप तथा विषय-वस्तु के संतुलन के साथ-साथ रूप की सुन्दरता तथा विषय-वस्तु के स्वास्थ्य की पाबंद होती है। 'राशिद' के यहाँ एक चीज़ कमाल की सीमा पर है लेकिन दूसरी नहीं के बराबर।

आल-इंडिया रेडियो दिल्ली के बाद आजकल 'राशिद' पाकिस्तान रेडियो पेशावर में है और एक कविता-संग्रह देने के बाद लगभग सो गया है।

इंतक़ाम

उसका चेहरा, उसके खट्खाल^१ याद आते नहीं,
इक शबिस्ताँ^२ याद है,
इक बरहना^३ जिस्म आतिशदां के पास,
फ़र्श पर क़ालीन, क़ालीनों पे सेज,
घात और पत्थर के बुत,
गोशा-ए-दीवार में^४ हंसते हुए,
और आतिशदां में अंगारों का शोर,
उन बुतों की बेहिसी पर ख़श्मगीं^५ !
उजली-उजली ऊंची दीवारों पे अक्स^६ ,
उन फ़िरंगी हाकिमों की यादगार
जिनकी तलवारों ने रक्खा था यहां,
संगे-बुनियादे-फ़िरंग^७ ।

उसका चेहरा उसके खट्खाल याद आते नहीं,
एक बरहना जिस्म अब तक याद है,
अजनबी औरत का जिस्म,
मेरे 'होंटों' ने लिया था रात भर,
जिससे अरबाबे-वतन की^८ बेबसी का इंतक़ाम,
वो बरहना जिस्म अब तक याद है ।

१. नैन-नक्श २. शयनागार ३. नग्न ४. दीवार के कोने में ५. क्रोधित
६. प्रतिबिम्ब ७. अंग्रेज़ी राज्य की नींव-शिला ८. देशवासियों की

रक्स

ऐ मेरी हम-रक्स^१ मुझको थाम ले !
 ज़िन्दगी से भाग कर आया हूँ मैं ।
 डर से लज्जा^२ हूँ कहीं ऐसा न हो,
 रक्सगह^३ के चोर-दरवाजे से आकर ज़िन्दगी,
 ढूँड ले मुझको, निशां पा ले मेरा,
 और जुर्म-ऐश करते देख ले !

ऐ मेरी हम-रक्स मुझको थाम ले,
 रक्स की ये गर्दियों,
 एक मुबहम^४ आसिया^५ के दौर में,
 कौसी सरगर्मी से राम को रौंदता जाता हूँ मैं ।
 जी में कहता हूँ कि हां,
 रक्सगह में ज़िन्दगी के भांकने से पेशतर^६ ,
 कुलफ़तों का^७ संगरेजा^८ एक भी रहने न पाये ।

ऐ मेरी हम-रक्स मुझको थाम ले !
 ज़िन्दगी मेरे लिए,
 एक खूनी भेड़िये से कम नहीं,
 ऐ हसीं-ओ-अजनबी औरत ! उसी के डर से मैं,
 हो रहा हूँ लम्हा-लम्हा और भी तेरे करीब,
 जानता हूँ तू मेरी जां भी नहीं,
 तुझ से मिलने का फिर इमकां^९ भी नहीं,

१. नृत्य की साथी २. कम्पित ३. नाचघर ४. अस्पष्ट ५. चक्की
 ६. पूर्व ७. दुख-पीड़ाओं का ८. रोड़ा ९. संभावना

तू मेरी उन आरजूओं की मगर तमसील^१ है,
जो रहीं मुझसे गुरेजां^२ आज तक ।

ऐ मेरी हम-रक्स मुझको थाम ले !
अहदे-पारीना^३ का मैं इन्सां नहीं,
बन्दगी से इस दरो-दीवार की,
हो चुकी हैं ख्वाहिशें बेसाजो-रंगो-नातवां^४
जिस्म से तेरे लिपट सकता तो हूं,
ज़िन्दगी पर मैं झपट सकता नहीं !
इसलिए अब थाम ले,
ऐ हसीनो-अजनबी औरत ! मुझे अब थाम ले ।

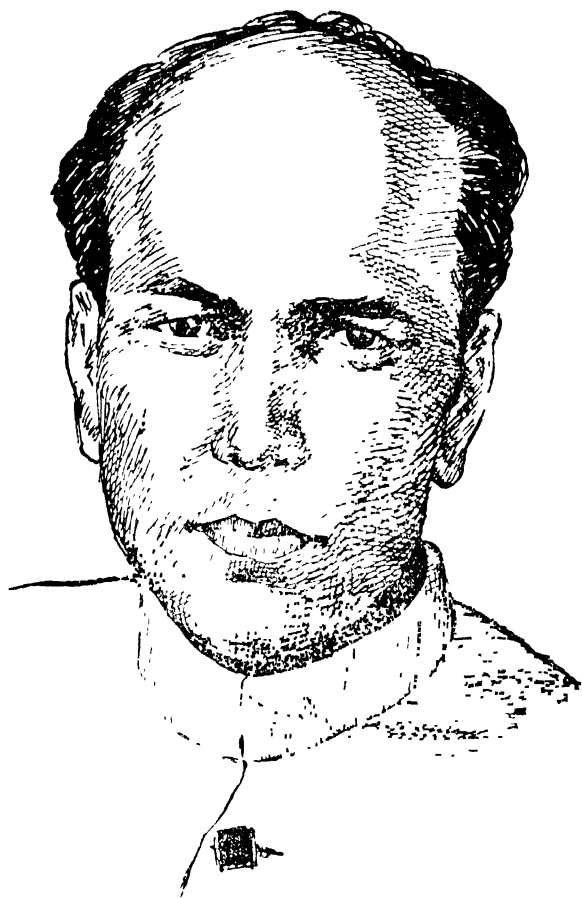
१. आकार २. दूर (पहलू बचाए हुए) ३. प्राचीन युग ४. राग-रंग-
रहित तथा दुर्बल

दरीचे के क़रीब

जाग ऐ शम्म-ए-शबिस्ताने-विसाल^१,
 मरुमले-ख्वाब के इस फ़र्शे-तरबनाक^२ से जाग !
 लउज़ते-शब से^३ तेरा जिस्म अभी चूर सही,
 आ मेरी जान मेरे पास दरीचे के क़रीब,
 देख किस प्यार से अनवारे-सहर^४ चूमते हैं,
 मस्जिदे-शहर के मीनारों को,
 जिनकी रफ़अत^५ से मुझे,
 अपनी बरसों की तमन्ना का खयाल आता है ।

सीमगू^६ हाथों से ऐ जान ज़रा,
 खोल मै-रंग^७ जुनूखेज^८ आंखें,
 इसी मीनार को देख,
 सुबह के तूर से शादाब सही,
 इसी मीनार के साये तले कुछ याद भी है ।
 अपने बेकार खुदा के मानिद,
 ऊंधता है किसी तारीक निहांखाने^९ में,
 एक इफ़लास^{१०} का मारा हुआ मुल्ला-ए-हज़ी^{११},
 एक इफ़रियत^{१२}—उदास,
 तीन सौ साल की ज़िल्लत का निशां,
 ऐसी ज़िल्लत कि नहीं जिसका मुदावा कोई ।

१. मिलन के शयनगृह के दीपक (प्रेमिका) २. 'आनन्द-दायक फ़र्श'
 ३. रात के आनन्दों से ४. ऊषा की किरणें ५. ऊँचाई ६. चाँदी ऐसे
 (गोरे) ७. शराबी ८. उन्मादपूर्ण ९. अंधकारपूर्ण कोठरी १०. निर्धनता
 ११. ग्रमगीन मुल्ला १२. भूत



मुईन अहसन जजबी'

इक तरफ़ लब तक नहीं खुलते हैं फ़र्ते-यास से
इक तरफ़ 'जजबी' मुझे शौके-ग़ज़ल-ख़्वांनी भी है

पॉरंचय

नई दिल्ली के एक शानदार होटल में एक कोने की मेज पर पांच-छः व्यक्ति बैठे चाय पी रहे थे और आपस में हंसी-मजाक कर रहे थे कि एकाएक इर्द-गिर्द की मेजों पर बैठे हुए भद्र लोगों ने उस मेज पर एक हंगामा-सा होते देखा। पांच-छः व्यक्तियों की वह टुकड़ी किस बात पर आपस में उलझ पड़ी थी, यह तो खैर किसी को मालूम न हो सका क्योंकि ऊँचे स्वर के बावजूद उनकी बातें लोगों की समझ में नहीं आ रही थीं, अलबत्ता यह जरूर दिखाई दिया कि नौबत हाथापाई तक पहुँचे बिना नहीं रहेगी। विशेष रूप से गंजे सिर, ऊबड़-खाबड़ भवों और मजबूत जबड़े वाला एक नाटे क्रद का व्यक्ति अपने सामने के साथी के मुँह पर घुंसा जमाये बिना नहीं टलेगा। लेकिन लोग आश्चर्य से एक दूसरे का मुँह देखने लगे जब कुछ क्षणों के बाद ही वे सब पुनः धी-शक्कर हो गये और उस टुकड़ी के वे दोनों मुख्य पात्र जो अभी-अभी मरने मारने पर उतारू थे, एक-दूसरे के हाथ में हाथ डालकर एक-दूसरे की आँखों में झाँकने और मुस्कराने लगे।

गंजे सिर, ऊबड़-खाबड़ भवों, मजबूत जबड़े और नाटे क्रद का यह व्यक्ति उर्दू का प्रसिद्ध शायर 'जज़बी' था। टुकड़ी में सबके सब उर्दू के माने हुए शायर और अदीब (लेखक) थे और उसका अभी कुछ समय पहले का प्रति-द्वन्दी 'जज़बी' ही की तरह एक प्रसिद्ध शायर और उसका घनिष्ठ मित्र था और वे काव्य-चर्चा करते-करते एक बात पर आपस में उलझ पड़े थे।

'जज़बी' ने अपने मित्र के हाथ को प्यार से दबाते हुए कहा, "प्यारे ! मैं

शेर कहना छोड़ दूंगा। आखिर ऐसी शायरी से क्या फायदा जो दोस्ताना ताल्लुकात भी कायम न रहने दे।”

और उसके प्यारे मित्र और समकालीन शायर ने सिगरेट का धुआँ उसके चेहरे पर बिखेरते हुए और गुरति हुए कहा “अगर तुम ने शायरी छोड़ दी जज़बी ! तो याद रखो, मैं तुम्हें क़त्ल कर दूंगा।” और फिर सब से सम्बोधित हो उसने बड़ी उत्सुकता से कहा, “अब हम ‘जज़बी’ से उसकी नई ग़ज़ल सुनेंगे।”

“यहाँ ?” जज़बी ने बड़े आश्चर्य से आस-पास बैठे हुए भद्र लोगों की ओर देखा।

“हां, यहीं,” उसका मित्र पुनः गुरिया। और कुछ इन्कार और कुछ इसरार के बाद पांच-छः लेखकों, शायरों और समालोचकों की वह टुकड़ी ‘जज़बी’ के शेरों पर दाद देने और सिर धुनने में व्यस्त हो गई।

‘जज़बी’ और उसके उस समकालीन शायर की यह झड़प काव्य-विषय और उसके रूप के सम्बन्ध में हुई थी। उसका मित्र विषय को रूप पर प्रधानता दे रहा था और ‘जज़बी’ रूप और विषय दोनों को बराबर का दर्जा देने के पक्ष में था। दोनों प्राचीन शायरों की कला-कृतियों के उदाहरण दे-देकर अपनी बात मनवाने का प्रयास कर रहे थे कि एक शेर पर तकरार हो गई। ‘जज़बी’ के समीप वह शेर कला की दृष्टि से घटिया श्रेणी का था और उसके मित्र के विचार में वह शेर इसलिए उच्चकोटि का था कि उसमें शायर ने बड़ी दो-दूक बात की थी और उसका विषय प्रगतिशील था।

‘जज़बी’ की शायरी के सम्बन्ध में आम धारणा यह है कि वह केवल आत्म-गत अनुभूतियों का शायर है और जान-बूझ कर अपनी ‘कला’ को परिस्थितियों की पकड़ से बचाये रखना चाहता है। उसके यहां विषय पर रूप को महत्व दिया जाता है और इस सम्बन्ध में एक बार एक समालोचक ने उसे “केवल शब्दों का जौहरी” कहकर उसकी शायरी की निंदा की थी। एक और समालोचक ने उसे निराशावादी शायर सिद्ध करके ‘फ़ानी’ (उर्दू का एक प्रसिद्ध निराशावादी शायर) का चर्चा कहा था और एक और महाशय ने उसे प्रतीकवादी शायर की उपाधि दी थी।

यह सही है कि ऊपरी ढंग से देखने से हमें ‘जज़बी’ के यहां इन अवगुणों की झलक मिलेगी लेकिन यदि हम उस की शायरी का क्रमानुसार मूल्याङ्कन करें और जैसा कि शायर का अधिकार है किंचित (Imaginative Sympathy) से काम लें तो हमें ‘जज़बी’ की शायरी पर उक्त प्रकार के ‘फ़तवे’ न

केवल अनुचित नज़र आयेँगे बल्कि निराधार भी। हमें उसके यहां अन्तर्गति और कला का एक ऐसा सुन्दर समावेश मिलेगा जो उर्दू की नई पीढ़ी के बहुत कम शायरों के हिस्से में आया है और जिसके लिए एक दो दिन की नहीं वर्षों की तपस्या चाहिये। काव्य-रूप के साथ उसका मैत्रीपूर्ण व्यवहार (Friendly terms with the form), अतीत की उत्तम परम्पराओं को अपने सामाजिक वातावरण के साथ सम्बन्धित देखने का बोध और जीवन की परगत् प्रेरणाओं की भट्टी में से तप कर निकला हुआ आत्मानुभव और आत्मगत अनुभूतियां उसकी शायरी में इस प्रकार घुल-मिल गई हैं कि उसका हर शेर हमें रुक जाने और सोचने पर विवश कर देता है और मेरे खयाल से यह दलील उसके एक सफल और बड़ा शायर होने के लिए काफ़ी है।

मुईन अहसन 'जज़बी' का जन्म २१ अगस्त १९१२ को ज़िला आजमगढ़ के एक गाँव में हुआ। दादा डाक्टर अब्दुल ग़फ़ूर स्वयं शायर थे और 'मतीर' उपनाम से ग़ज़लें कहते थे। फ़ूफी खातून अकरम उर्दू के प्रसिद्ध लेखक 'राज़िक्-उल-ख़ैरी' की पत्नी थी और स्वयं भी निबन्ध, कहानियाँ आदि लिखती थी। इस प्रकार बचपन में ही घर के साहित्यिक वातावरण ने 'जज़बी' पर अपना प्रभाव डाला और नौ-दस वर्ष की अल्प आयु में ही उसने तुक-बन्दी शुरू कर दी और सोलह वर्ष की आयु में तो बाक़ायदा ग़ज़लें कहने लगा।

'जज़बी' का जीवन असह्य परिस्थितियों की एक लम्बी दास्तान है। उसने अपने जीवन में ऐसे दिन भी देखे जब उसे सुबह की चाय तो किसी तरह प्राप्त हो गई लेकिन दोपहर के खाने के लिए उसे छः-छः मील पैदल चलकर किसी मित्र-मुलाकाती का मुँह देखना पड़ा और कभी-कभी तो फ़ाके तक की नौबत आई। ट्यूशन कर-करके और पेट पर पत्थर बाँध कर उसने एम० ए० किया और नौकरी के सिलसिले में बरसों एक ज़िले से दूसरे ज़िले में, और एक शहर से दूसरे शहर में मारा-मारा फिरता रहा। प्रत्यक्ष है कि उसकी शायरी इस प्रकार की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती थी और वह जो कुछ समालोचक उसे निराशावादी शायर सिद्ध करने के लिए उसके निम्न प्रकार के शेरों का उदाहरण देते हैं :

मरने की दुआयें क्यों मांगूं, जीने की तमन्ना कौन करे ?

ये दुनिया हो या वो दुनिया, अब ख्वाहिशे-दुनिया कौन करे ?

जब कश्ती साबितो-सालिम थी, साहिल की तमन्ना किसको थी ?

अब ऐसी शिकस्ता^१ कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे ?

दुनिया ने हमें छोड़ा 'जज़बी', हम छोड़ न दें क्यों दुनिया को ?

दुनिया को समझकर बैठे हैं, अब 'दुनिया-दुनिया' कौन करे ?

—तो एक तो वे शायर के पाँव पर खड़े होकर आलोचना करने का कष्ट नहीं करते और दूसरे उसके उसी काल के निम्न प्रकार के शेरों पर आँखें मीच लेते हैं :

किसी से हाले-दिले-बेकरार कह न सका ।

कि चश्मे-यास^२ में आँसू भी आ के वह न सका ॥

न आये मौत खुदाया तवाह-हाली में ।

ये नाम होगा शमे-रोज़गार^३ सह न सका ॥

यों तो 'जज़बी' १९२९ से शेर कह रहा था और :

अल्लाह री बेखुदी कि चला जा रहा हूँ मैं ।

मंज़िल को देखता हुआ, कुछ सोचता हुआ ॥

और

हुस्न हूँ मैं कि इश्क की तस्वीर ।

बेखुदी ! तुझ से पूछता हूँ मैं ॥

ऐसे सुन्दर शेर कह रहा था, लेकिन १९३४ तक उच्चकोटि के पत्रों के सम्पादक धन्यवाद सहित उसकी ग़ज़लें लौटाते रहे । फिर १९३४ में जब किसी प्रकार 'हुमायूँ' (प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका—लाहौर) में उसकी वही—'मरने की दुआयें क्यों मांगूँ' वाली ग़ज़ल प्रकाशित हो गई तो एकदम पाठक और लेखक सभी चौंक उठे और उस ग़ज़ल के बाद से उसकी गणना आधुनिक काल के प्रथम श्रेणी के उर्दू शायरों में होने लगी । उस ज़माने में उसने 'एक दोस्त से' और 'ऐ दोस्त' ऐसी सुन्दर नज़में भी लिखीं, लेकिन सही मानों में उसकी प्रगतिशीलता का प्रारम्भ १९३७ में हुआ । उसके करुणा-भाव में सर्वव्यापकता उत्पन्न हुई और उसने 'फ़ितरत एक मुफ़लिस की नज़र में' (इस संकलन में शामिल है) जैसी अर्थपूर्ण और जीवन्त नज़म लिखी । और उसकी उस काल की ग़ज़लों में भी नई दिशाएँ और नई अदायें मिलने लगीं । दो शेर देखिये :

१. टूटी-फूटी २. शोक-पूर्ण आँख ३. संसार के शम ।

इक यास भरे^१ दिल पर न हुई तासीर^२ तुम्हारी नज़रों की ।

इक मोम के बेहिस टुकड़े पर ये नाजुक खंजर टूट गये ॥

मेरी ही नज़र की मस्ती से सब शीशा-ओ-सागर रक्सां थे^३ ।

मेरी ही नज़र की गर्मी से सब शीशा-ओ-सागर टूट गये ॥

तात्पर्य यह है कि 'जज्बी' की शायरी बराबर विकास करती रही है। उसकी व्यक्तिगत कर्हणा सामूहिक कर्हणा में परिवर्तित होती रही है। उसके यहाँ जो अनुभूतियाँ और भावावेग थे वे आज भी मौजूद हैं लेकिन आज उन अनुभूतियों और भावावेग पर बुद्धि का पहरा है और बुद्धि के पहरे तले उसकी अनुभूतियाँ तथा भावावेग जहाँ हमें जीवन को समझने में सहायता देते हैं, वहाँ उसके लिए उत्तम काव्य-विषय और काव्य-रूप जुटाते हैं। काव्य-रूप के सम्बन्ध में 'जज्बी' बहुत चौकन्ता है। अपने एक-एक शेर को वह महीनों माँझता रहता है और उसे उस समय तक प्रकाशनार्थ नहीं भेजता जब तक उसे पूरा विश्वास नहीं हो जाता कि कला की दृष्टि से उस शेर में अधिक कांट-छांट की गुंजाइश नहीं है। लेकिन काव्य-रूप पर इतना परिश्रम करने का मतलब यह नहीं है कि वह काव्य-विषय की अवहेलना कर देता हो। हाँ, इस प्रसंग में वह पाठक से अपने संकेतों तथा अनुभूतियों को समझने की मांग अवश्य करता है और उसकी मांग पूरी होते ही उसकी हर बात बड़े सुन्दर और स्पष्ट रूप से हमारे मस्तिष्क में उतर जाती है...

...और फिर आवारा-गर्दी के ज़माने में—

जब कश्ती साबितो-सालिम थी साहिल की तमन्ना किसको थी ?

अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे ?

—कहने वाले शायर को जीवन के विभिन्न मार्गों में भटकने के बाद मुस्लिम विश्वविद्यालय (अलीगढ़) में एक लैक्चरर के रूप में आश्रय मिल जाता है और वह—

क्या तुझको पता क्या तुझको खबर दिन-रात खयालों में अपने ।

ऐ काकुले-गेती^४ हम तुझको, जिस तरह संवारा करते हैं ॥

ऐ मौजे-बला इनको भी ज़रा दो-चार थपेड़े हलके से ।

कुछ लोग अभी तक साहिल से तूफ़ान का नज़ारा करते हैं ॥

१. निराशा-पूर्ण २. प्रभाव ३. शराब के प्याले और सुराहियां नाच रही थीं ४. दुनिया के केशों की लट (संसार)

—कहता है और इस पर भी उसका कोई समकालीन शायर या समालोचक उससे काव्य-विषय और काव्य-रूप के सम्बन्ध में उलझ पड़ता है तो किसी शानदार होटल में बैठे होने के बावजूद उसका जी चाहता है कि वह उसके मुँह पर एक घूसा जमा दे। लेकिन फिर कुछ क्षणों के बाद वह बड़े प्यार से अपने उस प्रतिद्वन्द्वी का हाथ दबाकर उससे कहने लगता है “प्यारे ! मैं शेर कहना छोड़ दूंगा। आखिर ऐसी शायरी से क्या फायदा जो दोस्ताना ताल्लुकात भी कायम न रहने दे।”

“एक शायर की हैसियत से हमारे लिए जो चीज सबसे ज्यादा अहम है, वह जिन्दगी या ज़िन्दगी के तजुर्बात हैं। लेकिन कोई तजुर्बा उस वक़्त तक मौजू-ए-सुखन (काव्य-विषय) नहीं बनता जब तक उसमें शायर को जज़्बे की शिद्दत (भावावेग) और अहसास (अनुभूति) की ताज़गी का यकीन न हो जाए। यही दोनों चीज़ें शायर को कलम उठाने पर मजबूर करती हैं और अगर शायर के पास कोई अपना नुक्ता-नज़र (दृष्टिकोण) है तो उसकी झलक उसके जज़्बात में भी नज़र आयेगी। यह झलक कभी हल्की होगी, कभी गहरी, लेकिन होगी जरूर। क्योंकि जज़्बातो-अहसासात शायर की तनक़ीदी क़ुव्वतों (समालोचनात्मक शक्तियों) से बचकर नहीं निकल सकते। अक्ल उन्हें शऊरी तौर पर (बोधात्मक ढंग से) परखती है। इस अमल (प्रक्रिया) के बाद शायर के नुक्ता-नज़र का जज़्बातो-अहसासात में सरायत (प्रवेश) कर जाना लाज़मी है। यहां ‘हल’ (समाधान) की वज़ाहत (व्याख्या) जरूरी नहीं। अंदाज़े-बयान खुद हलकी गम्माज़ी (गवाही देना) करता है। दरिया का बहाव दुरुस्त होना चाहिये, कश्ती कशां-कशां किनारे से आ लेगी।”

(जजबी द्वारा लिखित उसके कविता-संग्रह ‘फ़िरोज़ां’ की भूमिका में से)

फ़ितरत एक मुफलिस की नज़र में

फ़ितरत के पुजारी कुछ तो बता, क्या हुस्न है इन गुलज़ारों में ?
है कौन-सी रञ्जनाई^१ आखिर, इन फूलों में, इन खारों में^२ ?

वो ख्वाह^३ सुलगते हों शब भर, वो ख्वाह चमकते हों शब भर,
मैंने भी तो देखा है अक्सर, क्या बात नई है तारों में ?
इस चांद की ठंडी किरनों से मुझको तो सुकूँ^४ होता ही नहीं,
मुझको तो जुनूँ^५ होता ही नहीं, जब फिरता है गुलज़ारों में ।

ये चुप-चुप नग़िस की कलियां, क्या जाने कैसी कलियां हैं ?
जो खिलती हैं, जो हंसती हैं और फिर भी हैं बीमारों में ।
ये लाल शफ़क़^६ ये लाला-ओ गुल^७ इक चिगारी भी जिन में नहीं,
शोले भी नहीं गर्मी भी नहीं है तेरे आतिशज़ारों में^८ ॥

उस वक़्त कहां तू होता है जब मौसमे-गर्मा का सूरज,
दोज़ख़ की तपिश भर देता है, दरियाओं में फ़ुहसारों में ।
जाड़े की भयानक रातों में वो सदर्द हवाओं की तेज़ी,
हां वो तेज़ी, वो बेमेहरी^९ जो होती है तलवारों में ।

दरिया के तलातुम^{१०} का मंज़र^{११} हां तुझको मुबारिक हो लेकिन,
इक टूटी-फूटी कश्ती भी चकराती है मंभधारों में ।

१. सौन्दर्य २. कांटों में ३. चाहे ४. शान्ति ५. उन्माद
६. क्षितिज ७. फूल ८. अग्नि-स्थलों में ९. निर्दयता १०. तूफ़ान
११. दृश्य

कोयल के रसीले गीत सुने लेकिन ये कभी सोचा तू ने,
हैं उलझे हुए नगमे कितने इक साज के टूटे तारों में ?

बादल की गरज बिजली की चमक बारिश में वो तेज़ी तीरों की,
में ठिठरा सिमटा सड़कों पर, तू जाम-बलब^१ मैखानों में
सब होशो-खिरद^२ के दुश्मन हैं, सब कलबो^३ जिगर के रहजन^४ हैं,
रक्खा है भला क्या इसके सिवा इन राहते-जां महपारों^५ में ?

वोलाख हिलालो^६ से भी हसीं, कैसी जोहरा^७ कैसी परवी^८ ?
इक रोटी का टुकड़ा जो कहीं मिल जाये मुझे बाज़ारों में ।
जब जेब में पैसे बजते हैं, जब पेट में रोटी होती है,
उस वक़्त ये ज़र्रा हीरा है, उस वक़्त ये शबनम मोती है ।

१. शराब के भरे प्याले लिए हुए २. बुद्धि ३. हृदय ४. डाकू
५. आनन्ददायक चांद के टुकड़ों (सुन्दरियों) में ६. पहली रात के चांद
७, ८. सितारों तथा स्त्रियों के नाम

मौत

अपनी सोई हुई दुनिया को जगा लूं तो चलूं,
 अपने गमखाने में इक धूम मचा लूं तो चलूं,
 और इक जामे-मये-तल्ल^१ चढ़ा लूं तो चलूं,
 अभी चलता हूं ज़रा खुद को संभालूं तो चलूं ।

जाने कब पी थी, अभी तक है मये-गम का खुमार,
 धुंदला-धुंदला नज़र आता है जहाने-बेदार^२,
 आंधियां चलती हैं, दुनिया हुई जाती है गुबार,
 आंख तो मल लूं, ज़रा होश में आ लूं तो चलूं ।

वो मेरा सहर^३, वो एजाज़^४ कहां है ? लाना,
 मेरी खोई हुई आवाज़ कहां है ? लाना,
 मेरा टूटा हुआ वो साज़ कहां है ? लाना,
 इक ज़रा गीत भी उस साज़ पे गा लूं तो चलूं ।

मैं थका-हारा था, इतने में जो आये बादल,
 किसी मतवाले ने चुपके से बड़ा दी बोटल,
 उफ़ वो रंगीन पुरअसरार^५ खयालों के महल,
 ऐसे दो-चार महल और बना लूं तो चलूं ।

१. कड़वी (बहुत नशा देने वाली) शराब का प्यास २. जागा हुआ
 संसार ३. जादू ४. चमत्कार ५. भेदपूर्ण

मुझ से कुछ कहने को आई है मेरे दिल की जलन,
 क्या किया मैंने जमाने में नहीं जिसका चलन ?
 आंसुओं ! तुमने तो बेकार भिगोया दामन,
 अपने भीगे हुए दामन को सुखा लूं तो चलूं ।
 मेरी आंखों में अभी तक है मुहब्बत का शरूर,
 मेरे होंटों को अभी तक है सदाक़त का शरूर,
 मेरे माथे पे अभी तक है शराफ़त का शरूर,
 ऐसे वहमों से भी अब खुद को निकालूं तो चलूं ।

गजलें

इन्तहाए-गम में मुझको मुस्कराना आ गया ।
 हाथ इखफ़ाए-मृहब्बत^१ का बहाना आ गया ॥
 इस तरफ़ इक आशियाने की हक़ीक़त खुल गई ।
 उसतरफ़ इक शोख को बिजली गिराना आ गया ॥
 रो दिये वो खुद भी मेरे गिरया-ए-पैहम^२ पे आज ।
 अब हक़ीक़त में मुझे आंसू बहाना आ गया ॥
 मेरी खाके-दिल भी आखिर उनके काम आ ही गई ।
 कुछ नहीं तो उनको दामन ही बचाना आ गया ॥
 वो खराशे-दिल^३ जो ऐ 'जज्बी' मेरी हमराज थी ।
 आज उसे भी ज़रुम बनकर मुस्कराना आ गया ॥

◇

◇

◇

शरीके-महफ़िले-दारो-रसन^४ कुछ और भी हैं ।
 सितमगरो^५! अभी अहले-कफ़न^६ कुछ और भी हैं ॥
 रवां-दवां यूँही ऐ नन्ही बूंदियों के अब्र^७ ।
 कि इस दियार^८ में उजड़े चमन कुछ और भी हैं ॥
 खुदा करे न थकें हथ तक जुन्नू^९ के पांव ।
 अभी मनाज़िरे-दस्तो-दमन^{१०} कुछ और भी हैं ।
 खुदा करे मेरी वामांदगी^{११} को ग़ैरत आये ।
 अभी मनाज़िले-रंजो-मेहन^{१२} कुछ और भी हैं ॥

१. छुपाना २. निरन्तर रुदन ३. दिल पर पड़ी हुई खरोंच ४. सूली पर चढ़ने वाली महफ़िल में शामिल ५. अत्याचार करने वालो ६. मरने को तैयार ७. बादल ८. देश ९. उन्माद १०. जंगल-बयाबानों के दृश्य ११. थकन १२. दुखों-कष्टों की मंजिलें

अभी समूह^१ ने मानी कहां नसीम^२ से हार ।
 अभी तो मारका-हाए-चमन^३ कुछ और भी हैं ॥
 अभी तो हैं दिले-शायर में^४ सेंकड़ों नासूर ।
 अभी तो मोजजा-हाए-नृग्नन^५ कुछ और भी हैं ॥
 दिले-गुदाज^६ ने आंखों को दे दिये आंसू ।
 ये जानते हुए गम के चलन कुछ और भी हैं ॥

१. विषैला पवन २. सुगंधित पवन ३. बाग के मोर्चे ४. कवि के
 हृदय में ५. कविता के चमत्कार ६. कोमल हृदय

फुटकर शेर

दास्ताने - शबे - गम क़िस्सा - ए - तूलानी है^१ ।
 मुख्तसर ये है कि तू ने मुझे बरबाद किया ॥
 हो न हो दिल को तेरे हुस्न से कुछ निसबत^२ है ।
 जब उठा दर्द तो क्यों मैंने तुझे याद किया ?

◇ ◇ ◇
 रूठने वालों से इतना कोई जाकर पूछे ।
 खुद ही रूठे रहे या हम से मनाया न गया ?
 फूल चुनना भी अबस^३, सैरे-बहारां भी अबस ।
 दिल का दामन ही जो कांटों से बचाया न गया ॥

◇ ◇ ◇
 शिकवा क्या करता कि उस महफ़िल में कुछ ऐसे भी थे ।
 उम्र भर जो अपने ज़रुमों पर नमक छिड़का किये ॥

◇ ◇ ◇
 ऐ हुस्न ! हम को हिज्र^४ की रातों का खौफ़ क्या ?
 तेरा खयाल जागेगा सोया करेंगे हम ॥
 ये दिल से कह के आंहीं के भोंके निकल गये ।
 उन को थपक - थपक के सुलाया करेंगे हम ॥

◇ ◇ ◇

१. गम की रात का वृत्तांत एक लम्बी कहानी है २. सम्बंध ३. व्यर्थ
 ४. जुदाई



सरदार जाफ़री

वज्द में है बझ्मे-गेती, रक्त्स में है कायनात
शायरी कां जानते हैं, नारा-ए-मस्ताना हम

परिचय

ईसा से ३४७ वर्ष पूर्व यूनान के प्रसिद्ध नीतिज्ञ और दार्शनिक प्लैटो (Plato) ने अपने कल्पित जनतंत्र से कवियों को इसलिए निकाल दिया था क्योंकि उसके विचार में कविता यथार्थ की नक़ल भर थी और वह भी तीसरी श्रेणी की, क्योंकि वास्तविक यथार्थ की नक़ल तो यह संसार है और इस संसार की नक़ल कविता ।

अठारहवीं शताब्दि के उर्दू के सर्वप्रथम जन-कवि 'नज़ीर' अकबराबादी को बाज़ारू, अशिष्ट और अश्लील शायर कहकर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार मोहम्मद-हुसैन 'आज़ाद' ने उसे 'शायरी के अमर सिंहासन' पर बिठाने से इन्कार कर दिया था ।

और इस बीसवीं शताब्दी में भी आज से आठ-दस साल पहले उर्दू के प्रसिद्ध व्यंग्य-लेखक कन्हैयालाल कपूर ने अपने एक लेख में स्वर्गीय 'हाली' को नये सिरे से जीवित दिखाकर उससे प्रगतिशील शायरों का परिचय कराते हुए लिखा था कि जब उस मजलिस में 'मजाज़' लखनवी और सरदार जाफ़री ने प्रवेश किया तो उनके कंधों पर लाल भंडे थे, वे बाक्रायदा मार्च करते और गाते हुए आ रहे थे : "मज़दूर हैं हम, मज़दूर हैं हम !"

कन्हैयालाल कपूर के कथनानुसार 'हाली' ने आश्चर्य से उन विचित्र प्रकार के नृत्यों की ओर देखा और परेशान होकर कहा, "आप मज़दूर हैं तो जाइये कहीं जाकर मज़दूरी कीजिये । यहाँ शायरों की महफ़िल में आपका क्या काम ?"

लेकिन होता यह है कि स्वयं प्लैटो का शिष्य अरिस्टॉटल (Aristotle) काव्य-सम्बन्धी अपने गुरु के सिद्धांतों का खंडन करता है और काव्य (साहित्य) को मानव-जीवन को समझने और उसे समृद्ध बनाने के लिए उपयोगी तथा अनिवार्य प्रमाणित करता है।

उन्नीसवीं शताब्दि में जिस शायर को मेलों, त्यौहारों और घरेलू घटनाओं को सीधे-सादे ढंग से प्रस्तुत करने पर बाज़ारू, अशिष्ट और अश्लील कहा गया और यह भविष्यवाणी की गई कि साहित्य में उसे कभी स्थायी स्थान प्राप्त नहीं होगा, आज उसी 'नज़ीर' अकबराबादी की शायरी के बिना उर्दू साहित्य का इतिहास अपूर्ण नज़र आता है। यही नहीं, आज के उर्दू शायर उसे अपना अग्रगण्य कहकर बड़े गौरव का अनुभव करते हैं। यहां तक कि डाक्टर फ़ेलन ऐसा अंग्रेज़ समालोचक भी लिखता है कि "नज़ीर ही उर्दू का वह अकेला शायर है (अपने युग का) जिसकी शायरी यूरेनियस के मापदंड के अनुसार सच्ची शायरी है।"

और गुस्ताखी माफ़, कन्हैयालाल कपूर के जीवन में ही, बल्कि उसकी राय (व्यंग ही सही) के केवल आठ-दस साल बाद, सरदार जाफ़री किसी साहित्य सभा से निकाले जाने की बजाय उस सभा की जान बल्कि आत्मा नज़र आता है और उक्त उदाहरण इस सिद्धांत को पुष्ट कर देने में हमारी सहायता करते हैं कि कवि कोई दैवीय प्राणी नहीं होता कि जिस पर जीवन के परिवर्तन-शील मूल्यों का कोई प्रभाव ही न हो और जो अपने युग की परिस्थितियों से दामन बचाकर जीवित रह सके, बल्कि कवि का हृदय तो अत्यन्त कोमल और उसकी दृष्टि बड़ी दूरगामी होती है। वह केवल अतीत तथा वर्तमान ही की ओर नहीं देखता, उसकी नज़र भविष्य पर भी पड़ती है और मानव-विकास का ज्ञान उसे मानव के भविष्य को उज्ज्वल तथा सुखद बनाने के लिए प्रयत्नशील बनाता है। लेकिन उसके पास समाज को बदलने का साधन चूँकि 'कविता' होता है इसलिए स्वयं सरदार जाफ़री के कथनानुसार "वह न ही कुल्हाड़ी की तरह वृक्ष काट सकता है और न मनुष्य के हाथों की तरह मिट्टी से प्याले बना सकता है। वह पत्थर से बुत नहीं तराशता बल्कि भावनाओं तथा अनुभूतियों के नये-नये चित्र बनाता है। वह पहले मनुष्य की भावनाओं पर प्रभावशील होता है और इस प्रकार उसमें आंतरिक परिवर्तन उत्पन्न करता है, और फिर उस मनुष्य के द्वारा वातावरण तथा समाज को बदलता है।"

मेरे विचार में कवि तथा कविता की इस परिभाषा पर सरदार जाफ़री

और उसकी शायरी बिल्कुल पूरे उतरते हैं। मानव-विकास के क्रम को समझने, जीवन के मिटते हुए मूल्यों का भेद पा लेने, प्रगतिशील शक्तियों से अपना नाता जोड़ने और अपने 'कवि के कर्तव्य' को पूर्ण रूप से समझने के बाद जब उसने काव्य-क्षेत्र में कदम रखा और जो कुछ उसे कहना था, बड़े स्पष्ट रूप में कहने लगा तो उर्दू शायरी की परम्पराओं के उपासकों का बौखला जाना ठीक उसी तरह जरूरी था जिस तरह 'आज़ाद' को 'नज़ीर' के यहाँ बाज़ारूपन नज़र आया था। लेकिन आज चूँकि जीवन की गति अठारवीं और उन्नीसवीं शताब्दि से कहीं अधिक तेज़ है और मानव-बोध पहले से कहीं आगे निकल चुका है, इसलिए सरदार जाफ़री को और उसी की तरह सोचने और शायरी करने वाले उर्दू के अन्य प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी शायरों को अपनी बात के सही सिद्ध करने में अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी; और चूँकि सरदार जाफ़री का राजनैतिक तथा कलात्मक बोध बड़े संतुलित ढंग से एक दूसरे में रच-बस चुके हैं और उसे घटनाओं तथा परिस्थितियों को कवित्व-शक्ति के साथ प्रस्तुत करने की सिद्धि प्राप्त है इसलिए हम देखते हैं कि अपने जिन विचारों को वह हम तक पहुँचाना चाहता है, वे विचार प्रत्यक्ष रूप में हमारे मस्तिष्क में उतर आते हैं और हमारे भीतर जो स्थायी चुभन और तड़प, उमंग और प्रेरणा उत्पन्न करते हैं उनसे हमें केवल जीवन को समझने में ही सहायता नहीं मिलती बल्कि हमारे भीतर सुखप्रद भविष्य के लिए संग्रामशील होने की भावना भी जाग उठती है।

आधुनिक उर्दू शायरी का यह निडर और स्पष्टवक्ता शायर जो अपनी शायरी द्वारा स्वतन्त्रता, शान्ति तथा समानता का प्रचार और परतन्त्रता, युद्ध और साम्राज्य पर कुठाराघात करने के अपराध में पराधीन भारत में भी जेल भुगत चुका है और स्वाधीन भारत में भी, २६ नवम्बर १९१३ को बलरामपुर ज़िला गोंडा (अवध) में पैदा हुआ।

घर का वातावरण यू० पी० के साधारण मध्यवर्गीय मुसलमान घरानों की तरह खालिस धार्मिक था और चूँकि ऐसे घरानों में 'अनीस' के मंसियों को वही स्थान प्राप्त है जो हिन्दू घरानों में महाभारत और रामायण को, इसलिए अली सरदार जाफ़री पर भी घर के वातावरण ने प्रभाव डाला और अपनी छोटी-सी आयु में ही उसने 'मंसिये' लिखने शुरू कर दिए और १९३३ तक बराबर मंसिये लिखता रहा। उसका उस ज़माने का एक शेर देखिये :

अर्श^१ तक ओस के कतरों की चमक जाने लगी ।
चली ठंडी जो हवा तारों को नींद आने लगी ॥

लेकिन बलरामपुर से हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद जब वह उच्च शिक्षा के लिए मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ पहुँचा और वहाँ उसे अख्तर हुसैन रायपुरी, सिक्ते-हसन, 'जज़बी', 'मजाज़', जाँ निसार 'अख्तर' और ख्वाजा अहमद अब्बास ऐसे साथी मिले और वह विद्यार्थी आन्दोलनों में गहरा भाग लेने लगा और फिर विद्यार्थियों की एक हड़ताल कराने के सिलसिले में विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया तो उसकी शायरी की धारा आपही आप 'मर्सियों' से राजनीतिक नज़मों की ओर मुड़ गई और ऐंगलो-ऐरेबिक कालेज, दिल्ली से बी० ए० और लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए० करने और कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बनने के बाद तो उसकी शायरी पूर्णरूप से 'राजनीतिक' हो गई ।

उसके समस्त कविता-संग्रह ('परवाज़', 'नई दुनिया को सलाम', 'खून की लकीर', 'अमन का सितारा', 'एशिया जाग उठा' और 'पत्थर की दीवार') के अध्ययन से जो चीज़ बड़े स्पष्ट रूप में हमारे सामने आती है और जिससे हमें शायर की असाधारण विशेषता का पता चलता है, वह यह है कि उसके समस्त विचारों का केन्द्र मानव है और उसे मानवता के शानदार भविष्य पर पूरा भरोसा है । ऐतिहासिक बोध और सामाजिक अनुभवों द्वारा उसने इस भेद को पा लिया है कि संसार में व्यक्तियों तथा वर्गों की पराजय तो हो सकती है, और होगी, लेकिन मानव अजेय है । और चूँकि उसका परिश्रम उसके अपने ज्ञान ही का नहीं, बहुत हद तक उसके वातावरण का भी निर्माता होता है, अतएव वह सदैव विजयी और भाग्यशील रहेगा और यही कारण है कि हमें सरदार जाफ़री की शायरी में किसी प्रकार की निराशा तथा अवसन्नता का चित्रण नहीं मिलता, वरन् उसकी शायरी हमारे भीतर नई-नई उमंगें जगाती है । हम उसके सिद्धान्तों से भले ही सहमत न हों लेकिन उसकी निष्कपटता, उसकी सूक्ष्म-बुद्धि और उसके आशावाद से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते । कुछ शेर देखिये :

गो मेरे सिर पे सियाह रात की परछाईं है,
मेरे हाथों में है सूरज का छलकता हुआ जाम,

मेरे अफ़कार में^१ है तल्खी-ए-इमरोज़^२, मगर,
मेरे अशअर में है इश्ते-फ़र्दा^३ का पयाम ।

◇ ◇ ◇
सिर्फ़ इक मिटती हुई दुनिया का नज़्ज़ारा न कर,
आलमे-तखलीक में^४ है इक जहाँ ये भी तो देख,
मैंने माना, मरहले हैं सख्त, राहें हैं दराज़^५,
मिल गया है अपनी मंज़िल का निशां ये भी तो देख ।

◇ ◇ ◇
नया चश्मा है पत्थर के शिगाफ़ों से उबलने को,
जमाना किस क़दर बेताब है करवट बदलने को ।

◇ ◇ ◇
यहाँ तक कि उसकी रोमांटिक नज़में भी नैराश्य आदि भावों से नितान्त
बची हुई हैं और उनमें भी संघर्ष की वही भावना क्रिया-शील है जो उसकी
राजनीतिक नज़्मों में विद्यमान है । उसकी एक नज़्म 'इन्तज़ार न कर' का
एक टुकड़ा देखिए :

मैं तुमको भूल गया इसका एतबार न कर,
मगर खुदा के लिए मेरा इंतज़ार न कर ।
अजब घड़ी है मैं इस वक़्त आ नहीं सकता,
सरूरे-इश्क की दुनिया बसा नहीं सकता,
मैं तेरे साज़े-मुहब्बत पे गा नहीं सकता,
मैं तेरे प्यार के क़ाबिल नहीं हूँ, प्यार न कर,
न कर खुदा के लिए मेरा इंतज़ार न कर ।

जाफ़री की शायरी की आयु लगभग वही है जो भारत में साहित्य के
प्रगतिशील आन्दोलन की । बीस वर्ष का यह ज़माना भारत के अतिरिक्त पूरे
संसार की उथल-पुथल का ज़माना रहा है । एक ओर भारत अँग्रेज़ी साम्राज्य
की दासता से निकलने के लिए संघर्ष कर रहा था तो दूसरी ओर विरोधी
शक्तियाँ अपने खूनी जबड़े खोले नये-नये देश हड़प कर रही थीं । एक ओर
दूसरे महायुद्ध के भयानक परिणाम संसार को आर्थिक-संकट की लपेट में ले
रहे थे और चारों ओर बेकारी, बेरोज़गारी का तांडव-नृत्य हो रहा था तो

१. रचनाओं में २. आज की कटुतायें ३. सुख-प्रद भविष्य ४. जन्म
लेता हुआ ५. लम्बी

दूसरी ओर रूस की समाजवादी व्यवस्था मंजिलों पर मंजिलें तै कर रही थी और संसार के श्रमजीवी उस जीवन-व्यवस्था से प्रभावित हो रहे थे। फिर भारत का विभाजन हुआ और लाखों प्राणी धर्म के नाम पर कट मरे और आज फिर सारे संसार पर तीसरे महायुद्ध के भयंकर बादल मँडरा रहे हैं। इस प्रकार की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में किसी जागरूक कवि या लेखक का मौन रहना या अपना कोई अलग संसार बसाना किसी प्रकार संभव नहीं था, अतएव सरदार जाफ़री ऐसे मानव-प्रेमी शायर ने हर स्थान पर न केवल अपने मानव-प्रेम की मशाल जलाई बल्कि गान-गायनों के विरुद्ध अपनी पवित्र घृणा को भी प्रकट किया। 'बगावत', 'अहदे-हाज़िर', 'सामराजी लड़ाई', 'इंकिलाबे-रूस', 'मल्लाहों की बगावत', 'फ़रेब', 'सैलाबे-चीन', 'जशने बगावत' इत्यादि नज़्मों के शीर्षक भर देखने से ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि शायर की उँगली बदलती हुई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की नब्ज़ पर रही है और इन नज़्मों के अध्ययन से यह वास्तविकता खुलकर सामने आ जाती है कि उसने केवल परिस्थितियों की नब्ज़ की गति देखने पर ही सन्तोष नहीं किया, उन धड़कनों के साथ उसके अपने हृदय की धड़कनें भी मिलती रही हैं। वह किसी एक जाति, किसी एक वर्ग या एक श्रेणी का शायर नहीं, पूरी मानवता का शायर है। उसकी शायरी इतिहास के परिवर्तनशील मूल्यों के साथ-साथ जा रही है और उसे शायर के शुभ उद्देश्य का पूरा-पूरा अनुभव है :

मैं हूँ सदियों का तफ़क्कुर^१, मैं हूँ करनों का^२ खयाल ।
मैं हूँ हम-आग़ोश अज़ल से, मैं अबद से हम-किनार^३ ॥
मेरे नग़मे क़ैदे-माहो-साल से^४ आज़ाद हैं ।
मेरे हाथों में है लाफ़ानी तमन्ना का सितार ।
नक्शे-मायूसी में^५ भर देता हूँ उम्मीदों का रंग ।
मैं अता^६ करता हूँ शाख़े-आरज़ू^७ को बर्गों-बार^८ ॥
चुन लिए हैं बाग़े-इन्सानी से अरमानों के फूल ।
जो महकते ही रहेंगे मैं ने गूँधे हैं वो हार ॥

१. चिंतन २. कई ज़मानों का ३. आदि और अन्त से मिला हुआ
४. महीनों, साल (समय) की क़ैद से ५. निराशा के चित्रों में ६. प्रदान
७. अभिलाषा की शाखा ८. फल-फल

आर्जी जलवों को दी है ताबिशे-हुस्नो-दवाम^१ ।

मेरी नज़रों से है रौशन आदमी की रहगुज़ार^२ ॥

[नज़म 'शायर' में से]

और इसी अनुभव के वशीभूत वह बड़ी दयानतदारी से अपने कर्तव्य का पालन करता रहा है। एक प्रगतिशील शायर के इन कर्तव्यों को देखते हुए उन आलोचकों का उत्तर देने की आवश्यकता बाकी नहीं रहती जो प्रगतिशील शायरी को खून, आग, तूफ़ान, सैलाब और मजदूर-किसान आदि शब्दों तक सीमित समझते हैं।

सरदार जाफ़री की कुछ-एक शुरू की नज़मों को छोड़कर जिनकी कुछ पंक्तियों का ढीलापन कानों को खटखकता है, और कुछ ऐसे स्थानों को छोड़कर जहाँ वह शायर कम और उपदेशक अधिक मालूम होता है ('इक़बाल' और 'जोश' से प्रभावित होने के कारण या विषय की आधीनता के कारण, क्योंकि सरदार जाफ़री के मतानुसार शैली और रूप विषय पर आधारित होते हैं)^३ सामूहिक रूप से उसकी शायरी कला के समस्त गुणों को अपने दामन में लिए हुए है। इस पर उसने उर्दू शायरी को जो नये शब्द और भाव दिए हैं और रूपकों को नये अर्थों में प्रस्तुत किया है और निर्बंध तथा अतुकांत शायरी को सँवारा निखारा है, उससे आधुनिक उर्दू शायरी को अपनी विभावना और सार्थकता पर गौरव करने का पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त हो गया है।

एक बड़ा शायर होने के अतिरिक्त सरदार जाफ़री एक बड़ा समालोचक भी है। 'नया अदब' के सम्पादन-काल में उसने अपनी जिस समालोचनात्मक क्षमता का प्रमाण दिया और अब प्रगतिशील साहित्य का इतिहास लिखते हुए (चार भागों के इस इतिहास का पहला भाग अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू, अलीगढ़ से प्रकाशित हो चुका है) जिस वर्णनात्मक शक्ति और ज्ञान के जितने बड़े भंडार

१. सौंदर्य और स्थायित्व की चमक (गर्मी) २. पथ
३. "रूप का सौंदर्य बहुत आवश्यक है लेकिन रूप विषय का मुहताज है। इसलिए कि विषय के बिना रूप की कोई कल्पना नहीं की जा सकती; और चूँकि मनुष्य चित्रों और शब्दों के बिना कुछ सोच नहीं सकता इसलिए विषय अपना रूप साथ लेकर आता है। शायर का तज़ुर्बा और परिश्रम उस रूप को अपनी क्षमता से और अधिक सुन्दर बना सकता है।"

—सरदार जाफ़री

को लेकर वह हमारे सामने आया है, उससे यह अनुमान लगाने में कठिनाई होती है कि वह शायर बड़ा है या समालोचक । शायर और समालोचक के अतिरिक्त वह बहुत अच्छा भाषणकर्त्ता भी है । उसने कहानियाँ भी लिखी हैं और नाटक भी । लेकिन इतना कुछ कहने और लिखने पर भी उसका कहना यही है कि :

ये तो हैं चन्द ही जलवे जो झलक आये हैं ।

रंग हैं और मेरे दिल के गुलिस्तां में अभी ॥

मेरे आगोशे-तखैयुल^१ में हैं लाखों सुबहें ।

आफ़ताब^२ और भी हैं मेरे ग़रेबां में अभी ॥

नींद

[अपने बच्चे की पहली वर्षगांठ पर]

रात खूबसूरत है,
नींद क्यों नहीं आती ?

दिन की खश्मगीं^१ नज़रें,
खो गई सियाही में,
आहनी^२ कड़ों का शोर,
बेड़ियों की भंकारें,
क़ैदियों की सांसों की,
तुंदो - तेज़ आवाज़ें,
जेलरों की बदकारी,
गालियों की बीछारें,
बेबसी की खामोशी,
खामशी की फ़र्यादें,
तहनशीं अंधेरे में,
शब^३ की शोख़ दोशीज़ा^४ ,
खारदार^५ तारों को,
आहनी हिसारों को^६ ,
पार कर के आई है ।

१. क्रोधपूर्ण २. लोहे की ३. रात ४. कुमारी ५. कंटीले ६. लौह-दुर्गों को

भर के अपने आंचल में,
जंगलों की खुशबूएं,
ढंडकें पहाड़ों की,
मेरे पास लाई है।

नीलगूँ^१ जवां सीना,
नीलगूँ जवां बांहें,
कहकशां^२ की पेशानी,
नीम-चांद का जूड़ा,
मखमलीं अंधेरे का,
पैरहन^३ लरजता है।
वक्त की सियाह जुल्फें,
खामशी के शानों पर,
खम-ब-खम^४ महकती हैं।
और जमीं के होंटों पर,
नर्म शबनमी बोसे,
मोतियों के दांतों से,
खिलखिला के हंसते हैं।
रात खूबसूरत है,
नींद क्यों नहीं आती ?

रात पेंग लेती है,
चांदनी के भूले में,
आस्मान पर तारे,
नन्हे-नन्हे हाथों से,
बुन रहे हैं जादू - सा।

भींगरों की आवाज़ें,
 कह रही हैं अफ़साना,
 दूर जेल के बाहर,
 बज रही है शहनाई,
 रेल अपने पहियों से
 लोरियां सुनाती है।
 रात खूबसूरत है,
 नींद क्यों नहीं आती ?
 रोज़ रात को यूँही,
 नींद मेरी आंखों से,
 बेवफ़ाई करती है,
 मुझ को छोड़कर तनहा,
 जेल से निकलती है।
 बम्बई की बसती में,
 मेरे घर का दरवाज़ा,
 जा के खटखटाती है।
 एक नन्हे बच्चे की,
 अंखड़ियों के बचपन में,
 मीठे - मीठे ख़्वाबों के,
 शहद घोल देती है।
 नर्म - नर्म गालों को,
 गर्म - गर्म आंखों को,
 भुक के प्यार करती है।
 इक हसीं परी बन कर,
 लोरियां सुनाती है,
 पालना हिलाती है।

दक्कन की शहजादी

बम्बई ! ऐ दक्कन की शहजादी !
नीलगूँ सुन्दरी अजन्ता की,
अपनी ऊँची चटान से नीचे,
अपने बालों को धोने आई है ।
पिंडलियां मछलियां हैं सोने की,
पांव डूबे हुए समन्दर में,
उंगलियां खेलती हैं पानी से,
जलते हीरे की लाखों आंखों से,
पिघले नीलम के नीले होंटों से,
मेरे ख्वाबों में मुस्कराती है ।
दिल के तूफ़ान-खेज साहिल पर,
मौजें^१ गाती हैं रक्स करती हैं,
भाग के आंचलों को लहराती,
चाँदनी की अंगूठियां पहने
भीगे तारों के फूल बरसाती ।
तेरी क़ौसे-क़ज़ह^२ की गरदन में,
मौजे-बहरे-अरब की^३ बांहें हैं ।
तेरे माथे को प्यार करती हैं,
तिरछी परछाइयां जहाज़ों की ।
खूँ की गरदिश में है मशीं^४ का राज,
नाचती उंगलियों में सूत के तार,
जिस्म पर सीपियों की नर्म चमक,
और नज़रों में मोतियों का गरूर ।

१. लहरें २. इन्द्रधनुष ३. अरब महासागर की लहरों की ४. मशी

मैं हिमालय के देस का वासी,
तू समन्दर के गोद की पाली,
क्या कहूँ कैसे याद आती है ?
जह्न के मलगजी^१ उजाले में,
तेरी तस्वीर झिलमिलाती है,
चाँदनी रात में गुलाब का फूल ।

मेरे ख्वाबों की शाहजादी है,
तू नहीं मारवाड़ियों की कनीज़^२ !
जो तेरा हुस्न बेच खाते हैं,
आह ये नफ़्फ़-ख़ोर ये दल्लाल !
मगरबी मंडियों के चकलों में,
तुझको नीलाम पर चढ़ाते हैं ।
और मैं गुस्से से कांप जाता हूँ,
मैं तेरे हुस्न का मुहाफ़िज़ हूँ ।
पांव हैं मेरे देवदार के पेड़,
मेरा सीना हिमालिया की चटान,
मेरे दिल, मेरे जह्न में दिन-रात,
आंधियां बर्फ़ के लबादों में,
बिजलियों के क़दम से चलती हैं ।
सुर्ख़ शहपर^३ बगावतों के उक्काब^४,
फ़िक्र के आस्मां पे उड़ते है ।
काले बनियों के चोर हाथों से,
मैं तुझे आन कर छुड़ा लूंगा ।
ऐ समन्दर के हुस्न की बेटी !
मैं तुझे गोद में उठा लूंगा !
अपने शायर की दिलनवाज़ है तू ।

अनाज

मेरी आशिक्र हैं किसानों की हसीं कन्यायें !
 जिनके आंचल ने मुहब्बत से उठाया मुझको ।
 खेत को साफ़ किया, नर्म किया मट्टी को,
 और फिर कोख में धरती की सुलाया मुझको ।
 खाक-दर-खाक हर इक तह में टटोला लेकिन,
 मौत के ढूँढते हाथों ने न पाया मुझको ।
 खाक से लेके उठा मुझको मेरा जौके-नमू^१,
 सब्ज कौंपल ने हथेली में छुपाया मुझको ।
 मौत से दूर मगर मौत की इक नींद के बाद,
 जु'बिशे-बादे - बहारी ने^२ जगाया मुझको ।
 बालियां फूलीं तो खेतों पे जवानी आई,
 उन परीजादों ने बालों में सजाया मुझको ।
 मेरे सीने में भरा सुख किरन ने सोना,
 अपने भूले में हवाओं ने भुलाया मुझको ।
 मैं रकाबी में, पियालों में महक सकता हूं,
 चाहिये बस लबो-रुस्तार का^३ साया मुझको ।

मेरी आशिक्र हैं किसानों की हसीं कन्यायें !
 गोद से उनकी कोई छीन के लाया मुझको ।

१. पनपने की इच्छा
 गालों का

२. बहार की हवा के झोंके ने

३. होंटों और

हविसे-ज़र ने मुझे आग में फूँका है कभी,
 कभी बाज़ार में नीलाम चढ़ाया मुझको ।
 सी के बोरो में मुझे फँका है तहखानों में,
 चोर-बाज़ार कभी रास न आया मुझको ।
 वो तरसते हैं मुझे और मैं तरसता हूँ उन्हें,
 जिनके हाथों की हरारत^१ ने उगाया मुझको ।

क्या हुए आज मेरे नाज़ उठाने वाले ?
 हैं कहां कंदे-गुलामी से छुड़ाने वाले ?

पत्थर की दीवार

क्या कहूं भयानक है
 या हसीं है ये मन्ज़र
 ख़्वाब है कि बेदारी
 कुछ पता नहीं चलता
 फूल भी हैं, साये भी
 खाक भी है, पानी भी
 आदमी भी, मेहनत भी
 गीत भी हैं, आंसू भी
 फिर भी एक ख़ामोशी
 रूहो-दिल की तनहाई
 इक तवील सन्नाटा
 जैसे सांप लहराये
 माहो-साल^१ आते हैं
 और दिन निकलते हैं
 जैसे दिल की बस्ती से
 अजनबी गुज़र जाये

चीखती हुई घड़ियां
 ज़ख़्म-ख़ुर्दा तायर^२ हैं
 नर्म-रौ सुबक लमहे^३
 मुंजमिद^४ सितारे हैं

१. महीने और साल २. घायल पक्षी ३. मन्द गति से चलने वाले
 हल्के-फुल्के क्षण ४. जमे हुए

रेंगती हैं तारीखें
 रोज़ो-शब की राहों पर
 ढूंढते हैं चश्मो-दिल
 नक्शे-पा^१ नहीं मिलते
 ज़िन्दगी के गुलदस्ते
 जेब्रे-नाक़े-नशियां^२ है
 पत्तियों की पलकों पर
 ओस जगमगाती है
 इमलियों के पेड़ों पर
 धूप पर सुखाती है
 आफ़ताब हंसता है
 मुस्कराते हैं तारे
 चांद के कटोरे से
 चांदनी छलकती है
 जेल की फ़ज़ाओं में
 फिर भी इक अंधेरा है
 जैसे रेत में गिरकर
 दूध जड़ब हो जाये
 रीशनी के गालों पर
 तीरगी^३ के नाखुन की
 सैंकड़ों ख़राशें हैं

पत्थरों की दीवारें !

१. पद-चिह्न २. झूली हुई बातों के ताक़वे की शोभा ३. अंधकार

बारकों की तामीरें^१
 अजदहों के पैकर^२ हैं
 जो नये असीरों को^३
 रात-दिन निगलते हैं
 उनके पेट का दोज़ख
 कोई भर नहीं सकता

पत्थरों की दीवारें !

भूख का भयानक रूप
 चक्कियों के भड़े राग
 रोटियों के दांतां में
 रेत और कंकर हैं
 दाल के पियालों में
 ज़र्द-ज़र्द पानी है
 चावलों की सूरत पर
 मुफ़िलसी बरसती है
 सब्ज़ियों के ज़रूमों से
 पीप - सी टपकती है

पत्थरों की दीवारें !

दर्दों-ग़म के पैरों में
 आंसुओं की जंजीरें
 बेबसी की महफ़िल में
 हसरतों की तक़रीरें

रस्सियों की गांठों में
 बाजुओं की गोलाई
 नीम-जान कदमों में
 बेड़ियों की सहनाई
 हथकड़ी के हल्कों में
 हाथ कसमसाते हैं
 फांसियों के फंदों में
 गरदन तड़पती हैं

पत्थरों की दीवारें !

जो कभी नहीं रोतीं
 जो कभी नहीं हंसतीं
 उनके सख्त चेहरों पर
 रंग है न गाज़ा है
 खुरदरे लबों पर सिर्फ़
 बेहिसी की मोहरें हैं

पत्थरों की दीवारें !

पत्थरों के सीने हैं
 जिनमें खून के क़तरे
 दूध बन नहीं सकते
 पत्थरों के दफ़तर हैं
 पत्थरों की मिसलें हैं
 पत्थरों के जेलर हैं
 वार्डर हैं पत्थर के
 पत्थरों के नम्बरदार

पत्थरों की दीवारें !

पत्थरों के फ़र्श और छत
 पत्थरों की महाराबें
 पत्थरों के बाजू हैं
 पत्थरों के दरवाज़े
 पत्थरों की अंगड़ाई
 पत्थरों के पंजों में
 आहनी सलाखें हैं

और इन सलाखों में
 हसरतें तमन्नायें
 आरजूएँ, उम्मीदें
 ख़ाब और ताबीरें^१
 अश्क^२, फूल और शबनम
 चाँद की जवां नज़रें
 धूप की सुनहरी जुल्फ़
 बादलों की परछाई
 सुबहो-शाम की परियाँ
 मौसमों की लैलायें
 सूलियों पे चढ़ती हैं

और इस अंधेरे में
 सूलियों के साये में
 इंक़लाब पलता है
 तीरगी के^३ कांटों पर
 आफ़ताब चलता है
 पत्थरों के सीने से

सुख हाथ उगते हैं
 हाथ हैं कि तलवारें
 रात की सियाही में
 जैसे शम्भू जलती है
 उंगलियां फुरोजां हैं^१
 वारकों के कोनों से
 साजिशें निकलती हैं
 खामशी की नब्जों में
 घंटियाँ सी बजती हैं

जाने कैसे क़ैदी हैं
 किस जहां से आये हैं
 नाखुनों में कीलें हैं
 हड्डियां शिकस्ता^२ हैं
 नौजवान जिस्मों पर
 पैरहन^३ हैं जख्मों के
 लेनिनी जबीनों पर^४
 खून की लकीरें हैं
 अश्क आग के क़तरें
 सांस तुन्द आंधी है
 बात है कि तूफ़ान है
 अबरुओं का^५ जुबिश में
 अज़म^६ मुस्कराते हैं
 और निगह की लज़िश में
 होसले मचलते हैं

१. चमक रही हैं २. जर्जर ३. वस्त्र ४. लेनिन के विचार रखने
 वाले माथे (मस्तिष्क) पर ५. भवों की ६. संकल्प

त्योरियों को शिकनों में
नक्शे-पा^१ बग़ावत के

जितना जुल्म सहते हैं
और मुस्कराते हैं
जितने दुख उठाते हैं
और गीत गाते हैं
जहर और चढ़ता है
जालिमों की शिद्दत पर
जुल्म चीख उठता है
उनके लब नहीं हिलते
उनके सर नहीं झुकते
इक सदा निकलती है
“इंक्रिलाब जिन्दाबाद !”

खाक़े-पाक^२ के बेटे
खेतियों के रखवाले
हाथ कारख़ानों के
इंक्रिलाब के शहपर
कार्ल मार्क्स के शाही^३
पत्थरों की कोरों पर
आँधियों की राहों में
बिजलियों के तूफ़ान में
गोलियों की बारिश में
सर उठाये बैठे हैं

इंक्रिलाब - सामां है
 हिन्द की फ़ज़ा सारी
 नज़्म के है आलम में^१
 ये नज़ामे - ज़रदारी^२
 वक़्त के महल में है
 जश्ने - नौ^३ की तैयारी
 जश्ने - आम जमहूरी^४
 इक़्तिदारे - मजदूरी^५
 ग़र्क़े-आतिशो - आह्न^६
 बेकसी - ओ-मजबूरी
 मुफ़िलसी-ओ - नादारी

तीरगी के बादल से
 जुगनुओं की बारिश से
 रक्स में शरारे हैं
 हर तरफ़ अंधेरा है
 और इस अंधेरे में
 हर तरफ़ शरारे हैं
 कोई कह नहीं सकता
 कौन सा शरारा कब
 बेकरार हो जाये
 शोलाबार हो जाये^७
 इंक्रिलाब आ जाये ।

१. दम तोड़ने की स्थिति में २. पूंजीवादी व्यवस्था ३. नया जश्न
 ४. जनतंत्र ५. मजदूरों का शासन ६. लोहे और आग में डूब गई है
 ७. भड़क उठे



‘मख्दूम’ मुहोउद्दीन

बिखरी हुई रंगी किरनों को आंखों से चुनकर लाता हूँ
फ़ितरत के परेशां नग़मों से फिर अपना गीत बनाता हूँ

परिचय

“ ‘मख्दूम’ इन दिनों अंडर-ग्राउंड (Under-ground) है ।”

“ ‘मख्दूम’ इन दिनों जेल में हैं ।”

“ ‘मख्दूम’ पर हिंसा द्वारा क्रांति लाने का दोष लगाया गया है ।”

“ ‘मख्दूम’ हैदराबाद स्टेट एसेम्बली का मैम्बर चुन लिया गया है ।”

“ ‘मख्दूम’ ने अमुक जल्से में दो घंटे तक भाषण दिया और जनता ने उसे कंधों पर बिठाकर उसका जुलूस निकाला ।”

ये और इस प्रकार की अनगिनत खबरों के साथ-साथ कभी-कभी यह खबर भी सुनने में आ जाती है कि “ ‘मख्दूम’ ने एक नई नज़्म लिखी है और वह अमुक-अमुक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है ।” और लोग उसी शौक से उन पत्रिकाओं के पन्ने उलटने लगते हैं कि जिस शौक से वे ‘मख्दूम’ को देखने और उसका भाषण सुनने जल्सागाहों की ओर लपकते हैं ।

मेरे इस लेख का विषय यद्यपि ‘मख्दूम’ के साहित्यिक जीवन और उसकी शायरी तक सीमित है लेकिन मैं शायर ‘मख्दूम’ और राजनीतिज्ञ ‘मख्दूम’ के बीच कोई विभाजन-रेखा खींचने में स्वयं को असमर्थ पा रहा हूँ । वास्तव में ‘मख्दूम’ की शायरी ही उसकी राजनीति है और उसकी राजनीति उसकी शायरी । और इन दोनों का सम्मिश्रण वह स्वयं है ।

‘मख्दूम’ मुहीउद्दीन का जन्म १९१० में हैदराबाद के एक साधारण घराने में हुआ । अपने शिक्षा-काल में ही उसका सम्बन्ध विद्यार्थियों के आन्दोलनों से बहुत गहरा था और हैदराबाद की ‘निज़ाम-शाही’ के अत्याचारों और वहाँ की

जनता की दुर्दृष्टि देखकर तो वह बेतरह तड़प उठता था, रो देता था। इसके अतिरिक्त पत्रों पर जो उसे देश की पराधीनता का कटु अनुभव होता था उन मसस्त श्रुतियों ने मिल-जुलकर एक सीधे-सादे, सरल-स्वभाव विद्यार्थी के मन-मस्तिष्क में एक ऐसा विष घोल दिया कि उसने न केवल अपने खेलने-खाने के दि, न केवल अपनी जवानी की खूबसूरत बहारें, बल्कि जनता के कल्याण और देश की स्वतंत्रता के संग्राम में अपना सब-कुछ अर्पण कर दिया। अपने और वीवी-बच्चों के गुजारे का अच्छा-खासा साधन हैदराबाद सिटी कालेज की प्रोफेसरी छोड़कर वह कम्युनिस्ट पार्टी का Whole-timer सदस्य बन गया। और आज अपनी अनथक सेवा तथा वलिदान द्वारा वह हैदराबाद का एक ग़िय जन-नेता है। लोग उसके पास अपने दुख-दर्द का दुखड़ा लेकर आते हैं और वह स्वयं भी उनका दुख-दर्द बटाने उनकी अंधेरी और सेलन-भरी कोठरियाँ और घास-फूस की भोंपड़ियों में जाता है। हैदराबाद का कोई राजनीतिक तथा साहित्यिक अधिवेशन उस समय तक फीका प्रतीत होता है जब तक 'मरुदूम' जसमें भाग न ले।

'मरुदूम' से मुलाकात से पहले मेरे मस्तिष्क में उसका एक विचित्र चित्र था। तालिगाना-संग्राम के समाचार पढ़-पढ़ कर (जिसका वह हीरो था) मेरे मस्तिष्क में उसके नैन-नक्श बहुत भयानक रूप धारण करते गये। मैं उसे एक ऐसे मार्शल लीडर के रूप में देखने लगा जो केवल आदेश देना जानता है और किसी प्रकार की अवज्ञा सहन नहीं कर सकता। अपनी कुछ नज़्मों में भी वह मुझे पाषाण दीखता था। विशेषतः जब कभी मैं उसकी नज़्म 'अंधेरा' की ये पंक्तियाँ पढ़ता :

बाड़ के तारों में उलभे हुए इन्सानों के जिस्म,
और इन्सानों के जिस्मों पे वो बैठे हुए गिद्ध,
वो तड़खते हुए सर,
मय्यतें^१ हाथ कटी, पांव कटी,

या 'मशरिक़' की ये पंक्तियाँ :

एक नंगी नाश बे-गोरो-कफ़न^२ ठिठरी हुई,
मशरबी चीलों का लुक़मा^३ खून में लिथड़ी हुई,

एक क़ब्रिस्तान जिसमें नौहाख़्वा^१ कोई नहीं
 एक भटकी रूह है जिसका मकां कोई नहीं
 इस ज़मीने-मौत-परवर्दा^२ को ढाया जाएगा ।

इक नई दुनिया, नया आदम बनाया जाएगा ॥

तो उसके खँचे हुए इन चित्रों से मेरे शरीर के रौंगटे खड़े हो जाते और मैं नज़्म की पंक्तियों से नज़रें हटाकर जेल, फ़ाक़ा, भीख, गोली, खून अदि शब्दों के इस शायर के व्यक्तित्व के सम्बंध में विचित्र बातें सोचने लगता था। लेकिन १९५२ में जब पहली बार कलकत्ता में सांस्कृतिक समारोह के अवसर पर और फिर देहली में एक शान्ति-सम्मेलन में मेरी उससे भेंट हुई और मुझे काफ़ी समीप से उसे देखने का मौक़ा मिला तो मेरी कल्पना के नितांत विपरीत वह मुझे अत्यन्त आकर्षक तथा सरल-स्वभाव व्यक्ति दिखाई दिया । मैंने उसे बच्चों के साथ बच्चा बनते, उन्हीं की तरह तोतली ज़बान में उनसे बातें करते और उनके खिलौनों के लिए अपनी जेबें उलटते देखा । विद्यार्थियों के साथ विद्यार्थियों की समस्याओं पर विद्यार्थियों ही की तरह भावुक ढंग से बातें करते और लतीफ़े सुनाते देखा । लेखकों तथा कवियों की बैठक में अपनी नज़्म पर दाद पाकर इस प्रकार प्रसन्न होते देखा जैसे उसे जीवन में पहली बार दाद मिल रही हो और वह उन सबको अपने से कहीं बड़ा और आदरणीय लेखक और कवि समझता हो, और मैं समझता हूँ कि 'मरुदूम' की प्रतिष्ठा में जहाँ उसके राजनीतिक काम तथा कलाकौशलता का हाथ है वहाँ उसकी लोकप्रियता में उसके इन स्वाभाविक गुणों का भी बहुत बड़ा योग है । बच्चे उसे बच्चा समझते हैं, विद्यार्थियों में वह विद्यार्थी नज़र आता है, मजदूरों के जलसे में उसे एक पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी के रूप में पहचानना काफ़ी कठिन हो जाता है । किसान उसे किसान भैया समझते हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी स्त्रियाँ भी उसे अपना सहजातीय समझ बैठती हैं और निःसंकोच उसे अपने मन का भेद बता देती हैं । इस प्रसंग में मुझे देहली की एक घटना कभी नहीं भूलती ।

एक बार जब एक छोटी-सी बैठक में 'मरुदूम' अपनी प्रसिद्ध रोमान्टिक नज़्म 'इन्तज़ार' सुना चुका तो एक नौजवान लड़की ने, जो उसकी नज़्म से बहुत प्रभावित मालूम होती थी, उसे अलग लेजाकर कहा कि वह चाहती है कि उसका प्रेमी इस नज़्म को अवश्य सुने, लेकिन उसे यह पता न चले कि इसके पीछे उसकी प्रेमिका का हाथ है ।

‘मख्दूम’ के हामी भरने पर लड़की ने बताया कि उसका प्रेमी देहली में नहीं बल्कि देहली से तीन सौ मील दूर अमृतसर में रहता है। अतएव तै पाया कि दूसरे दिन प्रातः समय ‘मख्दूम’ उसके प्रेमी को ट्रंक-काल करेगा और टेलीफोन पर उसे वह नज़्म सुना देगा। और सचमुच दूसरे दिन अपने सौ काम छोड़कर ‘मख्दूम’ टेलीफोन पर उस लड़की के प्रेमी से कह रहा था :

रात भर दीदा-ए-नमनाक^१ में लहराते रहे।

सांस की तरह से आप आते रहे, जाते रहे ॥

‘मख्दूम’ की शायरी का प्रारंभ उस ज़माने में हुआ जब ‘अंगारे’ (सज्जाद जहीर, रशीदजहाँ, अहमद अली आदि प्रगतिशील लेखकों की रचनाओं का एक संकलन—१९३४, जिसे अंग्रेज़ी सरकार ने ज़व्त कर लिया था) के प्रकाशन द्वारा परम्परागत साहित्य के विरुद्ध एक विद्रोह शुरू हुआ था। नये लेखक उर्दू साहित्य को नये से नया विषय दे रहे थे, नई से नई शैली से परिचित करा रहे थे लेकिन प्रयोगकाल होने के कारण साहित्य के लगभग प्रत्येक विद्रोही के यहाँ अभी कलात्मक निपुणता नहीं आई थी। ‘मख्दूम’ की प्रारंभिक शायरी में भी कई जगह भाषा आदि की त्रुटियाँ मिलती हैं लेकिन यदि उसकी अन्तर्चेतना को देखा जाय तो वह एक स्वाभाविक शायर है और कला के उपनियमों से अलग रहकर वह अपने दिल के टुकड़े कागज़ पर रख देता है। उसकी शायरी में पहाड़ी भरनों ऐसा वेग भी है और मैदानी नालों ऐसी हंस की चाल भी। अपनी शायरी द्वारा वह जनता की सांस्कृतिक भूख भी मिटाता है और उन्हें नये जीवन तथा नये समाज के निर्माण के लिए प्रयत्नशील होने पर भा उकसाता है। अपने समकालीन शायरों को सम्बोधन करते हुए एक बार उसने कहा था :

“तुम अपनी कला, कविता का प्रकाश लेकर जनता के अँधेरे दिलों में उतरते हो। अत्याचारी शासक वर्ग ने उन्हें विद्या, साहित्य, सभ्यता और संस्कृति के सद्गुणों से वंचित कर रखा है। वे प्यासों की तरह तुम्हारे गिर्द एकत्र हो जाते हैं। उन्हें तुम्हारे शराब के भबकों की आवश्यकता नहीं; उनके जीवन में पहले ही बहुत-सी गन्दगियाँ मौजूद हैं।”

और उसका यह कथन ही उसकी शायरी का तात्त्विक गुण है। उसके समीप शायर अपनी शायरी और कला का सम्मान तभी कर सकता है जब वह अपने देश की जनता तथा उसकी स्वतंत्रता और समृद्धि का सम्मान करे। और जहाँ

तक उसके अपने व्यक्तित्व का सम्बंध है वह न केवल जनता की स्वतंत्रता और समृद्धि के संग्राम का सम्मान करता है बल्कि तन, मन, धन हर तरह से उस संग्राम में अपना योग दे रहा है। हैदराबाद के तरुण शायरों के लिए तो वह एकदम पूजनीय है। वहाँ का कोई तरुण उर्दू लेखक अथवा शायर ऐसा नहीं जो 'मख्दूम' से और 'मख्दूम' की शायरी से प्रभावित न हुआ हो और जिसने 'मख्दूम' के ढंग में नज़में लिखने का प्रयास न किया हो।

हैदराबाद के तरुण लेखक तथा शायर ही नहीं, हैदराबाद की जनता को भी उसके प्रति असीम स्नेह तथा श्रद्धा है। इस स्नेह तथा श्रद्धा का एक उदाहरण देखिये : वहाँ का एक व्यक्ति जिसने 'मख्दूम' को केवल दूर से देखा था, उस से इतना प्रभावित हुआ कि उसने 'मख्दूम' जैसी अपनी धज बना ली। उसी कोमल स्वर में बातचीत करने लगा, उसी जैसे वस्त्र पहनने लगा, यहाँ तक कि जब उसे मालूम हुआ कि 'मख्दूम' का वज़न उसके वज़न से कम है तो उपवास करके उसने अपना वज़न कम कर लिया। यह तो ख़ैर एक व्यक्ति का उदाहरण है, ज़रा इस स्नेह तथा श्रद्धा का अनुमान लगाइये : एक बार 'मख्दूम' हैदराबाद के एक दस हजार के जनसमूह में भाषण दे रहा था और शहर में उसकी गिरफ़्तारी की ख़बरें उड़ रही थीं। सभा समाप्त हो गई लेकिन लोग उसी प्रकार बैठे रहे। 'मख्दूम' ने इसका कारण पूछा तो लोगों ने बताया "हम आपको छोड़कर नहीं जा सकते, वरना हकूमत आपको गिरफ़्तार कर लेगी।" 'मख्दूम' के लाख समझाने पर भी लोग टस से मस न हुए। परेशान होकर उसने कहा "अच्छा आप लोग यहाँ बैठे रहिये मैं जाता हूँ।" लेकिन वहाँ बैठे रहने की बजाय वह पूरा जनसमूह 'मख्दूम' के साथ हो लिया और जब एक मित्र के मकान पर पहुँच कर ' ' ने फिर कहा कि "मुझे तो आपने घर पहुँचा दिया, अब आप लोग भी अपने-अपने घर जाइये।" तो भी कोई वापस जाने को तैयार न हुआ और वे सब बाहर खड़े उसका प्रसिद्ध गीत :

ये जंग है जंगे-आज़ादी !

आज़ादी के परचम के ...

गाते रहे ।

'मख्दूम' 'नौरस', 'अंधेरा', 'इंतज़ार', 'इक़िलाब', 'मशरिक', 'हवेली', 'क़ैद' इत्यादि बहुत-सी सुन्दर नज़मों का रचयिता है, लेकिन जिस गीत या नज़म ने उसे सबसे अधिक ख्याति प्रदान की और जनता का प्रिय शायर बनाया वह गीत या नज़म यही 'जंगे-आज़ादी' है। यह गीत उसने १९४२ के आन्दोलन-काल में लिखा

था जब कांग्रेस पार्टी गैरकानूनी पार्टी करार दे दी गई थी। समस्त नेता जेलों में डाल दिये गये थे और चारों ओर एक विचित्र प्रकार की विवशता-सी नज़र आती थी। ऐसे में साहित्यकारों की समझ में भी कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करें। 'मल्लूम' ने यह गीत लिख कर उन्हें एक मार्ग सुझाया और केवल साहित्यकारों ही का नहीं स्वतंत्रता-प्रेमी जनता का भी पथ-प्रदर्शन किया। साहित्यिक दृष्टि से कुछ समालोचकों ने इस गीत के बारे में कहा था कि "यह प्रौपेगंडा है, इसका काव्य-विषय स्थायी नहीं। युद्ध समाप्त होते ही किसी को इसका एक शब्द तक याद नहीं रहेगा।" लेकिन 'मल्लूम' के इस गीत ने सिद्ध कर दिखाया कि यदि लेखक और कवि आत्मानुभव के आधार पर साहित्य की रचना करें तो साहित्य अपने समय के साथ कभी समाप्त नहीं होता। आज देश स्वतंत्र है, आज युद्ध समाप्त हो चुका है लेकिन 'मल्लूम' का यह गीत आज भी भारत के कोने-कोने में गाया जाता है और कई मजदूरों और किसानों के जल्सों का तो श्रीगणेश ही इस गीत से होता है। मेरे समीप लोकप्रियता की यह उपाधि सैंकड़ों साहित्यिक समालोचनाओं पर भारी है और मैं समझता हूँ कि इसका एकमात्र कारण वही है कि 'मल्लूम' जो कुछ भी लिखता है महसूस करके लिखता है, उसमें उसके अपने दिल की धड़कनें विद्यमान होती हैं।

'मल्लूम', केवल एक कविता-संग्रह 'सुख सवेरा' का रचयिता है और अपनी असाधारण राजनीतिक व्यस्तताओं के कारण एक समय से उसने शायरी छोड़ रखी है, लेकिन इन गिनती की कलाकृतियों के बावजूद आधुनिक उर्दू शायरी में उसका स्थान स्थायी रूप से बना रहेगा।

जंगे-आज़ादी

ये जंग है जंगे - आज़ादी

आज़ादी के परचम के तले

हम हिन्द के रहने वालों की महक्मों की मजदूरों की
आज़ादी के मतवालों की दहकानों की^१ मजदूरों की

ये जंग है जंगे - आज़ादी

आज़ादी के परचम के तले

सारा संसार हमारा है पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खन
हम अफ़रंगी हम अमरीकी हम चीनी जांबाज़े-वतन
हम सुख सिपाही ज़ुल्म-शिकन आहन पैकर फ़ौलाद 'बदन'^२

ये जंग है जंगे - आज़ादी

आज़ादी के परचम के तले

वो जंग ही क्या वो अमन ही क्या दुश्मन जिसमें ताराज^४ न हो
वो दुनिया, दुनिया क्या होगी जिस दुनिया में सौराज न हो
वो आज़ादी आज़ादी क्या मजदूर का जिसमें राज न हो

ये जंग है जंगे - आज़ादी

आज़ादी के परचम के तले

१. किसानों की २. अत्याचारों का उन्मूलन करने वाले ३. लोहे का शरीर रखने वाले ४. समाप्त

लो सुख सवेरा आता है आजादी का आजादी का
गुलनार तराना गाता है आजादी का आजादी का
देखो परचम लहराता है आजादी का आजादी का

ये जंग है जंगे - आजादी

आजादी के परचम के तले

हम हिन्द के रहने वालों की महक्कों की मजदूरों की
आजादी के मतवालों की दहकानों की मजदूरों की

ये जंग है जंगे - आजादी

आजादी के परचम के तले ॥

इंतिजार

रात भर दीदा-ए - नमनाक में^१ लहराते रहे ।
 सांस की तरह से आप आते रहे जाते रहे ॥
 खुश थे हम अपनी तमन्ना का जवाब आयेगा ।
 अपना अरमान बर-अफ़गंदा-निकाब^२ आयेगा ॥
 नज़रें नीची किए शर्मिये हुए आयेगा ।
 काकुलें^३ चेहरे पे बिखराये हुए आयेगा ॥
 आगई थी दिले - मुज़तर^४ में शिकेबाई^५ सी ।
 बज रही थी मेरे गम - खाने में शहनाई सी ॥
 पत्तिया खड़कीं तो समझा कि लो आप आ ही गये ।
 सजदे मसरूर कि माबूद^६ को हम पा ही गये ॥
 शब के जागे हुए तारों को भी नींद आने लगी ।
 आप के आने की इक आस थी अब जाने लगी ॥
 सुबह ने सेज से उठते हुए ली अंगड़ाई ।
 ओ सबा^७ ! तू भी जो आई तो अकेली आई ॥
 मेरे महबूब मेरी नींद उड़ाने वाले ।
 मेरे मसज़ूद^८ मेरी रूह पे छाने वाले ॥
 आ भी जा ताकि मेरे सजदों का अरमां निकले ।
 आ भी जा ताकि तेरे कदमों पे मेरी जां निकले ॥

१. सजल नेत्रों में २. निकाब उतारे हुए ३. केश ४. बेकरार दिल
 ५. सन्तोष-सा ६. भगवान (जिस के लिए प्रार्थना की जाए), यहां प्रेयसी के
 अर्थों में आया है । ७. सुबह का मृदु पवन ८. महबूब

क्रंद

क्रंद है क्रंद की मीयाद नहीं
 जोर^१ है जोर की फर्याद नहीं, दाद^२ नहीं
 रात है रात की खामोशी है तनहाई है
 दूर महबस की^३ फसीलों से बहुत दूर कहीं
 सीना-ए-शहर की गहराई से, घंटों की सदा^४ आती है
 चौंक जाता है दिमाग
 झिलमिला जाती है अनफास की लौ
 जाग उठती है मेरी शम्मअ-शबिस्ताने-खयाल^५
 जिन्दगानी की इक-इक बात की याद आती है

शाहराहों में, गली-कूचों में इन्सानों की भीड़
 उनके मसरूफ़ कदम
 उनके माथे पे तरदुद^६ के नक़ूश^७
 उनकी नज़रों में ग़मे-दोश और अन्देशा-ए-फर्द^८ की झलक^९
 सैकड़ों-लाखों अवाम
 सैकड़ों-लाखों कदम
 सैकड़ों-लाखों धड़कते हुए इन्सानों के दिल
 जबरे-शाही से ग़म^{१०}, जोरे-सियासत से निढाल
 जाने किस मोड़ पे वो धन से धमाका बन जाएँ ?

१. अत्याचार २. न्याय ३. जेलखाने की ४. आवाज़ ५. विचारों
 के शयनगृह का दीपक ६. परिश्रम ७. रेखायें ८. अतीत के दुखों और
 भविष्य की आशंकाओं की झलक ९. दुखी, पीड़ित

सालहा-साल की अफ़सुर्दा-ओ-मजबूर जवानी की उमंग
 तौक़ो-ज़ंजीर से लिपटी हुई सो जाती है
 करवटें लेने में ज़ंजीर की झनकार का शोर
 ख़्वाब में जीस्त^१ की शोरिश का^२ पता देता है
 मुझ को शम है कि मेरा गंजै-गिरांमाया-ए-उम्र^३
 नज़्मे-ज़िन्दान^४ हुआ
 नज़्मे-आज़ादी-ए-ज़िन्दाने-वतन^५ क्यों न हुआ ?

१. जीवन २. हंगामे का ३. आयु-रूपी बहुमूल्य धन ४. जेलखाने की
 भेंट ५. देश-रूपी जेलखाने की आज़ादी की भेंट

फुटकर शेर

गिरेबां चाक महफ़िल से निकल जाऊं तो क्या होगा ?
 तेरी आंखों से आंसू बन के ढल जाऊं तो क्या होगा ?
 जुनू की लगज़िशें^१ खुद पर्दा-दारे-राज़े-उलफ़त^२ हैं ।
 जो कहते हो संभल जाओ, संभल जाऊं तो क्या होगा ?

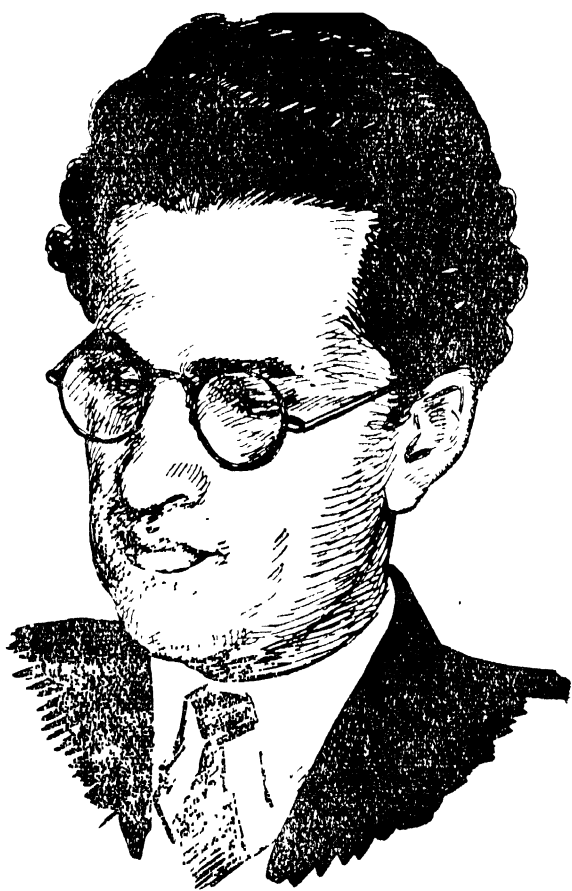
◇ ◇ ◇

तूने किस दिल को दुखाया है तुझे क्या मालूम ?
 किस सनमखाने को ढाया है तुझे क्या मालूम ?
 हम ने हँस-हँस के तेरी बज़म^३ में ऐ पैकरे-नाज़ !
 कितनी आहों को छुपाया है तुझे क्या मालूम ?

◇ ◇ ◇

कितने लब^४ कितनी जबीनें^५ कितने जलवे कितने तूर,
 कितनी सुबहों का उजाला कितने नगमों का सरूर ।
 कितनी नौ-आगाज़ कलियाँ^६ , कितने खुशबूदार फूल,
 मेरी ठंडी सांस पर होते हैं रंजूरो - मलूल^७ ।
 कितने संगीं - दिल^८ हैं जो मेरे नशे में चूर हैं,
 कितनी रातें हैं कि मेरे नाम से मशहूर हैं ।

१. उन्माद की डगमगाहट २. प्रेम के भेद की पर्दादार ३. महफ़िल
 ४. होंट ५. माथे ६. नव कलियाँ ७. दुखी, उदास ८. पत्थर-दिल



अहमद 'नदीम' क्रासमी

नौजवां सीनों में मुस्तक़बिल की करता हूँ तलाश
मक़बरो में ढूँडता हूँ, गुज़रे वक्तों के क़दम

परिचय

“आदर ! आदर ! आदर ! नदीम कासमी आ रहा है ।” और आदरवश पूरा वातावरण दम साध लेता है । यह एक विचित्र प्रकार का उल्लास-मिश्रित भय है जो ‘नदीम’ कासमी के आते ही महफिल पर छा जाता है और सब लोग उस जादू-भरे भय में लिपटे-लिपटाये झूलते रहते हैं ।”

अहमद ‘नदीम’ कासमी के सम्बन्ध में उर्दू के एक लेखक ‘फ़िक्र’ तौन्सवी के इन शब्दों का अर्थ केवल वही लोग समझ सकते हैं, जो व्यक्तिगत रूप से अहमद ‘नदीम’ कासमी को जानते हों या जिन्होंने उसे किसी महफिल में आते हुए देखा हो । यह बड़ी विचित्र वास्तविकता है कि अहमद ‘नदीम’ कासमी के बुजुर्ग रिश्तेदार और बुजुर्ग साहित्यकार भी कि जिनके सामने स्वयं कासमी को सादर झुक जाना चाहिये उसकी उपस्थिति में उसके प्रति प्रेमभाव के साथ-साथ श्रद्धाभाव में भी अस्त हो जाते हैं, उसकी किसी बात का उत्तर देने की बजाय उसकी हाँ में हाँ मिलाने लगते हैं, यहां तक कि कभी-कभी स्वयं कासमी को इस पर उलझन होने लगती है ।

जहाँ तक उसके सम्बन्धियों का सम्बन्ध है मेरे विचार में उनकी श्रद्धा का कारण कुछ धार्मिक मान्यतायें हैं क्योंकि वह एक ‘पीरजादा’ है और स्वयं कासमी के कथनानुसार उसने अपने जूतों को उन मुरीदों के समूह में इस प्रकार गायब होते देखा है कि प्रत्येक व्यक्ति की आंखें उन्हें चूमकर चमक उठीं और हर मुरीद के चेहरे पर बहुत बड़े धार्मिक बुजुर्ग के सुपुत्र के जूतों को छूकर एक दैवी तेज छा गया । और चूंकि उसने अपने जीवन में कभी अपने बुजुर्गों

को किसी शिकायत का मौका नहीं दिया और अपने सदाचार में कोई भ्रुति उत्पन्न नहीं होने दी, इसलिए उसके बुजुर्ग उससे अत्यन्त स्नेह तथा श्रद्धा से पेश आते हैं; लेकिन आस्तिक और नास्तिक, प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी हर श्रेणी के शायर और लेखक क्यों इतने आदर तथा सम्मान से उसका नाम लेते हैं और क्यों उससे इतने प्रभावित हैं, यह भेद बिना उससे मिले या उसकी रचनाओं का अध्ययन किये समझ में नहीं आ सकता ।

उससे मिलने और उसकी रचनाओं का अध्ययन करने से जो बात हमें सबसे पहले अपनी ओर खेंचती है, वह है उसके व्यक्तित्व और उसकी कला में विमलता । एक बड़े कलाकार के लिए जहां कई और गुणों की आवश्यकता होती है वहां उसमें विमलता का गुण सब से आवश्यक और अनिवार्य है । कोई कलाकार उस समय तक महान साहित्य की रचना नहीं कर सकता जब तक कि अपने विचारों-भावनाओं और सिद्धांतों को बिना किसी प्रकार की लीपापोती के कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने की उसमें क्षमता और साहस न हो । अहमद 'नदीम' कासमी की शायरी का क्रमशः अध्ययन करने से हम उसके किसी काल के सिद्धांतों से तो असहमत हो सकते हैं लेकिन उसकी कलात्मक विमलता से किसी प्रकार इन्कार नहीं कर सकते । और यह उसकी कलात्मक विमलता ही है कि जिसके कारण मित्र तथा शत्रु सभी उसका इतना आदर करते हैं ।

आधुनिक उर्दू साहित्य का यह आदरणीय शायर जिसका असल नाम अहमद शाह है २० नवम्बर १९१६ को जिला शाहपुर (पश्चिमी पंजाब) के एक छोटे से पहाड़ी गांव अंग्रा में पैदा हुआ । 'पीरजादा' होने पर भी घर की हालत किसी निर्धन-से-निर्धन 'मुरीद' के घर से बदतर थी । पिता के देहान्त के बाद चूंकि "पहनने को मोटा-भोटा, खाने को जंगली साग और आग तापने को अपने ही हाथों से चुने हुए उपले" रह गये थे इसलिए शिक्षा-दीक्षा के लिए उसे अपने सम्बन्धियों के हाथों की ओर देखना पड़ा और १९३५ में बी० ए० करने के बाद तो परिस्थितियों ने उसके साथ और भी मजाक किये । अपने उन दिनों के बारे में वह स्वयं लिखता है कि :

"अपने एक सम्बन्धी की आर्थिक सहायता और कुछ अपनी हिम्मत से मर-मिटकर १९३५ में बी० ए० किया और अब यह परवाना हाथ में लेकर और कुछ खानदानी उपाधियों का पुलंदा कांधों पर लादकर और पश्चिमी शिष्टाचार और विनय-रीति रटकर मैंने नौकरी की भीख मांगना शुरू की । १९३५ से १९३९ तक लगभग पूरे पंजाब का चक्कर लगाया । खानदान के

पुराने अभिभावकों ने मुस्कराकर देखा और सहानुभूति प्रकट करते हुए सैर को निकल गये। एक्स्ट्रा-एसिस्टेंट कमिशनरी, तहसीलदारी और नायब-तहसीलदारी से लेकर अंजुमने-हिमायते-इस्लाम में क्लर्की तक के लिए नित नये ढंग से दस्तावेज लिखीं, रिफार्म-कमिशनर के दफ्तर में बीस रुपये मासिक पर मुहरंरी करता रहा। ज़िला मिंटगुमरी में नौ दिन टैलीफोन आपरेटर रहा। प्रकाशन विभाग (पंजाब) की पत्रिका 'तहज़ीबे-निसवां' के लिए अंग्रेज़ी कहानियों का अनुवाद करता रहा। एक महाशय को पांच सौ पन्नों की एक पुस्तक चालीस रुपये के बदले लिख दी (जो अब तक उन्हीं के नाम से खूब बिक रही है)। रावलपिंडी में टाइप सीखता रहा। पंचायत विभाग से लेकर आर्मी एकाउंट्स विभाग के दफ्तरों में मेरा नाम उम्मीदवार के तौर पर दर्ज रहा। साथ-साथ मांगे-तांगे का लिबास पहनकर डिप्टी-कमिशनरों और फ़िनानशल-कमिशनरों की इयोडियों पर सलामी देता फिरा : “मेरे अमुक बुजुर्ग ने अंग्रेज़ जनरल मैक्वेल को मनीपुर सेनाओं का खुफ़िया पता दिया और ‘शेरदिल’ की उपाधि प्राप्त की” — “मेरे अमुक सम्बन्धी ने तिब्बत के मोर्चे पर विजय पाने में लार्ड कर्जन को यह सहायता दी” — “मेरे अमुक रिश्तेदार को महायुद्ध में सिपाही भरती कराने के पुरस्कार-स्वरूप इतने तमग़े और उपाधियां प्रदान की गईं”

लेकिन ऐसी कड़ी परिस्थितियों में से गुज़रने के बावजूद जबकि उसे तीन-तीन दिन के फ़ाक़े भी करने पड़े, जब एक बार उसे कहीं से कुछ क़लम की मज़दूरी मिल गई तो उसने बजाय जी भर के खाने के एक सिनेमा-हाल की राह ली। तीन बजे वहाँ से निकलकर एक और सिनेमा-हाल में घुस गया। शाम को वहाँ से निबटा तो एक और क्रीड़ास्थल में चला गया। रात के नौ बजे वहाँ से निकला तो जेब में एक और मनोरंजन का साधन मौजूद था अतएव एक और सिनेमा-हाउस में ऊँचे दर्जे का टिकट लेकर बैठ गया। जब वहाँ से एक बजे निकला तो जेब में केवल एक दक्कनी थी। “भूखा-प्यासा, बिना किसी मतलब के, नहर की ओर निकल गया। मन्दगति से बहते हुए पानी में सितारों का मटियाला प्रतिबिम्ब देखता रहा कि पौ फटी और मुझे महसूस हुआ कि कल सुबह से मैं अपने आप में नहीं हूँ—यह और इसी प्रकार की आवारगियाँ मेरे ऐसे नौजवानों के जीवन की प्रतिदिन की घटनायें हैं, लेकिन यहाँ मैं केवल अपना ज़िक्क कर रहा हूँ—एक शायर का ज़िक्क—जिसकी शायरी पर यदि ऐसी घटनाओं का प्रभाव न पड़े तो वह अपनी कला के प्रति

सच्चा नहीं। वह केवल नक्काल और अनुगामी हैं।”

अहमद 'नदीम' कासमी की शायरी में हमें किसी प्रकार की नक्काली या अनुकरण का आभास नहीं मिलता। अपने जीवन की विभिन्न घटनाओं के अनुभवों द्वारा (जिनका सिलसिला आज भी जारी है) उसने अपना एक अलग मार्ग निकाला और जिस समय जो महसूस किया बड़ी दयानतदारी से प्रस्तुत भी कर दिया। वह यदि उदास और मलिन हुआ तो हमें उदास टीलों, वीरान मरुस्थलों और उजाड़ खंडहरों में ले गया और झुकी हुई खजूरों, चकराते हुए बबूलों और बिना फूल-पत्ती के बबूलों द्वारा हमारे मन-मस्तिष्क में निराशा, विवशता और करुणा उत्पन्न की। प्रकृति और नारी के सौन्दर्य से प्रभावित हुआ तो हमें गाँव की सलोनी संध्याओं, मुस्कराते हुए चश्मों और गाते हुये पनघटों पर ले गया। उसने हमें धानी चूड़ियों की खनक सुनवाई। गोरी बाँहों की लचक और थरथराते झूमरों की फवन और ढोलक पर नाचती हुई कोमल उंगलियों की तड़प दिखाई। क्रोधित हुआ तो उसकी ललकार से धरती-आकाश काँपने लगे और जब सोचने के मूड में आया तो अपनी सोच के अनुसार सब गुथियाँ सुलझाकर रख दीं।

कासमी की 'सोच' का उल्लेख करते हुये मुझे अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि कोलरिज का यह कथन याद आ रहा है कि कोई व्यक्ति एक बड़ा कवि नहीं हो सकता जब तक कि वह एक विशाल-हृदय दार्शनिक न हो। इस कथनानुसार अहमद 'नदीम' कासमी की १९४५ (बल्कि १९४७) तक की शायरी में हमें किसी महान् दर्शन का पता नहीं चलता बल्कि 'इकबाल' की तरह यहाँ-वहाँ अनेक सिद्धान्त मिलते हैं जिनमें इस्लाम को पूरे विश्व की जीवन-व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करने की भावना सब से उभ्र है। लेकिन 'इकबाल' के विपरीत उसके सिद्धान्तों में धीरे-धीरे एकसारता और दो-टुक-पन आता गया और सामाजिक परिवर्तनों के बोध द्वारा उसने उस जीवन-दर्शन को पा लिया, जिसके बिना आज का शायर किसी प्रकार बड़ा शायर नहीं बन सकता। आज वह जनसाधारण के उस आन्दोलन से सम्बन्धित है, मनुष्य के सुन्दर भविष्य के लिए प्रतिक्रियावादी शक्तियों से लोहा ले रहा है।

क्लर्की, मुहर्ररी, एडिटररी, बेकारी और महकमा आबकारी ने यद्यपि उसे हर समय अपने लौह-केशों में जकड़े रखा और रचनात्मक कार्य करने का बहुत कम अवकाश दिया लेकिन उसकी मेहनत और सख्तजानी पर आश्चर्य होता

है जब हम देखते हैं कि उसकी लिखी हुई नज़्मों, ग़ज़लों, रुबाइयों, क़तअ्यों, कहानियों, ड्रामों और लेखों की गिनती करना न केवल कठिन बल्कि असम्भव है। मेरे सम्मुख इस समय उसके केवल तीन कविता-संग्रह 'रिमझिम', 'जलालो-जमाल' और 'शोला-ए-गुल' हैं और मैं इन पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या देखकर ही परेशान हो रहा हूँ कि अपनी इस संक्षिप्त-सी आयु में क्रासमी ने ये सब कैसे लिख लिया ?

क्रतए

देख री, तू पनघट पर जाकर मेरा जिक्र न छोड़ा कर,
क्या मैं जानूँ, कैसे हैं वो, किस कूचे में रहते हैं,
मैंने कब तारीफ़ों की हैं, उन के बांके नैनो की,
“वो अच्छे खुशपोश जवां हैं” मेरे भय्या कहते हैं।

◇ ◇ ◇
शहनाइयों के शोर में डोली जूँही उठी,
इक नौजवां कहीं से पुकारा मुझे बचाओ,
डोली से सर निकाल के बोली हसीं दुल्हन,
“क्या देखते हो, जाओ भी लिल्लाह^१ ! जाओ जाओ।”

◇ ◇ ◇
ढोल बजते हैं, दनादन की सदा^२ आती है,
फसल कटती है, लचकती है, बिछी जाती है,
नौजवां गाते हैं जब सांवले महबूब का गीत,
एक दोशीजा^३ ठिठक जाती है, शरमाती है।

◇ ◇ ◇

१. खुदा के लिए २. आवाज ३. कुमारी

फ़न*

एक रक्कासा^१ थी—किस-किस से इशारे करती ?
 आंखें पथराईं, अदाओं में तवाजन^२ न रहा,
 डगमगाई, तो सब अतराफ़^३ से आवाज़ आई—
 “फ़न के इस ओज^४ पे इक तेरे सिवा कौन गया ?”
 फ़र्श-मरमर पे गिरी, गिर के उठी, उठ के झुकी,
 खुश्क होंटों पे जुबां फेर के पानी मांगा,
 ओक उठाई तो तमाशाई संभल कर बोले,
 “रक्स का ये भी इक अंदाज़ है—अल्ला ! अल्ला !”
 हाथ फैले रहे, सिल-सी गई होंटों से जुबां,
 एक रक्कास किसी सिम्त^५ से नागाह^६ बढ़ा,
 पर्दा सरका, तो मअन^७ फ़न के पुजारी गरजे,
 “रक्स क्यों ख़त्म हुआ ? वक़्त अभी बाक़ी था !”

 *कला

१. नर्तकी २. संतुलन ३. ओर ४. शिखर ५. ओर ६. एकाएक
 ७. एकदम

वक्त

सरबर-आवुर्दा^१ सनोबर की घनी शाखों में
चांद बिल्लौर^२ की टूटी हुई चूड़ी की तरह अटका है
दामने-कोह की^३ इक बस्ती में
टिमटिमाते हैं मज्जारों पे चिराग
आस्मां सुरमई फ़रगल में सितारे टांके
सिमटा जाता है—भुका जाता है
वक्त बेदार^४ नज़र आता है ।

सरबर-आवुर्दा सनोबर की घनी शाखों में
सुबह की नुकरई^५ तनवीर^६ रची जाती है
दामने-कोह में बिखरे हुए खेत
लहलहाते हैं तो धरती के तनपफ़ुस^७ की सदा आती है
आस्मां कितनी बुलंदी पे है और कितना अज़ीम^८
नये सूरज की शुआओं का मुसफ़्फ़ा^९ आंगन
वक्त बेदार नज़र आता है !

सरबर-आवुर्दा सनोबर की घनी शाखों में
आफ़ताब^{१०} एक अलाओ की तरह रौशन है
दामने-कोह में चलते हुए हल
सीना-ए-दहर^{११} पे इन्सान की जबरूत^{१२} की तारीख़ रक़म^{१३}
करते हैं

आस्मां तेज़ शुआओं से है इस दर्जा गुदाज़^{१४}

१. ऊँचा २. कांच ३. पहाड़ के दामन की ४. जाग्रत ५. रुपहली
६. प्रकाश ७. श्वास ८. महान ९. साफ़ १०. सूरज ११. संसार की
छाती १२. महानता, बुजुर्गी १३. अंकित १४. नर्म

जैसे छूने से पिघल जायेगा
वक्त तय्यार नज़र आता है

सरबर-आबुर्दा सनोबर की घनी शाखों में
ज़िन्दगी कितने हक़ायक़ को^१ जनम देती है
दामने-कोह में फैले हुए मैदानों पर
ज़ौक़े-तखलीक़^२ ने ऐजाज़^३ दिखाये हैं लहू उगला है
आस्मां गर्दिशे-अय्याम^४ के रेले से हिरासां^५ तो नहीं
ख़ैर-मक़दम^६ के भी अंदाज़ हुआ करते हैं
वक्त की राह पे मोड़ आते हैं, मंज़िल तो नहीं आ सकती ।

१. वास्तविकताओं को २. रचना की रुचि ३. चमत्कार ४. समय
(दिनों) का चक्र ५. भयभीत ६. स्वागत

मौजू

फ़न बड़ी चीज़ है तखलीक^१ बड़ी नेमत^२
हुस्नकारी कोई इलज़ाम नहीं है ऐ दोस्त

है मेरे मद्दे-नज़र^३ आज भी तखलीके-जमाल^३
गेसू-ए-शब में^४ उलझते हुए तारों के खयाल
वो जवानी के गुलाबों से महकते हुए जिस्म
फैलती बांहों में मदहोश लहकते हुए जिस्म
कुंजे-गुलशन की खमोशी में उमंगों के हुज़ूम
प्यार की प्यास में खुलते हुए होंटों की पुकार
आंखों-आंखों में लगन का मुतरन्निम^५ इज़हार
फ़न की तामीर हुई है इन्हीं उनवानों से^६
यही मक़बूल थे माज़ी के ग़ज़लख़वानों में
इन्हीं कलियों से खिलाये गए गुलज़ार अब तक
इन्हीं भोंकों से रिवायात में^७ बाक़ी है हयात
मुनअक़स^८ है इन्हीं आईनों में इन्सां का सबात^९
में अगर इन से अलग बात करूँ तो दरअसल
ये फ़क़त गर्दिशे-अय्याम नहीं है ऐ दोस्त

१. रचना २. सामने ३. सौन्दर्य की सृष्टि ४. रात के केशों में
५. संगीतमय ६. शीर्षकों से ७. परम्पराओं में ८. प्रतिबिम्बित
९. दृढ़ता (अस्तित्व)

हुस्न बैठा है सरे-राह भिखारी बनकर
मेरा अन्दाजे-नज़र ख़ाम नहीं है ऐ दोस्त
चंद उड़ते हुए लम्हों की हसीं नक्काशी
मेरे फ़न का तो ये अंजाम नहीं है ऐ दोस्त
पहले मैं माहियते-हुस्न^१ तो पा लूँ, वरना
हुस्नकारी कोई इल्जाम नहीं है ऐ दोस्त
जिनकी तखलीक़ से है हुस्न की क़दरों में^२ दवाम^३
उनके हाथों की ख़राशें तो मिटा लूँ पहले

जिनकी मेहनत से इब़ारत है जमाले-आलम^४
उनको आईना दिखाना भी तो फ़नकारी है
उनकी आंखों में जो शोला-सा लरज़ उठता है
उसका अहसास दिलाना भी तो फ़नकारी है
हुक्मरानों ने उक्काबों का^५ भरा है बहुरूप
भोली चिड़ियों को जगाना भी तो फ़नकारी है
खेत-आबाद हैं, देहात हैं उजड़े-उजड़े
इस तफ़ावुत^६ को मिटाना भी तो फ़नकारी है
धान की फ़सल की तस्वीर है मेराजे-कमाल^७
धान की फ़सल उठाना भी तो फ़नकारी है
कारख़ानों से उमड़ता हुआ, फ़ौलाद का शोर
तेरी तहज़ीब का इक़ गीत नहीं तो क्या है
चन्द सदियों के गुलामों का मुकम्मिल एक्का
नौ-ए-इन्सां^८ की ये इक़ जीत नहीं तो क्या है

१. सौन्दर्य की वास्तविकता २. मूल्यों में ३. स्थायित्व ४. विश्व की सुन्दरता बनी है ५. बाज़ पक्षियों का ६. फ़र्क, अन्तर ७. कला का शिखर ८. मानव

ज़र के ढेरों को उलटती है दरांती की ज़बां
 इरतिक्का^१ की यह इक रीत नहीं तो क्या है
 लबो-रुखसार को^२ मौजू-ए-सुखन^३ ठहरा लूँ
 लेकिन इस रंग का माहौल^४ तो पा लूँ पहले
 जुल्फ़ के पेच तो गिन सकता हूँ लेकिन ऐ दोस्त
 ज़हन से बारे-सलासिल^५ तो उठा लूँ पहले
 जिनकी तखलीक़ से फ़नकार सबक़^६ लेता है
 उनके हाथों की खराशें तो मिटा लूँ पहले ।

१. विकास २. होठों और गालों को (प्रेमिका को) ३. काव्य-विषय
 ४. वातावरण ५. जेल की जंजीरों का बोझ ६. पाठ

फुटकर शेर

तारों का गो शुमार में आना मुहाल है ।
लेकिन किसी को नींद न आये तो क्या करे ?

◇ ◇ ◇
उम्र भर रोने से रोने का सलीका खो दिया ।
हर नफ़स^१ के साथ ये दरिया-दिली अच्छी नहीं ॥

◇ ◇ ◇
मेरी बर्बादियों के राज न पूछ ।
राज का इनकिशाफ़^२ भी है राज ॥

◇ ◇ ◇
रात को तारों से, दिन को ज़र्रा-हाए-खाक से^३ ।
कौन है, जिस से नहीं सुनते तेरा अफ़साना हम ?

◇ ◇ ◇
जकड़ी हुई है इनमें मेरी सारी कायनात ।
गो देखने में नर्म हैं तेरी कलाइयां ॥

◇ ◇ ◇
तसव्वुर^४ आपका, अहसास अपना, हमरही^५ दिल की ।
मुहब्बत की इस तक़सीम^६ ने मंज़िल से बहकाया ॥

◇ ◇ ◇
तू मेरी जिन्दगी से भी कतरा के चल दिया ।
तुझ को तो मेरी मौत पे भी अख़्तियार था ॥

◇ ◇ ◇

१. प्राणी २. प्रकटीकरण ३. मिट्टी के ज़रों से ४. कल्पना ५. साथ
६. विभाजन

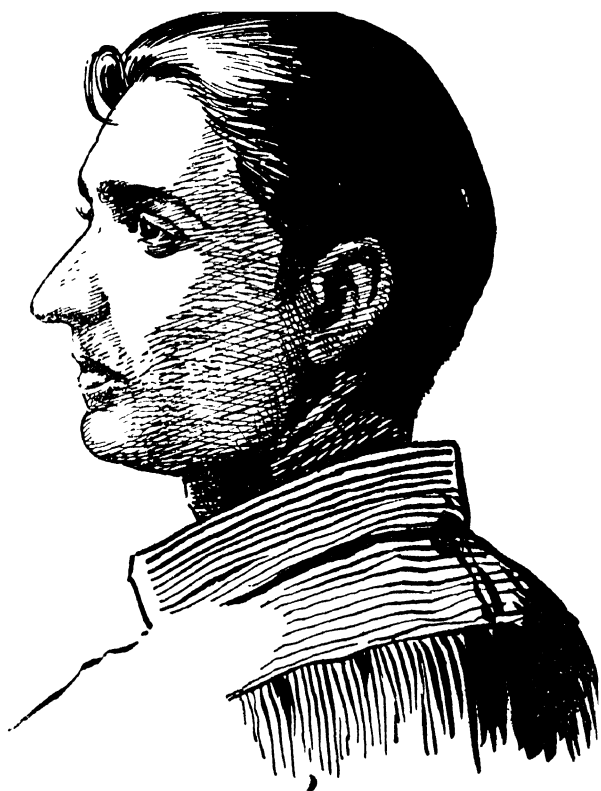
हंगामा मच रहा है खयालों की बज्रम में
तू ने दबी ज़बान में जाने कहा है क्या !

भला ये कौन-सी मंज़िल है बेनियाज़ी की ?
कि आजकल मेरे होंटों पे तेरा नाम नहीं ॥

नोके-मिज़गां से^१ अश्क^२ ढले और बह गये ।
इक दास्तान चन्द इशारों में कह गये ॥
रुकने का नाम तक न लिया अहले-शौक ने ।
दम लेने को जो बंठे वो बैठे ही रह गये ॥
आने का इतनी दूर से कुछ मुद्द्आ तो था ।
दीवाने खामशी में कोई बात कह गये ॥

फिर मोड़ पे काबे के सनमखाना^३ बनेगा ।
बतलाइये अब कौन न दीवाना बनेगा ॥
रहने दे अभी ताक़ पे शम्मएँ कि किसी रोज़ ।
खारुस्तरे - परवाना^४ से परवाना बनेगा ॥

१. पलकों की नोक से २. आंसू ३. मन्दिर ४. जले हुए परवाने की राख



जांनिसार 'अरुतर'

और दो-चार मराहिल से गुज़रना है तो क्या
अपनी मंज़िल की तरफ़ हम को बड़े देर हुई

परिचय

बीयर का एक बड़ा-सा घूंट लेते हुए उसने कहा “प्रकाश ! मैं बम्बई से तंग आ चुका हूँ। अजीब मशीनी शहर है। दोस्त की दोस्ती पर तो क्या आदमी दुश्मन की दुश्मनी पर भी भरोसा नहीं कर सकता। तुम नहीं जानते मैं वहाँ कैसी ज़िन्दगी गुज़ार रहा हूँ।”

अपनी पत्नी ‘सफ़िया’ (जो ‘मजाज़’ की वहिन और स्वयं एक लेखिका थी) का अचानक देहांत हो जाने और बच्चों की देख-रेख का कोई उचित प्रबंध न हो पाने से उन दिनों वह बहुत परेशान था, अतः बीयर का पहला घूंट लेते ही जब बम्बई की चर्चा छिड़ गई, जहाँ उसे बड़ी कटु परिस्थितियों में से गुज़रना पड़ा था, तो वह और भी उदास हो गया।

उसकी उस उदासी को किंचित कम करने के लिए मैंने कहा “लेकिन खुद तुमने ही तो अच्छी-खासी प्रोफ़ेसर छोड़कर बम्बई का टिकट कटाय़ा था। और फिर बम्बई में अपने बहुत से साथी हैं। इस्मत चुरताई हैं, कृष्णचन्द्र हैं, राजेन्द्राहि बेरी, सरदार जाफ़री, मजरूह मुलतानपुरी, साहिर.....”

“हाँ, हाँ !” मेरी इस लम्बी सूची से बोखलाकर उसने कहा “यह सब तो ठीक है, लेकिन इससे क्या होता है ! हरेक अपने-अपने चक्कर में फँसा हुआ है—और फ़िल्म-लाइन का चक्कर तो तुम जानते हो आदमी को घनचक्कर बना देता है।” उसने बीयर का एक और लम्बा घूंट लिया और कुछ देर तक चुप रहने के बाद कहा “यार ! बीयर-बीयर से बात नहीं बनती, ह्विस्की चलनी चाहिये।”

द्विस्की चलने लगी और दो-तीन पैरों के बाद कुछ सड़क में आकर उसने बम्बई के फ़िल्म-जगत की जो कहानियाँ जिस दर्द-भरे ढँग में सुनाई वे नशा तो नशा होश तक उड़ा देने वाली थीं ।

“और तो और” उसने फीकी-सी हँसी हँसते हुए कहा “फ़िल्म ‘अनारकली’ का सबसे मशहूर गाना ‘ऐ जाने-वफ़ा आ’ मेरा लिखा हुआ है, लेकिन दूसरी फ़िल्म-कम्पनियों के प्रोड्यूसर उसे किसी दूसरे शायर का कहकर मुझसे कहते हैं कि अख्तर साहब ! वैसा गाना लिखिये ।”

“तुम उन्हें बताते क्यों नहीं ?”

“क्या फ़ायदा ? खाह्मखाह की भिक-भिक से क्या फ़ायदा ?”

इस “खाह्मखाह की भिक-भिक” से मुझे उसके जीवन की एक घटना याद आ गई ।

एक बार वह दिन के दो बजे बम्बई के एक भरे बाज़ार में से गुज़र रहा था । कोई अपरिचित व्यक्ति उसका रास्ता रोककर खड़ा हो गया कि “जो कुछ तुम्हारी जेब में है मेरे हवाले कर दो, नहीं तो मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूँगा ।”

“वह क्यों ?” उसने सहम कर कहा ।

“क्योंकि तुमने एक औरत को छेड़ा है ।”

“औरत !” उसने आश्चर्य से चारों ओर देखा, क्योंकि औरत तो औरत वहाँ औरत की गंध तक न थी, और फिर वह यह भी जानता था कि औरत तो क्या वह बकरी तक को छेड़ने का साह्य नहीं कर सकता । लेकिन उसने तुरंत जेब से पचास रुपये निकाल कर उस भद्र पुरुष की भेंट कर दिये और जब आगे से यह उत्तर मिला कि यह तो कम हैं, तो उसने घर से सौ रुपये और लाकर दिये और अपने कथनानुसार “खाह्मखाह की भिक-भिक” से बच गया ।



जानिसार ‘अख्तर’ की पितृ-भूमि खैराबाद, ज़िला सीतापुर, (अवध) है, लेकिन जन्म उसका (१९१४ में) ग्वालियर में हुआ । प्रारंभ से ही घर का वातावरण साहित्यिक था । पिता ‘मुज्जतर’ खैराबादी उर्दू के प्रसिद्ध शायरों में से थे, अतएव ‘अख्तर’ को बचपन ही से शेर कहने की धुन सवार हो गई और दस म्यारह वर्ष की आयु में उसने नियमपूर्वक शेर लिखने शुरू कर दिये । १९३६ ई० में अलीगढ़विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम० ए० करने के बाद १९४० में वह विक्टोरिया कालेज ग्वालियर में उर्दू का लैक्चरर नियुक्त हुआ, लेकिन

१९४७ के साम्प्रदायिक दंगों में त्यागपत्र देकर भोपाल चला गया और वहाँ हमीदिया कालेज के उर्दू-फ़ारसी विभाग का अध्यक्ष बन गया। फिर जनवरी १९५० में वहाँ से भी त्यागपत्र देकर वह बम्बई चला गया जहाँ वह अब तक है।

१९३५ तक जांनिसार की शायरी रोमांसवाद तक सीमित थी लेकिन १९३६ से उसकी शायरी की विषय-वस्तु में वैविध्यपूर्ण विशालता आने लगी, और उसी वर्ष जब साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन प्रारम्भ हुआ तो वह भी उसका समर्थक बन गया। उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक एहतिशाम हुसैन ने जांनिसार 'अख्तर' की शायरी में हुए तत्कालीन परिवर्तन का विवेचन करते हुए लिखा है : "अख्तर की शायरी में प्रेम की रोमांटिक उद्भावना में धीरे-धीरे रोमांटिक क्रान्तिवाद का सम्मिश्रण होता गया, और जब सामाजिक यथार्थवाद ने शायर के दृष्टिकोण में अपना स्थान बना लिया तो उसकी दृष्टि एक यथार्थवादी की तरह जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ने लगी और जीवन और क्रान्ति की उद्भावना भी उसके लिए उसी प्रकार प्रिय बन गई जिस प्रकार नक्षत्रों की रोमांटिक उद्भावना।"

उस काल की अख्तर की क्रान्तिवादी शायरी में अंग्रेज साम्राज्य के विरुद्ध घोर घृणा और अपने देश की स्वाधीनता के प्रति गहरा प्रेम-भाव भरा हुआ है। उसकी शायरी ने हर कदम और हर मोड़ पर स्वाधीनता-संग्राम का साथ दिया है। दूसरा महायुद्ध, भारतीय नेताओं के मतभेद, जनसाधारण की दुर्दशा, आर्थिक संकट, बंगाल का अकाल, मित्र राष्ट्रों की विजय, राजनीतिक स्वाधीनता, देश का विभाजन, साम्प्रदायिक उपद्रव, अमरीकी और अंग्रेजी साम्राज्य के नेतृत्व में युद्ध की तैयारी और रूस के नेतृत्व में विश्व-शांति के लिए क्रियात्मक आंदोलन, चीन की क्रान्ति, अन्तर्राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का पूरा प्रतिबिम्ब उसकी शायरी में विद्यमान है। वह कभी भविष्य के प्रति निराश नहीं हुआ। उसकी शायरी इस भावना से संचारित हुई है कि आज का जीवन-संघर्ष चूँकि आने वाले कल के नव-निर्माण का सूचक है, इसलिए जीवन-संघर्ष की तीव्रता से घबराना नहीं चाहिये। आज उसकी शायरी में सामाजिक वास्तविकताओं का गहरा बोध है और अब उसकी विषय-वस्तु वह मानव है जो समाज और प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सुन्दर, सरस, सन्तुलित जीवन के निर्माण के लिए संघर्षशील है।

राजनीतिक-बोध की तरह जांनिसार 'अख्तर' का कलात्मक बोध भी बहुत

परिपक्व है। इसका कारण एक तो उसका काव्य-सम्बन्धी उत्तराधिकार है और दूसरे उसने प्राचीन साहित्य का गहरा अध्ययन किया है। अतः कला के रचना-कौशल को पूरा महत्त्व देते हुए भी वह विषय की ऊष्णता को कम नहीं होने देता। रूप-विधान के नए प्रयोगों में भी उसने अपने रचना-कौशल का अच्छा परिचय दिया है।

अपने अधिकतर समकालीन शायरों की तरह 'अख्तर' की प्रारंभिक शायरी पर भी 'जोश' मलीहाबादी का काफ़ी प्रभाव था, लेकिन धीरे-धीरे उसने स्वयं को इससे मुक्त कर लिया और रंग तथा रस के सुन्दर समन्वय से नये-नये रेखा-चित्र बनाये। 'जोश' के बाद शायरों की नई पीढ़ी में उसका नाम 'मजाज़', 'फ़ैज़', 'जज़बी', 'मरहूम' आदि के साथ लिया जाता है। और संभवतः उसकी रचनाओं का भंडार अपने इन समकालीन शायरों में सबसे अधिक है।



यह है जांनिसार अख्तर ! जिसे यदि कुछ प्रदान कीजिये तो कोई धन्यवाद नहीं और यदि कुछ छीन लीजिये तो कोई निन्दा नहीं। उसके बाल उलझे हुए हैं, लेकिन वह खुश है। घिसते-घिसते चप्पल की एड़ी गायब हो चुकी है, लेकिन उसे चिन्ता नहीं। सुबह वह इसलिए उजले कपड़े पहनता है कि शाम को मैले चिकट हो जायें, और नियमबद्ध जीवन व्यतीत करने की उसकी 'आकांक्षा' तो इस स्तर पर पहुँच चुकी है कि अब वह किसी नियम का पालन नहीं कर सकता और आठों पहर अस्त-व्यस्त रहता है।

✓मराहिल^१

एक लम्हे को कभी वक्त की गर्दिश^२ न थमी ।
हस्वे - दस्तूर^३ महो - साल^४ बदलते ही रहे ॥
एक लौ, एक लगन, एक लहक दिल में लिये ।
हम मुहब्बत की कठिन राह पे चलते ही रहे ॥

कितने पुरपेच^५ मराहिल को किया तै हमने ।
वादियां कितनी मिलों बीच में दुश्वार-गुजार^६ ॥
संकड़ों संगे - राह^७ , राह में हायल थे मगर ।
एक लम्हे को भी टूटी न जुनू^८ की रफ्तार ॥

आज छाये हैं वो घनघोर अंधेरे लेकिन ।
जिन में ढूँडे से भी मिलते नहीं राहों के सुराग^९ ॥
वो अंधेरे कि निकलते हुए डरती हो निगाह ।
सामने हो तो नज़र आये न मंज़िल का चिराग ॥

मुझ से बदज़न^{१०} न हो ऐ दोस्त कि मेरी नज़रें ।
क्या हुआ पेचो-खमे-राह में ^{११} उलझी हैं अगर ॥
रोदे-कुहसार^{१२} की हर लम्हा भटकती मौजें^{१३} ।
अपनी मंज़िल की तरफ़ ही तो रहीं गर्मे-सफ़र^{१४} ॥

१. मंज़िलें २. चक्कर ३. नियमानुसार ४. महीने और वर्ष ५. पेचदार
६. कठिन ७. मार्ग के पत्थर (बाधाये) ८. उन्माद ९. चिन्ह १०. खफ़ा
११. मार्ग के पेचों में १२. पहाड़ी नदी १३. सहर्ष १४. गतिशील

मुझ से बरगस्ता^१ न हो तू कि मेरा दिल है वही ।
 क्या हुआ फ़िक्र^२ के छाये हैं जो गहरे बादल ॥
 चश्मे - जाहिर^३ से जो छुप जाये तो छुप जाने दे ।
 अब्र^४ में बुझ नहीं जाती है क़मर^५ की मशअल ॥

मेरे चेहरे पे जो है वक़्त का शबगूँ परती^६ ।
 है उसी अक्स^७ से धुंदला तेरा आईना-ए-दिल^८ ॥
 आ कि ये लम्हा - ए - हाज़िर^९ नहीं है अपना ।
 है परे आज की जुल्मात से^{१०} अपनी मंज़िल ॥

इन धुआं - धार अंधेरों से गुज़रने के लिए ।
 खूने - दिल से कोई मशअल तो जलानी होगी ॥
 इश्क़ के रफ़ता-ओ-सरगस्ता जुनूँ^{११} को ऐ दोस्त ।
 ज़िन्दगानी की अदा आज सिखानी होगी ॥

१. रुष्ट २. चिंता ३. प्रकट दृष्टि ४. बादल ५. चांद ६. अंधकारमय प्रतिबिम्ब ७. प्रतिबिम्ब ८. दिल का आईना अर्थात् निर्मल हृदय ९. वर्तमान क्षण १०. अंधेरों से ११. आवेश-पूर्ण और गतिशील उन्माद

अमन-नामा

(एक लम्बी नज़्म का कुछ भाग)

पिला साक्रिया बादा-ए-खानासाज^१

कि हिन्दुस्तां पर रहे हमको नाज़
मुहब्बत है खाके-वतन^२ से हमें

मुहब्बत है अपने चमन से हमें
हमें अपनी सुबहों से शामों से प्यार

हमें अपने शहरों के नामों से प्यार
हमें प्यार अपने हर एक गांव से

घने बरगदों की घनी छांव से
हमें प्यार अपनी इमारात से^३

हमें प्यार अपनी रिवायात से^४
उठाये जो कोई नज़र क्या मजाल

तेरे रिद^५ लें बढ़के आंखें निकाल
सलामत रहें अपने दस्तो-दमन^६

रहे गुनगुनाता हमारा गगन
निगाहें हिमालय की ऊंची रहें

सदा चांद तारों को छूती रहें
रहे पाक^७ गंगोत्री की फबन

मचलती रहे जुल्फ़े-गंगो-जमन^८
रहे जगमगाता ये संगम का रूप

चमकती खूनक^९ चांदनी, नर्म धूप

१. घर की खैची हुई शराब (तेज़) २. देश की मट्टी ३. भवनों से
४. परम्पराओं से ५. पियक्कड़ ६. जंगल और टीले ७. पवित्र ८. गंगा-
जमुना के केश ९. शीतल

झलकती रहे ये अशोका की लाट
 ये गोकुल की गलियां, ये काशी के घाट
 लुटाती रहें अपने नैनों का मद
 ये सुबहे-बनारस, ये शामे-अवध
 नहाता रहे नर्म किरनों में ताज
 रहे ता-क्रयामत मुहब्बत की लाज
 अजनता के बुत रक्स^१ करते रहें
 हसीं गार^२ तारों से भरते रहें
 रहें मुस्कराती हसीं वादियां
 रहें शाद^३ जंगल की शहजादियां
 हरी खेतियां लहलहाती रहें
 जवां लड़कियां गीत गाती रहें
 लहकता रहे सब्ज मैदां में धान
 जमीनों पे बिछते रहें आसमान
 फ़जा^४ में घटाएं गरजती रहें
 जवां छागलें तट पे बजती रहें
 उड़ाती रहे आंचलों को हवा
 मल्हारों की बूंदों में गूँजे सदा
 महकते रहें सब्ज आमों के बीर
 बढ़ाती रहे पींग भूले की डोर
 पपीहे की पी-पी तो कोयल की कूक
 उठाती रहे नर्म सीनों में हूक
 दहकती रहे पाक होली की आग
 रहें खेलती नारियां पी से फाग
 सदा गाये राधा कन्हैया के गुण
 मचलती रहे बन में मुरली की धुन

सलामत ये मथुरा की नगरी रहे
 छलकती ये रंगों की गगरी रहे
 रहे ये दिवाली की जगमग बहार
 मंडेरों पे जलते दियों की कतार
 फ़ज़ा रोशनी में नहाती रहे
 हमारी ज़मीं जगमगाती रहे
 रहे ये बसन्तों के मेले की धूम
 रहें शाद ये गीत गाते हुज़ूम
 हसीनों के लहकें बसन्ती लिबास
 रहे नर्म चेहरों पे हल्की मिठास
 हसीं राखियां झलझलाती रहें
 भ्रमाभ्रम सितारे लुटाती रहें
 रहें अपने भाई पे बहनों को नाज़
 ये मासूम नर्मी, ये मीठा गुदाज़^१
 घरों का तक्रद्दुस^२ रहे बरकरार
 ये बेटों के माथे पे माओं का प्यार
 रहे शादो-आबाद सहनों की धूम
 रहें आंगनों में चहकते नज़ूम^३
 सलामत रहे दुल्हनों की फबन
 सलामत रहें दिल में खिलते चमन
 सलामत रहे अंखड़ियों को हया^४
 सलामत रहे घूँघटों की अदा
 सलामत दोपट्टों की रंगीं बहार
 सलामत जवां आंचलों का वक्रार^५
 सलामत रहे पाक अफ़शां^६ का नूर
 सलामत रहे बींदियों का ग़रूर

१. नर्मी २. पवित्रता ३. सितारे (बच्चे) ४. लज्जा ५. शान
 (गौरव) ६. माथे का पवित्र सिंदूर ७. प्रकाश

सलामत रहे काजलों की लकीर
 सलामत रहें नर्म नज़रों के तीर
 सलामत रहे चूड़ियों की खनक
 सलामत रहे कंगनों की चमक
 सलामत हसीनों के सोलह सिंगार
 ये जूड़े पे लिपटे चंबेली के हार
 सलामत रहें मृग-नैनों के बान
 सलामत रहे मरने वालों की शान
 सलामत वफ़ाओं के अरमां रहें
 सलामत मुहब्बत के पैमां^१ रहें
 सलामत रहें हीर-रांभे के गीत
 रहे हार में भी मुहब्बत की जीत
 लजाना रहे, मुस्कराना रहे
 मनाना रहे और रूठ जाना रहे
 मुहब्बत के चश्मे उबलते रहें
 जवां-साल^२ नगमों में ढलते रहें
 रहे 'जोश'^३ की शबनमी शायरी
 मै-ओ-गुल की मौजूं हसीं साहरी^४
 दिलों पर रहे वज्द-आगीं सुकृत^५
 रहे गुनगुनाता हुआ 'मेघदूत'
 रहे धूम 'टैगोरो - इक़बाल' की
 रहे शान पंजाबी - बंगाल की
 रहे नाम अपने अदब^६ का बुलंद^७
 दिलों में समाया रहे 'प्रेमचन्द'

१. प्रण २. नवीनतम ३. 'जोश' मलीहाबादी ४. शराब और फूलों
 की सुन्दर जादूगरी ५. नशीली चुप्पी ६. साहित्य ७. ऊंचा

सदा ज़िन्दगानी गज़लख्वां^१ रहे
 ज़माने में 'ग़ालिब' का दीवां^२ रहे
 मचलती रहे मस्त बीना की लै
 बरसती रहे सात रंगों की मै
 दहकता रहे अपने दीपक का राग
 कलेजों में लगती रहे नर्म आग
 रहे गूँजती घुंघरुओं की खनक
 दफ़ों की^३ सदा^४ ढोलकों की गमक
 ये घूमर, ये कत्थक के तोड़े रहें
 जवां नाच दिल को भंभोड़े रहें
 रहे साक्रिया बादाख़वारों की^५ खैर
 रहे साक्रिया तेरे प्यारों की खैर
 उभरता रहे ज़िन्दगानी का जोश
 रहे तेरे रिंदों को दुनिया का होश
 सलामत तेरा जामो-मीना^६ रहे
 बड़े खुफ़ के साथ पीना रहे
 उठा जाम, हां दौरे-साक़ी रहे
 जहां में सदा अमन बाक़ी रहे ।

१. गीत गाने वाली २. कविता-संग्रह ३. डफ़लियों की
 ४. आवाज़ ५. मद्यपों की ६. सुराही, प्याला (संसार)

२५ दिसम्बर

ये तेरे प्यार की खुशबू से महकती हुई रात
अपने सीने में छुपाये तेरे दिल की धड़कन
आज फिर तेरी अदा से मेरे पास आई है

अपनी आँखों में तेरी जुल्फ का डाले काजल
अपनी पलकों पे सजाये हुए अरमानों के ख्वाब
अपने आंचल पे तमन्ना के सितारे टांके

गुनगुनाती हुई यादों की लवें जाग उठीं
कितने गुजरे हुए लम्हों के चमकते जुगनू
दिल के हाले^१ में लिए नाच रहे हैं कब से

कितने लम्हे जो तेरी जुल्फ के साये के तले
गर्क होकर तेरी आँखों के हसीं सागर में^२
गमे - दौरां से^३ बहुत दूर गुजारे मैंने

कितने लम्हे कि तेरी प्यार भरी नज़रों में
किस सलीके^४ से सजाई मेरे दिल की महफ़िल
किस करीने^५ से सिखाया मुझे जीने का शऊर

कितने लम्हे कि हसीं नर्म सुबक^६ आंचल से
तूने बढ़कर मेरे माथे का पसीना पोंछा
चांदनी बन गई राहों की कड़ी धूप मुझे

१. प्रकाशमान कूँडल २. प्यालों में ३. सांसारिक दुखों से ४. सुन्दर
ढंग ५. तरीका (बोध) ६. हल्के

कितने लम्हे कि ग़मे-ज़ीस्त के^१ तूफ़ानों में
ज़िन्दगानी की जलाये हुए बाग़ी मशअ़ल
तू मेरा अज़मे-जवां^२ बन के मेरे साथ रही

कितने लम्हे कि ग़मे-दिल से उभर कर हमने
इक नई सुबहे-मुहब्बत^३ की लगन अपनाई
सारी दुनिया के लिए, सारे ज़माने के लिए

इन्हीं लम्हों के गुलावेज़^४ शरारों का तुझे
गूँध कर आज कोई हार पहना दूँ आजा
चूम कर मांग तेरी तुझ को सजा दूँ आजा ।

[अखतर ने यह नज़म पत्नी के देहांत पर लिखी थी]

१. जीवन-संघर्ष (दुखों) के २. दृढ़ संकल्प ३. प्रेम के प्रभात ४. फूलों-
ऐसे

क़तए

ये किस का ढलक गया है आंचल
 तारों की निगाह भुक गई है,
 ये किस की मचल गई हैं जुल्फ़ें
 जाती हुई रात रुक गई है ।

हुस्न का इत्र, जिस्म का संदल
 आरिजों के^१ गुलाब, जुल्फ़ का ऊद^२,
 बाज़ आक्रात सोचता हूँ मैं
 एक खुशबू है सिर्फ़ तेरा वुजूद^३ ।

अब्र^४ में छुप गया है आधा चांद,
 चांदनी छन रही है शाखों से,
 जैसे खिड़की का एक पट खोले,
 भांकता हो कोई सलाखों से,
 यूँ उसके हसीन आरिजों पर,
 पलकों के लचक रहे हैं साये,
 छिटकी हुई चांदनी में 'अख्तर',
 जैसे कोई आड़ में बुलाए ।

जीवन की ये छाई हुई अंधियारी रात,
 क्या जानिये किस मोड़ पे छूटा तेरा साथ,
 फिरता हूँ डगर-डगर अकेला लेकिन,
 शाने पे^५ मेरे आज तलक है तेरा हाथ ।

१. कपोलों के २. एक सुगंधित काली लकड़ी ३. अस्तित्व ४. बादल
 ५. कंधे पर



‘साहिर’ लुध्यानवी

दुनिया ने तजुर्बातो-हवादिस की शक्ल में
जो कुछ मुझे दिया है वो लौटा रहा हूं मैं

परिचय

क्रद साढ़े पाँच फ़ुट, इकहरा बदन, लम्बी-लम्बी लचकीली टांगें, बड़े-बड़े सीधे बाल और चेचकी चेहरे पर उभरी हुई यह लम्बी नाक !

यह शायद १९४३-४४ की बात है कि उपरोक्त हुलिये का एक बीस-वर्षीय युवक, जिसका नाम अब्दुलहई था और जो अपने आपको उर्दू का शायर कहता था लेकिन शायर कम और किसी कालेज का विद्यार्थी अधिक मालूम होता था, सुबह दस-ग्यारह बजे से रात के दो-ढाई बजे तक लाहौर की सड़कें नापता नज़र आता था। अपनी जान-पहचान के लोगों से लेकर, जिनकी संख्या बहुत अधिक थी, राह चलते लोगों तक को चाय और सिग्रेट पिलाना उसकी आदत थी और इस बीच में अपनी समस्त नज़में-गज़लें, जो उसे जबानी याद थीं, लम्बी-चौड़ी भूमिकाओं के साथ सुनाते चले जाना शायद उसका पेशा था। लेकिन एक प्रकाशक से दूसरे प्रकाशक के यहाँ और एक मित्र से दूसरे मित्र के यहाँ सैंकड़ों चक्कर लगाने और चायपानी में सैंकड़ों रुपये लुटाने पर भी जब किसी भले-मानस ने उसका कविता-संग्रह प्रकाशित करने की हामी न भरी तो अपनी इस उत्कट अभिलाषा को मन में दबाये वह वापस लुधियाना चला गया और लोग-बाग बहुत शीघ्र उसे भूल गये।

लुधियाने का यह विद्यार्थी आज का 'साहिर' लुधियानवी है और उसके जिस कविता-संग्रह 'तलखियाँ'* को किसी प्रकाशक ने एक नज़र देखने तक का कष्ट न किया था, अब तक उसी कविता-संग्रह के नौ-दस संस्करण प्रकाशित हो

* प्रगति प्रकाशन (दिल्ली) से देवनागरी लिपि में भी छप चुका है।

चुके हैं और वह उर्दू पढ़े-लिखे 'युवक वर्ग' का इष्ट शायर है।

'साहिर' लुधियानवी को उर्दू पढ़े लिखे 'युवक वर्ग' का इष्ट शायर कहते हुए जो मैंने शब्द 'युवक' का प्रयोग किया है तो इससे मेरा अभिप्राय एक तो यह है कि इस युवक वर्ग में अधिक संख्या मध्यवर्ग और ऊपर के मध्यवर्ग के कालेज के विद्यार्थियों की है और दूसरे यह कि उसकी शायरी का केन्द्रीय-बिन्दु 'प्रेम' है। और चूँकि इस सम्बंध में उसे आपबीती को जगबीती बनाने का बहुत अच्छा गुर आता है इसलिए हमारे युवक वर्ग को 'साहिर' की लगभग वे सब नज़में ज़बानी याद हैं जिनमें एक असफल प्रेमी की दुखी आत्मा बेतरह छटपटाती है और टूटे हुए दिल की धड़कन बड़े कातर स्वर में गुनगुना उठती है :

जब भी राहों में नज़र आये हरीरी मलबूस^१ ।

सर्द आहों में तुझे याद किया है मैंने ॥

या

तू किसी और के दामन की कली है लेकिन,

मेरी रातें तेरी खुशबू से बसी रहती हैं।

तू कहीं भी हो तेरे फूल-से आरिज़ की^२ कसम,

तेरी पलकें मेरी आँखों पे भुकी रहती हैं।

और उसकी नज़म 'ताजमहल' तो हर युवक-युवती के लिए 'किताबे-इश्क' का सा दर्जा रखती है।

'साहिर' को मैंने बहुत निकट से देखा है। उससे मुलाकात से पहले भी मैंने 'तलखियाँ' की समस्त-नज़में गज़लें पढ़ी थीं और कुछ अवसरों पर उसे अपने शेर सुनाते हुए भी सुना था, लेकिन उसके व्यक्तित्व के आधार पर उसकी शायरी को परखने का अवसर मुझे उस समय मिला जब १९४८ ई० में 'शाहराह' और 'प्रीतलड़ी' (दिल्ली से प्रकाशित होने वाली दो मासिक पत्रिकायें) के सम्पादन के सिलसिले में हम दोनों एक साथ काम करने लगे और एक ही घर में रहने लगे।

'साहिर' अभी-अभी सोकर उठा है (सुबह दस-ग्यारह बजे से पहले वह कभी नहीं उठता) और नियमानुसार घुटनों में सिर दिये चुपचाप किसी भी और निहारे चला जा रहा है (इस समय वह किसी प्रकार की गड़बड़ पसन्द नहीं करता; यहाँ तक कि उसकी अम्मी, जिसे वह बेहद चाहता है और अपने जागीर-

दार पति से विवाह-विच्छेद के बाद से जिसके जीवन का वह एकमात्र सहारा है, वह भी इस समय उसके कमरे में आने का साहस नहीं कर सकती) कि एकाएक जैसे उस पर एक दौरा-सा पड़ता है और वह चिल्लाता है : “चाय !”

और उस समय की इस ‘ललकार’ के बाद दिन-भर बल्कि रात गये तक वह निरन्तर बोले चला जाता है। आधे घण्टे से अधिक किसी जगह टिक कर नहीं बैठता। मित्र-मुलाकातियों में घिरे रहने से उसे एक प्रकार का मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है और उसके मित्र-मुलाकाती भी उसकी संगति में किसी तरह की थकान या उकताहट महसूस नहीं करते। वह उन्हें सिग्रेट पर सिग्रेट पेश करता है। चाय के प्यालों के प्याले उनके कण्ठ के नीचे उतारता है, उन्हें खाना खिलाता है और अपनी नज़मों, गज़लों के अतिरिक्त दर्जनों दूसरे शायरों के हज़ारों शेर, जो उसे ज़बानी याद हैं, बड़ी सुन्दर भूमिकाओं के साथ सुनाता चला जाता है। उसे अपनी नज़में-गज़लें और अन्य शायरों के हज़ारों शेर ही नहीं, अपने जीवन की हर छोटी-बड़ी घटना भी याद है। उसे अपने मित्रों के किसी भी ज़माने में लिखे हुए पूरे के पूरे पत्र याद हैं। आज तक उसकी शायरी के पक्ष या विपक्ष में जितने लेख लिखे गये हैं, उनकी हर पंक्ति याद है यहाँ तक कि मेडन थियेटर की ‘इन्द्रसभा’ और ‘शाह बहराम’ नामक फ़िल्मों के पूरे के पूरे डायलॉग ज़बानी याद हैं।

और रात के नौ, दस, ग्यारह या बारह बजे, जब उसके मित्र-मुलाकाती दूसरे दिन मिलने का वायदा करके उसका साथ छोड़ जाते हैं और यद्यपि कम से कम एक मित्र उस समय भी उसके साथ अवश्य होता है, उसे विचित्र प्रकार के एकाकीपन का अनुभव होने लगता है। उस समय न जाने कहाँ से उसमें ‘बोहीमियनिज़्म’ के कीटाणु घुस आते हैं जो उसे संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपने सामने तुच्छ नज़र आने लगता है। दिन भर का हँस-मुख और सरल-स्वभाव ‘साहिर’ इस समय एकदम बदल जाता है। दिन भर की बातें दोहरा-दोहरा कर वह अपने मित्रों की हठबुद्धि पर, जिसकी दिन भर वह प्रशंसा कर चुका होता है, व्यंग के तीर छोड़ता है और “क्या पिढ़ी क्या पिढ़ी का शोरबा” कहकर उनका मज़ाक़ उड़ाता है और यों स्वयं ही एक प्रश्न-चिह्न बन जाता है।

यह प्रश्न-चिह्न चलते-चलते साथियों से कभी बहुत आगे बढ़ जाता है और कभी बहुत पीछे रह जाता है। एक ज़रा-सी बात पर उकता जाना, शर्मा जाना या घबरा जाना उसका स्वभाव है और जहाँ तक कोई फ़ैसला करने का सम्बंध

है, जीवन की बड़ी-बड़ी समस्याएँ तो एक ओर, किसी मुशायरे में शेर सुनाने से पूर्व वह यह फ़ैसला भी नहीं कर पाता कि उस समय उसे कौनसी नज़्म या ग़ज़ल सुनानी चाहिये। यहां तक कि किस पतलून पर वह कौनसी क़मीज़ पहने—इसके लिए भी उसे अपनी अम्मी या पास बैठे मित्रों की सहायता लेनी पड़ती है।

उर्दू के एक शायर 'कैफ़ी' आज़मी ने 'नये अदब के मेमार' सीरीज़ की पुस्तिका में 'साहिर' की इस स्थिति का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। लिखते हैं : 'जिन लोगों ने साहिर को करीब से नहीं देखा शायद उनको यह मालूम नहीं कि माहौल (वातावरण) से मायूसी और तरक्कीपज़ीर कुव्वतों (प्रगतिशील शक्तियों) से दूरी ने 'साहिर' के मिज़ाज में बेइन्तिहा शक पैदा कर दिया है। प्रोड्यूसर तनख्वाह बढ़ा दे तो सोचने लगते हैं कोई खास बात तो नहीं ? कोई लड़की सलाम कर ले तो फ़िक्र पैदा हो जाती है कि मेरी नाकामियों में कोई और इज़ाफ़ा तो नहीं होने वाला है ! और कोई लड़की वाक़ई मुहब्बत करने लगे तो दिल धड़कने लगता है कि :

तेरी सांसों की थकन, तेरी निगाहों का सुक़्त^१,
 दरहक़ीक़त कोई रंगीन शरारत ही न हो।
 मैं जिसे प्यार का अन्दाज़ समझ बैठा हूँ,
 वो तबस्सुम वो तकल्लुम^२ तेरी आदत ही न हो।"

और मैं समझता हूँ आत्मनिर्णय की इसी कमी ने, जो उसके व्यक्तित्व का बहुत बड़ा अंग है और इसलिए उसकी शायरी का भी अंग है, उसे मध्य वर्ग के युवक-युवतियों का इष्ट शायर बना दिया है। हमारे मध्य वर्ग के युवक-युवतियाँ जिस ढंग से जीवन की समस्याओं, असफलताओं और रिक्तताओं को लेते हैं उसी भावावेश के साथ 'साहिर' इन अनुभूतियों को अपनी शायरी में समोकर प्रस्तुत करता है। और चूँकि उसके पास समाज की नैतिकता और व्यवस्था को परखने और उसके खोटेपन को प्रमाणित करने की कसौटी 'प्रेम' है इसलिए कम या अधिक किसी हृदय पर भी उसका वार खाली नहीं जाता।

लेकिन इससे मेरा आशय बिल्कुल यह नहीं है कि 'साहिर' का प्रेम केवल सौंदर्य तथा आसक्ति और मिलन तथा विद्रोह तक सीमित है। यदि ऐसा होता तो वह केवल औरत का शायर होकर रह जाता और उसकी शायरी ज़िन्दगी और इन्सानियत से दूर रहती। लेकिन सौभाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। 'साहिर' का

प्रेम नारी से शुरू जरूर होता है, लेकिन यह प्रेम बढ़ते-बढ़ते अन्त में उस स्थान पर जा पहुँचता है जहाँ व्यक्तिगत प्रेम सामूहिक प्रेम में परिवर्तित हो जाता है और शायर केवल अपनी प्रेमिका ही का नहीं, मनुष्य-मात्र का आशिक बन जाता है और :

तुमको खबर नहीं मगर इस सादा-लौह^१ को ।

बर्बाद कर दिया तेरे दो दिन के प्यार ने ॥

कहते-कहते पहले अपनी प्रेमिका से दबे स्वर में यह कहता है :

मैं और तुझ से तर्क-मुहब्बत की^२ आरजू ?

दीवाना कर दिया है गमे-रोजगार ने^३ ॥

और फिर बड़े स्पष्ट शब्दों में कह उठता है कि :

तुम्हारे गम के सिवा और भी तो गम हैं मुझे,
निजात^४ जिनसे मैं एक लहजा^५ पा नहीं सकता,
ये ऊँचे-ऊँचे मकानों की इयोदियों के तले,
हर एक गाम^६ पे भूखे भिखारियों की सदा,
ये कारखानों में लोहे का शोरो-गुल जिसमें,
है दफ़न लाखों गरीबों की रूह का नगमा,
गली-गली में ये बिकते हुए जवां चेहरे,
हसीन आंखों में अफ़सुर्दगी^७ सी छाई हुई,
ये शोला-बार फ़जाएँ^८ ये मेरे देस के लोग,
खरीदी जाती हैं उठती जवानियां जिनकी ।

ये गम बहुत है मेरी ज़िन्दगी मिटाने को,
उदास रहके मेरे दिल को और रंज न दो ॥



“तुम्हारे गम के सिवा और भी तो गम हैं मुझे”—और यहीं पर बस नहीं, ‘साहिर’ की शायरी में एक ऐसा मोड़ भी आता है जब उसमें एक संघर्ष-शीलता उत्पन्न होती है । इस संघर्ष-शीलता की दबी-दबी चिंगारियां यद्यपि उसकी प्रारम्भिक रचनाओं में भी मिलती हैं और जीवन की निराशाओं के साथ-साथ

१. सरल स्वभाव वाला २. प्रेम करना छोड़ देने की ३. सांसारिक चिन्ताओं ने ४. मुक्ति ५. क्षण ६. कदम ७. उदासी ८. आग बरसाने वाला वातावरण

आशाओं और मौत के क़दमों की आहट के साथ-साथ^१ ज़िन्दगी की अंगड़ाई की झलक भी विद्यमान है लेकिन दो-दूक ढंग से वह केवल उस समय हमारे सामने आता है जब वह कहता है कि :

आज से ऐ मज़दूर किसानो ! मेरे राग तुम्हारे हैं ।

फ़ाक़ाक़श इन्सानो ! मेरे जोग बिहाग तुम्हारे हैं ॥

जब तक तुम भूखे नंगे हो ये शोले ख़ामोश न होंगे ।

जब तक बे-आराम हो तुम ये नग़मे राहतकोश^२ न होंगे ॥

तुम से कुव्वत^३ लेकर अब मैं तुम को राह दिखाऊँगा ।

तुम परचम लहराना साथी, मैं बरबत पर गाऊँगा ॥

अब से मेरे फ़न^४ का मक़सद^५ ज़ंजीरें पिघलाना है ।

आज से मैं शबनम के बदले अंगारे बरसाऊँगा ॥

लेकिन उसी 'तरक्की-पज़ीर कुव्वतों' (शायद इस से 'कैफ़ी' आज़मी का अभि-प्राय 'मज़दूर किसान' से है) की दूरी ने उसके इस सङ्कल्प के बावजूद उसे मज़दूरों किसानों के लिये वैसी कोई रचना नहीं रचने दी जैसी रचनायें उसने मध्यवर्ग के लोगों के लिए रची हैं । मेरे विचार में 'साहिर' से इस प्रकार की कोई मांग करना उसकी सीमाओं को देखते हुए उस पर ज़्यादती करना होगा । फिर यह भी तो ज़रूरी नहीं है कि केवल मज़दूर और किसान के बारे में लिख कर ही कोई कवि या लेखक अपनी प्रगतिशीलता का प्रमाण दे सकता हो । यदि कोई कवि अथवा लेखक किसी कारण से अपनी सीमाओं से बाहर नहीं निकल सकता लेकिन वह सचेत तथा सूक्ष्मग्राही है तो अपनी सीमाओं में रहते हुए भी वह प्रगतिशील साहित्य का निर्माण कर सकता है । बल्कि इस के विपरीत यदि वह अपनी सीमाओं में रहते हुए अपनी सीमाओं से बाहर के किसी विषय पर क़लम उठायेगा, तो उसकी रचना में वह वास्तविकता और अर्थ-गाम्भीर्य उत्पन्न नहीं हो सकेगा जो अनुभव तथा प्रेक्षण पर आधारित होता है और अनिवार्य रूप से श्रेष्ठ साहित्य का मूल ।

'साहिर' का जन्म लुधियाने के एक जागीरदार घराने में ८ मार्च १९२२ को हुआ । उसकी माता के अतिरिक्त उसके पिता की कई पत्नियाँ और थीं लेकिन एकमात्र संतान होने के कारण उसका पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार में हुआ । उस वातावरण के कारण उसमें अपनी हर उचित-अनुचित बात मनवाने, अपनी हठ पर अड़े रहने और बहुत ठाठदार जीवन व्यतीत करने की अभिरुचियाँ

उत्पन्न हुईं जिनके कुछ अंश आज भी उसके व्यक्तित्व में मौजूद हैं। लेकिन अभी वह बच्चा ही था कि पति की विलासताओं के कारण 'साहिर' की माता ने उससे विवाह-विच्छेद कर लिया और चूंकि 'साहिर' ने अदालत में पिता पर माता को प्रधानता दी थी, इसलिए उस घटना के बाद अपने पिता से और उसकी जागीर से उसका कोई सम्बन्ध न रहा। इस पर जीवन की ताबड़तोड़ कठिनाइयों और निराशाओं ने उसे समय से बहुत पहले प्रौढ़ बना दिया। उसने प्रेम किया और असफल रहा। कालेज के ज़माने में विद्यार्थियों के आन्दोलनों में भाग लिया तो कालेज से निकाल दिया गया और फिर बहुत शीघ्र उसे अपना और अपनी माता का पेट पालने के लिए कमर कसनी पड़ी। अतएव प्रौढ़ होते ही उसकी उस घृणा का मुंह स्वयं ही उस पूरे वर्ग की ओर मुड़ गया जिसका एक प्रतिनिधि उसका पिता था और जिसका वर्णन उसने अपनी एक नज़्म 'जागीर' में इन शब्दों में किया है :

मैं उन अजदाद^१ का बेटा हूँ जिन्होंने पैहम^२।

अजनबी क़ौम के साये की हिमायत की है॥

ग़दर की साग्रते-नापाक^३ से लेकर अब तक।

हर कड़े वक़्त में सरकार की ख़िदमत की है॥

कालेज से निकाले जाने के बाद वह लाहौर चला गया जहाँ उसने 'शाहकार' और 'अदवे-लतीफ़' का संपादन किया लेकिन इससे सिगरेट-पानी का खर्च तक निकलता न देख वह बम्बई फ़िल्म जगत में चला गया। उसका जीवन कुछ-कुछ ढर्रे पर आ चला था कि भारत-विभाजन ने एक बार फिर उसे अपने अड्डे से उखाड़ फेंका। माता लुधियाने से शरणार्थी बनकर लाहौर चली गई थीं, इसलिए 'साहिर' भी जैसे-तैसे खून की नदियाँ फलाँगता लाहौर चला गया। पंजाब के खून-खरावे ने उसके दिल पर जो कुठाराघात किया उसे हम उसकी नज़्म 'आज' में आज भी हरे धाव के रूप में देख सकते हैं। उसे लाहौर का वातावरण बड़ा विचित्र लगा जिसमें चारों ओर केवल एक ही धर्म के लोग नज़र आते थे। फिर 'सवेरा' में, जिसका वह संपादक बन गया था, उसने कुछ ऐसे लेख लिखे कि पाकिस्तान सरकार ने उसके विरुद्ध वारंट गिरफ़्तारी जारी कर दिये और यों लाहौर को छोड़कर पहले उसने दिल्ली में शरण ली और फिर अपने पुराने अड्डे फ़िल्म जगत बम्बई में चला गया और आश्चर्य है कि बराबर आठ साल से वहीं है।

ताजमहल

ताज, तेरे लिए इक मजहरे-उलफ़त^१ ही सही
तुझ को इस वादी-ए-रंगी^२ से अक़ीदत^३ ही सही

मेरी महबूब ! कहीं और मिलाकर मुझ से !

बज़मे-शाही^४ में शरीवों का गुज़र क्या माने ?
सन्त^५ जिस राह पे हों सतवते-शाही^६ के निशां
उस पे उलफ़त भरी रूहों का सफ़र क्या माने ?

मेरी महबूब पसे - पर्दा - ए - तशहीरे - वफ़ा^७
तूने सतवत के निशानों को तो देखा होता
मुर्दा शाहों के मक्काबिर से^८ बहलने वालो
अपने तारीक^९ मकानों को तो देखा होता

अनगिनत लोगों ने दुनिया में मुहब्बत की है
कौन कहता है कि सादिक^{१०} न थे जज़बे उनके
लेकिन उनके लिए तशहीर का सामान^{११} नहीं
क्योंकि वो लोग भी अपनी ही तरह मुफ़लिस थे

ये इमारातो - मक्काबिर, ये फ़सीलें, ये हिसार^{१२}
मुतलक-उल-हुक्म^{१३} शहनशाहों की अज़मत^{१४} के सतू^{१५}

१. प्रेम का प्रतिरूप २. रंगीन वादी ३. श्रद्धा ४. शाही महफ़िल
५. अक़ित ६. शाहाना शान-शौकत ७. प्रेम के प्रदर्शन (विज्ञापन) के पीछे
८. मक़बरों से ९. अंधेरे १०. सच्चे ११. विज्ञापन की सामग्री १२. दुर्ग
१३. पूर्ण सत्ताधारी १४. महानता १५. सतून

सीना-ए-दहर के^१ नासूर हैं कुहना^२ नासूर
जब है इन में तेरे और मेरे अजदाद का^३ खूं

मेरी महबूब ! उन्हें भी तो मुहब्बत होगी
जिनकी सन्नाई^४ ने बख्शी है इसे शक्ले-जमील^५
उनके प्यारों के मक्काबिर रहे बे-नामो-नमूद^६
आज तक उन पे जलाई न किसी ने कंदील^७

ये चमनज़ार^८, ये जमना का किनारा ये महल
ये मुनक्क़श^९ दरो-दीवार, ये महराब, ये ताक
इक शहनशाह ने दौलत का सहारा लेकर
हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मज़ाक

मेरी महबूब ! कहीं और मिलाकर मुझसे !

१. संसार की छाती के २. पुराने ३. पूर्वजों का ४. कारीगरी
५. सुन्दर रूप ६. गुमनाम ७. दिया ८. बाग ९. चित्रित

सता-ए-नौर^१

मेरे ख्वाबों के झरोकों को सजाने वाली ।
तेरे ख्वाबों में कहीं मेरा गुज़र है कि नहीं ?
पूछ कर अपनी निगाहों से बतादे मुझको ।
मेरी रातों के मुकद्दर में^२ सहर^३ है कि नहीं ?

चार दिन की ये रफ़ाक़त^४ जो रफ़ाक़त भी नहीं ।
उम्र भर के लिए आज़ार^५ हुई जाती है ॥
ज़िन्दगी यूँ तो हमेशा से परेशान सी थी ।
अब तो हर सांस गिरांबार^६ हुई जाती है ॥

मेरी उजड़ी हुई नींदों के शबिस्तानों में^७ ।
तू किसी ख्वाब के पैकर की तरह^८ आई है ॥
कभी अपनी सी, कभी ग़ैर नज़र आती है ।
कभी इख़लास की^९ सूरत, कभी हरजाई है ॥

प्यार पर बस तो नहीं है मेरा, लेकिन फिर भी ।
तू बता दे कि तुझे प्यार करूं या न करूं ?
तूने खुद अपने तबस्सुम से जगाया है जिन्हें ।
उन तमन्नाओं का इज़हार करूं या न करूं ?

तू किसी और के दामन की कली है, लेकिन ।
मेरी रातें तेरी खुशबू से बसी रहती हैं ॥

१. दूसरे की दौलत २. भाग्य में ३. प्रभात ४. साथ ५. मुसीबत
६. बोझल ७. शयनगृहों में ८. प्रतिरूप की तरह ९. सच्चे प्रेम की

तू कहीं भी हो तेरे फूल से आरिज की^१ कसम ।
तेरी पलकें मेरी आँखों पे भुकी रहती हैं ॥

तेरे हाथों की हारारत^२, तेरे सांसों की महक ।
तैरती रहती है अहसास की पहनाई^३ में ॥
ढूँडती रहती है तखईल^४ की बाँहें तुझको ।
सद रातों की सुलगती हुई तनहाई में ॥

तेरा अलताफ़ो-करम^५ एक हकीकत^६ है मगर ।
ये हकीकत भी हकीकत में^७ फसाना हो न हो ॥
तेरी मानूस^८ निगाहों का ये मोहतात पयाम ।
दिल के खूँ करने का इक और बहाना ही न हो ।

कौन जाने मेरे इमरोज़^९ का फ़र्दा^{१०} क्या है ?
कुरबतें^{११} बढ़ के पशेमान भी हो जाती हैं ॥
दिल के दामन से लिपटती हुई रंगीं नज़रें ।
देखते-देखते अनजान भी हो जाती हैं ॥

मेरी दरमांदा^{१२} जवानी की तमन्नाओं के ।
मुज़महिल^{१३} ख़वाब की ताबीर^{१४} बतादे मुझको ॥
तेरे दामन में गुलिस्तां भी हैं वीराने भी ।
मेरा हासिल^{१५} मेरी तकदीर बता दे मुझको ॥

१. कपोलों की २. गर्मी ३. फैलाव ४. कल्पना ५. कृपायें
६. वास्तविकता ७. वास्तव में ८. परिचित ९. आज (वर्तमान) १०. कल
(भविष्य) ११. निकट सम्बन्ध (प्रेम) १२. बेबस १३. शिथिल
१४. स्वप्न-फल १५. मुझे क्या मिलेगा

तेरी आवाज़

रात सुनसान थी, बोझल थीं फ़ज़ा की सांसें ।
 रूह पर छाये थे बेनाम ग़मों के साये ॥
 दिल को ये ज़िद थी कि तू आये तसल्ली देने ।
 मेरी कोशिश थी कि कम्बख़्त को नींद आ जाये ॥

देर तक आंखों में चुभती रही तारों की चमक ।
 देर तक ज़हन सुलगता रहा तनहाई में ॥
 अपने ठुकराये हुए दोस्त की पुरसिश^१ के लिए ॥
 तू न आई मगर इस रात की पहनाई^२ में ।

यूँ अचानक तेरी आवाज़ कहीं से आई ।
 जैसे परबत का जिगर चौर के भरना फूटे ॥
 या ज़मीनों की मुहब्बत में तड़प कर नागाह^३ ।
 आसमानों से कोई शोख सितारा टूटे ॥

शहद-सा घुल गया तल्लाबा-ए-तनहाई में^४ ।
 रंग-सा फैल गया दिल के सियाख़ाने में^५ ॥
 देर तक यूँ तेरी मस्ताना सदायें^६ गूँजीं ।
 जिस तरह फूल चटकने लगे वीराने में ॥

१. कुशल पूछना २. फैलाव ३. अचानक ४. एकांत के कड़वेपन में
 ५. अंधेरेपन में ६. आवाज़ें

तू बहुत दूर किसी अंजुमने-नाज़^१ में थी ।
 फिर भी महसूस किया मैंने कि तू आई है ॥
 और नगमों में छुपाकर मेरे खोये हुए ख्वाब ।
 मेरी रूठी हुई नींदों को मना लाई है ॥

रात की सतह^२ पे उभरे तेरे चेहरे के नुक़्श^३ ।
 वही चुप-चाप-सी आंखें, वही सादा-सी नज़र ॥
 वही ढलका हुआ आंचल, वही रफ़्तार का ख़म^४ ।
 वही रह-रह के लचकता हुआ नाजुक पैकर^५ ॥

तू मेरे पास न थी, फिर भी सहर^६ होने तक ।
 तेरा हर सांस, मेरे जिस्म को छूकर गुज़रा ॥
 क़तरा-क़तरा तेरे दीदार की शबनम टपकी ।
 लम्ह-लम्हा तेरी खुशबू से मुअ़त्तर^७ गुज़रा ॥

अब यही है तुझे मंज़ूर तो ऐ जाने-बहार ।
 मैं तेरी राह न देखूंगा सियाह रातों में ॥
 ढूँढ लेंगे मेरी तरसी हुई नज़रें तुझ को ।
 नगमा-ओ-शेरकी उमड़ी हुई बरसातों में ॥

अब तेरा प्यार सतायेगा तो मेरी हस्ती ।
 तेरो मस्ती भरी आवाज़ में ढल जायेगी ॥
 और ये रूह जो तेरे लिए बेचैन-सी है ।
 गीत बनकर तेरे होंटों पे मचल जायेगी ।

तेरे नगमात^८ , तेरे हुस्न की ठंडक लेकर ।
 मेरे तपते हुए माहील में आ जाएंगे ॥
 चन्द घड़ियों के लिए हो, कि हमेशा के लिए ।
 मेरी जागी हुई रातों को सुला जाएंगे ॥

१. महफ़िल २. स्तर ३. नैन-नक्श ४. चाल की लचक ५. बदन
 ६. सुबह ७. सुगंधित ८. नगमे

चकले

ये कूचे ये नीलाम - घर दिलकशी के,
ये लुटते हुए कारवां ज़िन्दगी के,
कहां हैं कहां हैं मुहाफ़िज़ खुदी के,

सनाखवाने - तकदीसे - मशरिफ़ कहां हैं ?

ये पुरपेच गलियां, ये बेख़वाब बाज़ार,
ये गुमनाम राही, ये सिक्कों की भंकार,
ये अस्मत के सौदे, ये सौदों पे तकरार,

सनाखवाने - तकदीसे - मशरिफ़ कहां हैं ?

तअफ़फ़ुन से^२ पुर नीम-रोशन ये गलियां,
ये मसली हुई अध - खिली ज़र्द कलियां,
ये बिकती हुई खोखली रंग - रलियां,

सनाखवाने - तकदीसे - मशरिफ़ कहां हैं ?

वो उजले दरीचों में पायल की छन-छन,
तनफ़फ़ुस की^३ उलभन पे तबले की धम-धम,
ये बेरूह कमरों में खांसी की ढन-ढन,

सनाखवाने - तकदीसे - मशरिफ़ कहां हैं ?

ये गूंजे हुए कहकहे रास्तों पर,
ये चारों तरफ़ भीड़ - सी खिड़कियों पर,
ये आवाज़ें खिंचते हुए आंचलों पर,

सनाखवाने - तकदीसे - मशरिफ़ कहां हैं ?

१. पूर्वी देशों की पवित्रा के गुण गाने वाले कहां हैं ? २. दुर्गंध से
३. श्वासों की

ये फूलों के गजरे, ये पीकों के छींटे,
ये बेबाक नज़रें, ये 'गुस्ताख़ फ़िक्रे,
ये ढलके बदन और ये मदकूक^१ चेहरे,

सनाख़वाने - तक्रदीसे - मशरिक़ कहाँ हैं ?

ये भूखी निगाहें हसीनों की जानिब,
ये बढ़ते हुए हाथ सीनों की जानिब,
लपकते हुए पांव जीनों की जानिब,

सनाख़वाने - तक्रदीसे - मशरिक़ कहाँ हैं ?

यहाँ पीर^२ भी आचुके हैं जवां भी,
तनूमंद^३ बेटे भी, अब्बा मियाँ भी,
ये बीबी भी है और बहिन भी है मां भी,

सनाख़वाने - तक्रदीसे - मशरिक़ कहाँ हैं ?

मदद चाहती है ये हव्वा की बेटो,
यशोधरा की हमजिस^४, राधा की बेटो,
पयम्बर^५ की उम्मत^६, जुलेखा की बेटो,

सनाख़वाने - तक्रदीसे - मशरिक़ कहाँ हैं ?

बुलाओ खुदायाने - दीं को^७ बुलाओ,
ये कूचे, ये गलियाँ, ये मन्ज़र दिखाओ,
सनाख़वाने-तक्रदीसे - मशरिक़ को लाओ,

सनाख़वाने - तक्रदीसे - मशरिक़ कहाँ हैं ?

१. क्षय रोग के मारे हुए २. बूढ़े ३. कड़ियल ४. सह-जाती
५. पैगम्बर ६. अनुयायी समुदाय ७. धर्म के भगवानों को

फुटकर शेर

हयात^१ इक मुस्तकिल गम^२ के सिवा कुछ भी नहीं ।
खुशी भी याद आती है, तो आंसू बन के आती है ॥

अपनी तबाहियों का मुझे कोई गम नहीं ।
तुमने किसी के साथ मुहब्बत निभा तो दी ॥

फिर न कीजे मेरी गुस्ताख - निगाही^३ का गिला ।
देखिये आपने फिर प्यार से देखा मुझ को ॥

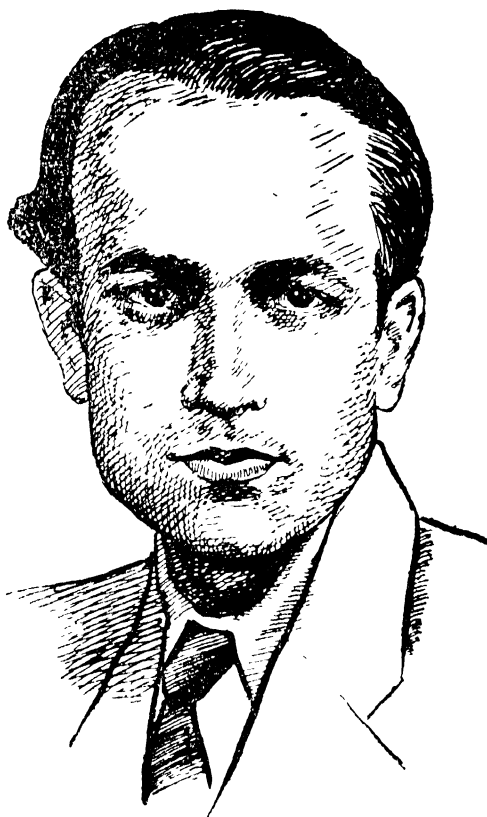
गर ज़िन्दगी में मिल गये फिर इत्फ़ाक़ से ।
बूझेंगे अपना हाल तेरी बेबसी से हम ॥

अभी तक रास्ते के पेचो-खम से दिल धड़कता है ।
मेरा ज़ौक़े-तलब शायद अभी तक खाम^४ है साक़ी ॥

ऐ ग़मे - दुनिया तुझे क्या इल्म^५ तेरे वास्ते ।
किन बहानों से तबीयत राह पर लाई गई ॥

अब ऐ दिले - तबाह तेरा क्या खयाल है ?
हम तो चले थे काकुले - गेती^६ सँवारने ॥

१. जीवन २. स्थायी दुख ३. नज़रों ४. कच्चा ५. मालूम ६. संसार के केश (संसार)



‘वामिक’ जौनपुरी

रबाबे-ज़िन्दगी में जितने टूटे तार होते हैं
उन्हीं को जोड़कर नग़मे मेरे तैयार होते हैं

परिचय

कहा जाता है कि एक सुहानी सुबह को जब 'बायरन' सोकर उठा तो उसे मालूम हुआ कि अपनी कविता 'Pilgrimage of Child Herold' द्वारा वह अंग्रेजी भाषा का एक विख्यात कवि बन चुका है। लगभग ऐसी ही एक घटना 'वामिक्र' के साथ घटी। जनवरी १९४४ की एक संध्या को पूरे उर्दू जगत में उसका नाम बच्चे-बच्चे की ज़बान पर था। उसका अमर गीत 'भूखा बंगाल' देश के कोने-कोने में गाया जा रहा था। विभिन्न भाषाओं में उसका अनुवाद हो रहा था। गीत के एक-एक बोल पर बच्चे अपने खिलौने, स्त्रियाँ अपने आभूषण और पुरुष अपनी जेबों से नोट और सिक्के निकाल-निकाल कर गाने वालों के कदमों पर डाल रहे थे। 'वामिक्र' ने उसके बाद भी कई सुन्दर कलाकृतियाँ प्रस्तुत कीं जैसे 'मीना बाज़ार', 'ज़ोया तानिया', 'रात के दो बजे', 'मीरे-कारवां' (गांधी), 'तक्रसीमे-पंजाब', 'खसे-बिसमिल', 'ज़मीन' इत्यादि। लेकिन मुझे यह कहते हुए कोई संकोच नहीं हो रहा कि यदि 'वामिक्र' 'भूखा बंगाल' के बाद और कुछ न लिखता तब भी आधुनिक उर्दू शायरी के इतिहास में उसका नाम मोटे अक्षरों में मौजूद रहता।

अहमद मुजतबा 'वामिक्र' का जन्म १९१२ ई० में जौनपुर (यू० पी०) के एक गांव में हुआ। घर का वातावरण बिल्कुल सरकारी और जागीरदारी था। घर वाले या तो ज़मींदार-पेशा थे या अंग्रेजी सरकार के समर्थक तथा उच्चाधिकारी। 'वामिक्र' की शिक्षा-दीक्षा उसी वातावरण में हुई और अपने बचपन में

ही उसे अपने इर्द-गिर्द होने वाले अत्याचार, अन्याय और वर्ग-संघर्ष का अनुभव होने लगा। उसके मस्तिष्क पर चोटें पड़तीं जिन्हें वह भीतर ही भीतर दबाने पर विवश होता, लेकिन इस प्रकार दबाने से उसके हृदय में विद्रोही भावनायें पनपती रहीं और आखिर प्रौढ़ होते ही पहले उसने अपना कलम उठाया और फिर उसके कदम भी उठ गये। उसके शायर बनने की कहानी भी काफ़ी रोचक है जिसे उसकी अपनी ज़बान से सुनिये :

“१९४० में मेरे एक मित्र ने मुझ से बड़े स्नेह से पूछा कि तुम्हें इतने ज्यादा शेर याद हैं और तुम मुश्किल से ही गद्य में बात करते हो तो फिर तुम स्वयं क्यों शेर नहीं कहते ? मैंने इस खयाल से कि कौन गद्य में जवाब देकर बात को लम्बा करे उन पर अपनी योग्यता का सिक्का जमाने के लिए वही पुराना फ़ारसी का शेर—‘शेर गुप्ततन गर्चे दुर सुप्ततन बुअद’ (शेर कहना यद्यपि मोती पिराने से भी कठिन काम है लेकिन शेर समझना उससे भी कठिन काम है) पढ़ दिया। लेकिन महानुभाव इस आसानी से मानने वाले कब थे। हाथ धोकर पीछे पड़ गये। बात यह थी कि मैं शेर को हमेशा एक चमत्कार और शायर को कोई अलौलिक व्यक्ति समझता था और यद्यपि शेर कहने की एक दबी-दबी-सी इच्छा अपने दिल में भी पाता था लेकिन इस भावना को क्रियात्मक रूप देने का साहस कभी न किया था। उन्हें फिर समझाया कि जनाव शेर कहने के लिए चाहे दो वक्त का खाना न भिले लेकिन इश्क करना बहुत जरूरी है। वे बोले, पहले शेर कहना शुरू कर दो बाद में इश्क भी हो जाएगा। कम से कम तुम्हारे शेर पढ़ने वाले तो तुम्हें जरूर आशिक्र समझने लगेंगे। मुहब्बत करने को मेरा भी दिल चाहता था इसलिए मैंने गज़लें कहना (गढ़ना) शुरू कर दीं। बिल्कुल परम्परागत ढंग के पद्यों में भक्तिरस, शृंगाररस इत्यादि को अपने शेरों में समोने का प्रयत्न करने लगा। साल भर में ही मुझे अनुभव हो गया कि सचमुच मैं किसी पर आशिक्र हो गया हूँ और अपने आयु-अनुपात से मुझे जो भी अच्छी सूरत नज़र आती उसे देखकर यह खयाल होता कि कहीं मैं उसी पर तो आशिक्र नहीं हूँ ? यह सिलसिला दो साल तक जारी रहा.....

“उस समय दूसरा महायुद्ध पूरे जोबन पर था। सारे देश में भूख-नंग की आंधियां चल रही थीं। अंग्रेजी और अमरीकी सिपाही सड़कों, गलियों को रौंदते फिर रहे थे। निचले मध्य-वर्ग और निर्धनों के घर वीरान और चकले आबाद हो रहे थे.....चारों ओर जीवन और उसके सुन्दर मूल्य फ़ासिज़्म के हाथों दम तोड़ रहे थे। ऐसे में मुझे लगा कि जिस प्रकार की परम्परागत

शायरी में कर रहा हूँ वह एक अक्षम्य नैतिक अपराध है..... मैं इस परिणाम पर पहुँच गया कि साहित्य को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। अब मैं केवल अपने व्यक्तिगत अनुभवों से काम ले रहा था.....”

उन दिनों ‘वामिक’ अपने जीवन और अपनी शायरी के उस मोड़ पर आ गया था जहाँ पहुँचकर कोई भी कलाकार नये सिरे से जन्म लेता है। वह कहता है कि वह भावुक नहीं है लेकिन वह स्वाभाविक रूप से भावुक और रसिक है। उस पर उसकी सामाजिक और राजनीतिक चेतना ने सोने पर सुहागे का काम किया और वह—

ये रंजो-खुशी खुद कुछ भी नहीं एहसासो-नज़र के धोखे हैं
कहते-कहते चीख उठा :

दरिया में तलातुम बर्पा है कश्ती का फ़साना क्या माने ?

गिरदाब^१ से जब लड़ना है तुम्हें तिनके का सहारा क्या माने ?

ये नौहा-ए-कश्ती^२ बन्द करो, खुद मौजे-तूफ़ान^३ बन जाओ।

पैरों के तले साहिल होगा, साहिल की तमन्ना क्या माने ?

समय के साथ-साथ उसमें हर अनुचित प्रतिबन्ध के प्रति विद्रोही-भावना बढ़ती गई जैसा कि वह अपनी नज़म ‘पापी’ में कहता है :

जी में आता है कि क़ानूनी हदों को तोड़ दूँ,

ताक़े-जिदाने-तमद्दुन की^४ सलाखें मोड़ दूँ,

शीशा-ए-मज़हब को संगे-मासियत से^५ फोड़ दूँ,

ऐसी हालत में भी क्या मुझसे मुहब्बत है तुम्हें ?

उसने तीन साल तक वकालत की और छोड़ दी—शायद इसलिए कि वकालत उसके समीप स्वतन्त्र और सच्चा पेशा नहीं था। फिर कुछ समय तक इधर-उधर भटकने के बाद उसने सरकारी नौकरी करली, लेकिन सात साल बाद उसे भी छोड़ दिया। उसका कहना है कि नौकरी में रहते हुए वह अपनी कला का खून होते नहीं देख सका। उसके बाद वह अपने गाँव में वापस चला गया और किसानों में काम करने लगा। इस बीच में उसने महसूस किया कि प्रगति-शील कवि जनता के सम्बन्ध में तो बहुत कुछ लिख रहे हैं लेकिन जनता के लिए बहुत कम अपना कलम उठाते हैं। अतएव उसने अपने प्रांत की सहल और ग्रामीण भाषा में किसानों तथा अन्य श्रमजीवियों के लिए वहाँ की पुरानी

१. भंवर २. नाव के डूबने का शोकालाप ३. तूफ़ानी लहर

४. संस्कृति के कारावास की खिड़की की ५. पाप-रूपी पत्थर

शैली में आल्हा, बिरहा, रसिया, कजली, चेती आदि लिखीं जिन्हें पर्याप्त प्रशंसा प्राप्त हुई। उसका कहना है कि लोक चीन के नेता 'माओ' के कला-सम्बन्धी विचारों ने उसके सिद्धांतों पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है।

कला के सम्बन्ध में 'वामिक्र' एक अपना सिद्धांत भी रखता है। उसका कहना है कि विषय स्वयं कलात्मक अथवा अकलात्मक नहीं होता। वह तो कलाकार का दृष्टिकोण है और कहने का ढंग है जो विषय को अच्छा या बुरा बनाता है। उदाहरणतः अपने एक शेर में वह मजदूर और किसान को इस प्रकार प्रस्तुत करता है :

नजर आ रहा है पस्ती से अरूजे-इब्ने-आदम^१।

कि ज़मीरे-खाको-आहन हुए जिन्दगी के महरम^२ ॥

'वामिक्र' ने तुकान्त नज़में अधिक और निर्बंध तथा अतुकान्त नज़में कम कही हैं। इस सम्बन्ध में एक स्थान पर उसने कहा था कि "निर्बंध तथा अतुकान्त नज़म लिखने के इरादे से निर्बंध तथा अतुकान्त नज़म लिखना एक अकलात्मक कार्य है। मैं जब मानसिक उलझनों और काव्य-विषय की माँगों से विवश हो जाता हूँ तो उसे निर्बंध तथा अतुकान्त अथवा अर्ध निर्बंध तथा अर्ध-तुकान्त रूप में प्रस्तुत करता हूँ। लेकिन इस विवशता में भी कला के तकाज़ों से विमुख नहीं होता। निर्बंध तथा अतुकान्त शायरी में जो एक प्रकार का सपाटपन उत्पन्न हो जाने का भय होता है मैं उसे साहित्य की अन्य कला-सम्बन्धी विभूतियों से पूरा करने की चेष्टा करता हूँ।" मेरे विचार में अपनी इस चेष्टा के कारण ही उसकी निर्बंध तथा अतुकान्त नज़मों में नये-नये संकेत और नई-नई प्रक्रियाएँ मिलती हैं। इस रूप में उसकी संक्षिप्ततर नज़म यह है :

मेरे एवाने-तखय्युल^३ के सरासीमा^४ नुक़्श,

यूँ उभरते हैं, चमकते हैं, बिखर जाते हैं,

जैसे ये चाँद ये तारे ये शिहबे-साक्रिब^५।

जिन्दगी अपनी मगर पा-ए-हवादिस के तले^६,

रेंगती, डरती, सिसकती ही चली जायेगी।

मेरे हंसते हुए चेहरे पे न जाना ऐ दोस्त,

१. मानव-उत्थान २. मिट्टी और लोहे का अन्तःकरण (मजदूर-किसान) जीवन के जानकार हो गये ३. कल्पना-महल ४. विक्षुब्ध ५. टूटते हुए तारे ६. दुर्घटनाओं के पैरों (बोझ) के नीचे

जहर को जहर समझ कर ही पिये बैठा हूँ,
 एक अंबार दहकते हुए अंगारों का,
 अपने सीने में ब-हर-हाल लिये बैठा हूँ।

‘वामिक’ उर्दू के उन शायरों में से हैं जो सामयिक विषयों पर बड़ी तेजी से कलम चलाते हैं, लेकिन वह सामयिक विषयों पर कलम चलाते हुए कहीं से कहीं भटक जाने वाले शायरों में से नहीं हैं। उसकी शायरी का प्रारम्भ ही बंगाल के अकाल ऐसे सामयिक विषय से हुआ और वह आज भी अपनी कलानिपुणता से सामयिक विषयों को सुन्दर कला-कृतियों के सांचे में ढाल रहा है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उसने अन्य विषय नहीं लिये। उसके दोनों कविता-संग्रहों (‘चीखें’ और ‘जर्स’) में विभिन्न विषयों की पर्याप्त मात्रा मिलती है और सच तो यह है कि कुछ स्थानों को छोड़कर उसने जिस विषय पर भी कलम उठाया है, उसके साथ पूरा-पूरा न्याय किया है।

भूखा बंगाल

पूरव देस में डुग्गी बाजी फैला सुख का काल,
दुख की अग्नि कौन बुझाये सूख गये सब ताल,
जिन हाथों ने मोती रोले आज वही कंगाल रे साथी,

आज वही कंगाल !

भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

पीठ से अपने पेट लगाये लाखों उल्टे खाट
भीख-मंगाई से थक-थक कर उतरे मौत के घाट
जीवन-मरन के डांडे मिलाये बैठे हैं चंडाल रे साथी
बैठे हैं चंडाल !

भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

नद्दी-नाले गली-डगर पर लाशों के अंबार,
जान की ऐसी महंगी शै का उलट गया व्योपार,
मुट्ठी-भर चावल से बढ़कर सस्ता है ये माल रे साथी,
सस्ता है ये माल !

भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

कोठरियों में गांजे बैठे बनिये सारा नाज,
सुन्दर नारी भूख की मारी बेचे घर-घर लाज,
चौपट नगरी कौन संभाले चार तरफ़ भूचाल रे साथी,
चार तरफ़ भूचाल !

भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

पुरखों ने घरबार लुटाया छोड़ के सब का साथ,
 मायें रोई बिलक-बिलक कर बच्चे भये अनाथ,
 सदा सुहागन विधवा बाजे खोले सिर के बाल रे साथी,
 खोले सिर के बाल !

भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

अत्ती-पत्ती चबा-चबा कर जूझ रहा है देश,
 मौत ने कितने घूँघट मारे बदले सौ-सौ भेस,
 काल बिकट फैलाय रहा है बीमारी का जाल रे साथी,
 बीमारी का जाल !

भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

धरती माता की छाती में चोट लगी है कारी,
 माया काली के फंदे में वक्त पड़ा है भारी,
 अब तो उठ जा नींद के माते देख तो जग का हाल रे साथी,
 देख तो जग का हाल !

भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

प्यारी माता चिन्ता मत कर हम हैं आने वाले,
 कुन्दन-रस खेतों से तेरी गोद बसाने वाले,
 खून पसीना हल हंसिया से दूर करेंगे काल रे साथी,
 दूर करेंगे काल !

भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

मीना बाजार

मीनारों पर अज्ञां हुई
 ये शाम भी कहां हुई
 पुजारी मन्दिरों में आके शंख फूंकने लगे
 ये शाम भी कहां हुई
 गजर बजा—बटन दबे
 वो कुमकुमे चमक उठे
 दुकानें जगमगा गईं
 निगाहों में समा गईं
 वो महवशाने-सीम-बर^१
 फुसूँ-तराजे - रहगुजर^२
 दरों में^३ अपने आ गईं

और अपनी कायनाते-गम पे खुद ही जैसे छा गईं
 लबे-खमोश में नई कहानियां लिए हुए
 रखों पे^४ गाजों से लदी जवानियां लिए हुए
 तपे हुए दिमागो-दिल में कितने शोले मुशतअल^५
 ये वो खिजां-रसीदा^६ हैं बहार जिन से मुनफ़इल^७
 ज़माने के सुलूक से
 ये तंग आके भूख से
 रगड़ रही हैं एड़ियां
 मज़ल्लतों के^८ गार में

१. चन्द्रमुखी और चांदी ऐसे बदन वाली सुन्दरियां २. रास्ते में जादू
 बिखेरने वाली ३. दरवाजों में ४. चेहरों पर ५. भड़क रहे ६. पतझड़
 की मारी हुई ७. लज्जित ८. तुच्छताओं, हीनताओं के

और इन्तकाम के लिए
 खड़ी हैं इन्तजार में
 समाज की ये बेटियां
 समाज ही की बीवियां
 नज़र के तेज़ भालों से
 शराब के पियालों से
 फ़रिश्तों से शरीफ़-तर
 ज़मीं के रहने वालों से
 ख़िराजे - हुस्न पायेंगी
 हँसेंगी और हँसायेंगी
 ये वो हैं जिनकी ज़िन्दगी
 मुसरतों से दूर है
 ये वो हैं जिनकी हर हँसी
 जराहतों से^१ चूर है

ये वो हैं जिनका घर बुलंदियों पे रह के पस्त है
 ये वो हैं जिनकी फ़तह भी शिकस्त ही शिकस्त है
 मगर इन्हीं पे संगसारियों^२ का हुक्म आम है
 “बुज़ूद में ये कब से और किस तरह से आ गई ?”
 जवाब इसका फिर मिलेगा ये तो वक़्त-शाम है
 थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहां हुई ?

चलो अब आगे बढ़ चलें

यहाँ ठहर के क्या करें

हमारे हम-सफ़र न जाने किस तरफ़ चले गये

अकेला हमको छोड़कर

मगर दिले-हज़ीं ठहर

१. घावों से २. व्यभिचारिणी को पत्थर मार-मारकर मार डालने की प्राचीन परम्परा

वो सामने दोराहे पर
 ये कैसा अज़दहाम^१ है
 ये कैसा इन्तज़ाम है
 ये बादे-पा^२ सवारियों पे कैसा एहतमाम है
 उरूसी धूम - धाम^३ है
 ये बेबसी की रुखसती
 उजाले में ये तीरगी^४
 सदाए-नै^५ से किस की हर फ़ुगा^६ लिपट के रह गई
 ये शाम भी कहां हुई
 अभी अभी जवानसाल
 एक ज़िन्दा लाश को
 हरीर^७ में लपेट कर
 मुसरतों के दोश पर^८
 किसी तिलाई^९ कुहनासाल^{१०} मक़बरे को सौंपने
 ये लोग ले के जायेंगे
 और इसके बाद होगा क्या
 ये लोग भूल जायेंगे
 किसी ने ग़ैज़^{११} में कहा
 "ये कौन बद - शुगून है
 जबान इसकी खेंच लो
 ग़रीबे-शहर^{१२} हो कोई
 तो शहर से निकाल दो"
 उधर निगाहे - अहरमन^{१३}
 हवेलियों पे खंदाज़न^{१४}

१. जमघटा २. हवा से बातें करने वाली ३. विवाह की धूम-धाम
 ४. अन्धकार ५. शहनाई की आवाज़ ६. विलाप ७. रेशम ८. कांघों
 ९. सुनहले १०. पुराने ११. क्रोध १२. परदेशी १३. नाशकारी देवता
 की दृष्टि १४. हँस रहा है

इधर सवादे-वक्त पर^१
 उम्मीदो-बीम की^२ किरन
 थके हुए निजाम की ये शाम भी कहां हुई
 चलो अब आगे बढ़ चलें
 यहां ठहर के क्या करें
 हमारे हम-सफ़र न जाने किस तरफ़ चले गये
 अकेला हम को छोड़ कर
 किधर से आ गया किधर
 ये तंगो - तार^३ रास्ते
 मगर ये किस की चीख पर
 क्रदम हमारे रुक गये
 किसी निहानखाने^४ का लुटा हुआ शबाब है
 कि हाथ में समाज के शिकस्ता इक रबाब है
 मुगन्नियों को^५ दो खबर
 कि इस के तार-तार में
 दबे हुए शरार में
 न जाने कौन राग है
 न जाने कितनी आग है
 मगर ये किस के वास्ते
 ये तंगो - तार रास्ते
 सदाओं पर सदायें^६ दीं
 यहां पर अब कोई नहीं
 बस इस चिराग़ झिलमिला रहा था वो भी बुझ गया
 पलक लरज़^७ के रह गई
 और इक निगाहे - वापसी^८

१. समय रूपी नगर पर २. आशा और निराशा की ३. तंग और अंवेरे
 ४. गुप्त स्थान ५. संगीतकारों को ६. आवाज़ों पर आवाज़ें ७. कांप
 ८. पलटती हुई नज़र

फसाने कितने कह गई
 चिता भी खाक हो चुकी
 जवानी खून रो चुकी
 ये कौन शै दबे कदम ठिठक के दूर हट गई
 दरिदे चढ़ते आ रहे हैं मरघटों की राह में
 सियाही बढ़ती जा रही है फिक्र में, निगाह में
 ये मुस्तसर सी दास्तां
 और इस में इतनी तलखियां
 तलू-ए-शब^१ में अलअमां^२
 ये आधी रात का समां
 थके हुए निजाम की ये शाम भी कहां हुई
 चलो अब आगे बढ़ चलें
 यहां ठहर के क्या करें
 हमारे हम-सफ़र न जाने किस तरफ़ चले गये
 अकेला हम को छोड़ कर ।

फुटकर शेर

यक्रीनन आ गया है मैकदे में तश्नालब^१ कोई ।
कि पीता जा रहा हूं, कैफ़ियत^२ कम होती जाती है ॥

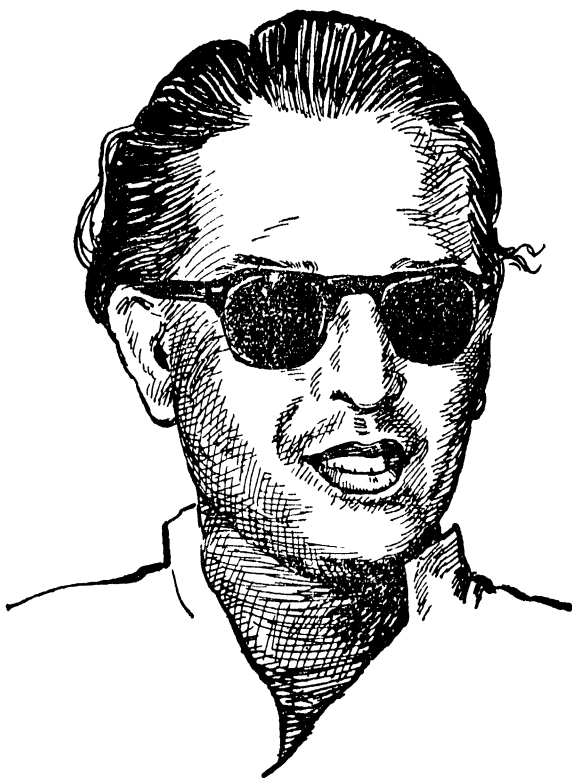
◇ ◇ ◇
मेरी खामोशी पे बरहम न हो मुझ से ऐ दोस्त ।
चलने वाले ही तो दम लेते हैं चलने के लिए ॥
पी लिया करते हैं जीने की तमन्ना में कभी ।
उगमगाना भी जरूरी है संभलने के लिए ॥

◇ ◇ ◇
उनसे समझौते पे दिल मायल नहीं ।
हम अधूरी बात के क्रायल नहीं ॥

◇ ◇ ◇
उम्मीद ही पर जीते रहना तौहीन है जीने वाले की ।
इस इल्मो-यक्री^३ की दुनिया में जीने के सहारे और भी हैं ॥
इन चलती-फिरती लाशों पर मौक़ूफ़^४ नहीं ग़म का मंज़र ।
कागज़ के कफ़न में लिपटे हुए दस्तूर के माने और भी हैं ॥

◇ ◇ ◇
सुखं दामन में शफ़क़^५ के कोई तारा तो नहीं ?
हम को मुस्तक़बिले-ज़रीं ने^६ पुकारा तो नहीं ?
दस्तो-पा^७ शल हैं किनारे से लगा बैठा हूं ।
लेकिन इस शोरिशे-तूफ़ान से हारा तो नहीं ॥
इस ग़मे-दोस्त ने क्या कुछ न सितम ढाये मगर ।
ग़मे-दौरां की तरह जान से मारा तो नहीं ॥

१. प्यासा २. नशा ३. ज्ञान और विश्वास (श्रद्धा) ४. आघातित
५. गोघुलित समय का आकाश ६. सुनहले भविष्य ने ७. हाथ-पैर



गुलाम रब्बानी 'ताबां'

मेरा सोज़े-दिल भी शामिल है निगारे अंजुमन में
मैं चिरागे-आज़ीं हूँ, मेरी रोशनी दवामी

परिचय

‘ताबां’ मेरा बहुत प्रिय मित्र है, इसलिए उसके विषय में कुछ लिखते हुए मैं डर सा रहा हूँ कि कहीं मेरी यह मित्रता उसके और मेरे दोनों के पक्ष में अहितकर सिद्ध न हो ।

मेरी उसकी मित्रता आज से छः सात साल पहले उन दिनों हुई जब फ़तहगढ़ (उत्तर-प्रदेश) जेल से रिहा होकर और अपना वकालत का पेशा त्याग कर वह मकतबा जामिया (जामियानगर) में काम करने के लिये दिल्ली आया था । पहली बार मैंने उसे एक साहित्यिक बैठक में देखा और मैंने देखा कि उसकी उपस्थिति में सभा के सदस्य एक विचित्र प्रकार का हीनता-भाव अनुभव कर रहे हैं । कारण इसका यह नहीं था कि वह कोई बहुत बड़ा और बहुत प्रसिद्ध शायर था बल्कि इसका कारण उसका छः फुट का क्रद, भरा-भरा बदन, सफ़ेद और सुख रंग, सिर पर सियाह, सफ़ेद और सुनहले बालों का यह बड़ा छत्ता, आँखों पर चढ़ा बल्कि मढ़ा हुआ सियाह चश्मा और मुंह में दबा हुआ आयरिश पाइप था और यों शायर की बजाय वह सेना का कोई जनरल दिखाई देता था, जिससे उसके मातहत लोग तो भय खाते ही हैं, आम नागरिक भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते । लेकिन यदि मेरी स्मरण-शक्ति मेरा साथ दे रही है तो मुझे अच्छी तरह याद है कि दो-तीन मुलाकातों में ही पहले इस सैनिक के तमग़े, फिर वर्दी यहाँ तक कि भोल की तरह चेहरे का रोब भी उतर गया और भीतर से एक अत्यन्त अहानिकारक, सहानुभूतिपूर्ण और कोमल-आत्मा निकल आई । और आज केवल मैं ही उसे पसन्द नहीं करता, वह

दिल्ली के पूरे सांस्कृतिक क्षेत्र में बड़ी प्रियता की दृष्टि से देखा जाता है ।

शरीर तथा आत्मा का यह अंतर उसके अपने पक्ष में, उस संस्था के पक्ष में जिसमें वह काम करता है, और उस साहित्यिक आंदोलन के पक्ष में, जिससे वह तन-मन से सम्बंधित है, बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है । आप उसके जिम्मे कोई कठिन से कठिन कार्य डाल दीजिये, किसी सरकारी अफसर से ऐसा धी लाने को कह दीजिये जो टेढ़ी उंगलियों से भी न निकलता हो, किसी ऐसे व्यक्ति से भिड़ा दीजिये जो उसके सिद्धांतों का कट्टर विरोधी हो और किसी ऐसी सभा में भेज दीजिये जिसका प्रत्येक सदस्य किसी गलतफ़हमी के आधार पर एक-दूसरे का शत्रु बना बैठा हो, वह चुटकियों में सब को राम कर लेगा ।

दूसरों को राम करने का यह सिलसिला, जो आज इस स्तर पर पहुँच चुका है कि उसे कभी मात नहीं होती, बहुत पहले से शुरू हो चुका है, उस समय से, जब वह अभी बच्चा ही था और उसे प्रायः मात हुआ करती थी । उसका घराना एक जागीरदार घराना^१ था । पिता 'खान साहब' थे और बड़े भाई 'खान बहादुर', लेकिन बड़े मियाँ सो बड़े मियाँ छोटे मियाँ सुबहानअल्ला के विपरीत 'छोटे मियाँ' कांग्रेस के जलसों-वलसों में जा पहुँचते थे । घर में लगे हुए अंग्रेज़ अधिकारियों के चित्रों की आँखें फोड़ देते थे और फिर पाठशाला के जमाने में तो छोटे मियाँ और भी गुल खिलाने लगे । एक बार फरुखाबाद के मिशन स्कूल से छुट्टियाँ बिताने घर आये हुए थे कि उन्हीं दिनों डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट का तबादला हो गया और चूँकि उसे कायमगंज से होकर गुज़रना था, इसलिए कायमगंज के इस अंग्रेज़-दोस्त खानदान ने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहब के सम्मान में स्टेशन पर चाय की दावत का प्रबन्ध किया और घर के सब लोगों को सख्त तालीद कर दी कि वे गुलाम रब्बानी पर कड़ी नज़र रखें ताकि वह स्टेशन पर न पहुँचने पाए । उसे स्टेशन पर तो न जाने दिया गया लेकिन जब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट महोदय ने चाय की प्याली होंटों से लगाई तो ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी बिच्छू ने उन्हें डंक मार दिया हो । 'छोटे मियाँ' ने स्टेशन भेजी जाने वाली शक्कर का डब्बा साल्ट आफ़ मैगनेशिया से भर दिया था ।

अंग्रेज़-शासकों के प्रति घृणा के इस विष को मन में दबाये गुलाम रब्बानी शिक्षा ग्रहण करता रहा । घर के प्राणी उसे डाँटने-डपटने के साथ-साथ इस विचार से प्रसन्न भी होते रहे कि पूरे खानदान में वही पहला व्यक्ति था जो

१. 'ताबां' १४ फरवरी १९१४ को पितौरा (गाँव) कायमगंज, जिला फरुखाबाद के एक आफ़रीदी पठान घराने में पैदा हुआ ।

ग्रेजुएट बन रहा था और ग्रेजुएट बनते ही अपने असर-रसूख से वे उसे कोई बड़ा सरकारी पद दिलवा देंगे । लेकिन उनके दुख की सीमा न रही जब आगरा यूनिवर्सिटी से बी० ए० और फिर एल-एल० बी० करने के बाद वह गाँव लौटा तो उनके विचार में वह पक्का 'कम्युनिस्ट' बन चुका था । फ़र्रुखाबाद में उसने प्रेक्टिस शुरू की लेकिन उसके कथनानुसार एक बार जो मवक्किल उसके पास पहुँचा फिर कभी उसकी सूरत दिखाई न दी और कारण इसका यह था कि वकालत की प्रेक्टिस की बजाय वह शेरों-शायरी की प्रेक्टिस में अधिक दिलचस्पी लेता था । वकालत में उसे झूठ का दौर-दौरा और शायरी में सच्चाई का बोलबाला नज़र आ गया और शायरी करने के साथ-साथ वह राजनीति में भी भाग लेने लगा । अतः पहली बार मई १९४७ में किसान आन्दोलन में और दूसरी बार १९४९ में कम्युनिस्ट होने के अपराध में उसे गिरफ़्तार किया गया और इस बार रिहा होने पर उसने सदैव के लिए वकालत से तौबा करली ।

यों तो 'ताबां' ने कॉलेज के दिनों में ही शेर कहने शुरू कर दिये थे लेकिन उसके उन दिनों के शेरों में और आज के शेरों में धरती-आकाश का अंतर है । उन दिनों वह :

बेचारे का आखिर को दम ले ही लिया तौबा ।

मजनू पे मुसल्लत^१ थी वो काली^२ बला तौबा ॥

प्रकार के शेर कहता था और आज :

क़ैदे-ओहाम^३ से आज़ाद हुए फ़िक्रो-नज़र^४ ।

जल उठे तीरा-ओ-तारीक^५ दिमाग़ों में चिराग़ ॥

आखिरश^६ चांद सितारों में भटकने वाले ।

पा गये खाक के ज़रों ही में मंज़िल का सुराग़^७ ॥

और

सवादे-मर्ग^८ में आखिर हयात^९ ढूँढ ही ली ।

गुनाहगारों ने राहे-निजात^{१०} ढूँढ ही ली ॥

और

बाग़े-आलम^{११} पे हुए कितने खिजां के यलग़ार^{१२},

ज़िन्दगानी पे कई मौत ने छापे मारे,

१. छाई हुई २. लैला (लैला काली थी) ३. भ्रमों की जकड़

४. विचार और दृष्टि ५. अंधकारमय ६. अन्ततः ७. पता, निशान

८. मृत्यु के आसपास ९. जीवन १०. मुक्ति-मार्ग ११. संसार १२. आक्रमण

कभी यूनां से कभी रोम से तूफान उठे,
वादी-ए-नील से उबला कभी खूनी सेलाब,
आग भड़की कभी आतिशकदा-ए-फारिस^१ से,
ज़िन्दगी शोलों में तप-तप के निखरती ही गई,
जितनी ताराज^२ हुई और संवरती ही गई ।

ऐसे शेर कहता है । उन दिनों वह 'मैकश' अकबराबादी से प्रभावित था, इन दिनों वह देश की जनता से, मानव-स्वतंत्रता के उस संग्राम से जो देश-देश में लड़ा जा रहा है, और स्थायी शान्ति के उस महान आन्दोलन से प्रभावित है जो आज पूरी मानव-जाति की सबसे बड़ी आकांक्षा है ।

इतने बड़े-बड़े विषयों को शेर के सांचे में ढालते हुए बहुधा उसे सफलता मिलती है, लेकिन कभी-कभी असफलता का सामना भी करना पड़ता है । यह असफलता कोई टैक्नीक की त्रुटि नहीं है बल्कि यह त्रुटि है उसकी भारी-भरकम 'तरकीबों', लम्बी-लम्बी 'इज़ाफ़तों'^३ और मोटे-मोटे शब्दों के प्रयोग की, जिनसे शेर का अर्थ समझने में कठिनाई होती है और प्रभाव भी कम हो जाता है । उदाहरणतः उसकी नज़म 'दीवाने' देखिये । पहली पाँच पंक्तियाँ कितनी सुन्दर और गतिशील हैं :

यही वहशी यही सौदाई यही दीवाने^४
एक दिन मारका-ए-शौक्र^५ भी सर^६ कर लेंगे
इश्क—हां इश्क को रामझा ही नहीं है तुमने
हुस्न—हां हुस्न को पाबंदे-नज़र^७ कर लेंगे
यूही जलते रहे जलते रहे आहों के चिराग

और फिर एकदम जब वह :

रात को रुकशे-तनवीरे-सहर^८ कर लेंगे
आज खूनाबाफ़िशां^९ अश्कचकां^६ हैं आखें
कल मगर तकमिला-ए-ज़ौक्रे-नज़र^{१०} कर लेंगे

कहने लगता है तो हम शब्दों और 'तरकीबों' का अर्थ समझने के लिए रुक जाते

१. पारसियों का उपासनागृह (फ़ारिस) २. विनष्ट ३. संयुक्त-शब्दों
४. शौक्र का मोर्चा ५. विजय ६. दृष्टि का पाबंद ७. सुबह की
तरह प्रकाशमान ८. लहू बिखेरने वाली ९. आसू-भरी १०. अभिरुचि की
(दृष्टि की—मन की) प्राप्ति (तृप्ति)

हैं और जब हम रुक जाते हैं तो नज़्म के प्रवाह में कमी आ जाती है और मस्तिष्क को झटका लगता है ।

इसके अतिरिक्त मुझे 'ताबाँ' से एक और शिकायत है और वह है उसका सामयिक विषयों पर अधिक लिखना । इस प्रसंग में तर्क करने पर यद्यपि वह मेरी सन्तुष्टि कर देता है (मैं पहले कह चुका हूँ कि उसके पास प्रभावित करने का एक अत्यन्त उपयुक्त शस्त्र उसके श्वेत बाल और जरनैली शरीर है) फिर भी मेरी सन्तुष्टि नहीं होती । 'ताबाँ' या आप इसे मेरी ढिठाई कह सकते हैं । विश्व-साहित्य में से कुछ उदाहरण और रूसी लेखक इलिया अहरनबर्ग ऐसे साहित्यकारों के इस प्रकार के कथनों का उदाहरण देकर :

“एक लेखक को शताब्दियों के लिए ही न लिखना चाहिये, उसे एक संक्षिप्त क्षण के लिए भी लिखने का ढंग आना चाहिये—ऐसा क्षण जिस पर किसी जाति के भाग्य का आधार हो...”

आप कह सकते हैं कि लेखक अथवा कवि अपने समय का इतिहासकार होता है (और इससे मुझे भी इन्कार नहीं) लेकिन मेरे समीप लेखक अथवा कवि, इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ बाद में होता है, पहले लेखक अथवा कवि होता है । मैं साहित्य के जड़ मूल्यों का पक्षपाती नहीं हूँ जिन्हें कुछ लोग साहित्य के 'स्थायी मूल्यों' का नाम देते हैं; न मुझे इससे इन्कार है कि कोई विषय अपने आप में अच्छा बुरा, तुच्छ या महान नहीं होता, यह लेखक अथवा कवि की कला-क्षमता है जो उसे छोटा या बड़ा बनाती है और कल्याणकारी साहित्य का तो मैं बहरहाल पक्षपाती हूँ लेकिन 'ताबाँ' से मुझे शिकायत यह है कि पर्याप्त कला-मर्मज्ञता रखने पर भी वह व्यक्तिगत अनुभवों तथा प्रेक्षण की नींव पर बहुत कम शेरों की रचना करता है और बंगाल-अकाल, फ़िसाद, इन्डोनेशिया, कोरिया, वीतनाम, मिश्र, ईरान, रोज़नबर्ग और स्टालिन आदि की मृत्यु ऐसी घटनाओं की प्रतीक्षा अधिक करता है । और मुझे डर है कि यह प्रतीक्षा धीरे-धीरे उसे उस स्तर पर न ले जाये जहाँ लेखक अथवा कवि अनुभव तथा प्रेक्षण की प्रसव-पीड़ा से बचने के प्रयत्न में मनोवेग का शिकार होकर रह जाता है और यों लेखक अथवा कवि कहलाने की अपेक्षा राजनीतिज्ञ कहलवाने का अधिक हक़दार बन जाता है ।

लेकिन मैं जानता हूँ कि वह मेरी बात नहीं मानेगा और वही करेगा जिसे वह स्वयं ठीक समझता है और मैं यह भी जानता हूँ कि यह लेख पढ़ने के बाद

जब वह इस प्रसंग में मुझसे बहस करेगा तो मैं उसकी हाँ में हाँ मिलाने पर विवश हो जाऊँगा ।

तीन वर्ष पूर्व लिखा हुआ यह लेख छपने से पहले मैंने 'ताबां' को भेजा । लेख के साथ-साथ इस संकलन के लिए चुनी हुई उसकी रचनायें भी । उत्तर में उसने अपनी इधर की कुछ रचनायें मुझे भेजीं और लिखा :

“कुछ नज़में और ग़ज़लें भेज रहा हूँ । पिछली तीनों ग़ज़लें निकाल दो और उनकी बजाय ये ग़ज़लें शामिल कर लो । नज़मों में से 'दीवाली' और 'मिस्त्र' को न निकालो तो अच्छा है । इस तब्दीली की रोशनी में तुम्हें अपने मज़मून (लेख) में कवितायें खासी तब्दील करनी होंगी । कम-अज़-कम वह हिस्सा जहाँ तुमने 'दवामी' (स्थायी) और हंगामी (सामयिक) मौजूआत (विषयों) पर बहस की है । मैं आज भी दवामी और हंगामी मौजूके मुतअस्त्रिक वही राय रखता हूँ । दवामी और हंगामी अदब का तअल्लुक मौजू से नहीं बल्कि फ़ॉर्म से है । अदबे-दवामी 'क्या कहा है ?' से नहीं 'कैसे कहा है ?' से बनता है । । बहरहाल यह बहस फिर होती रहेगी । इस वक्त तो इतना काफी है कि तुम्हें नये इतिखाब (चयन) की रोशनी में मज़मून तब्दील करना चाहिये ।”

मज़मून मैंने तब्दील नहीं किया । उसकी कुछ रचनायें अवश्य तब्दील कर दी हैं ।

दीवाली

‘वक्रार’ ! रूह के तारों को क्यों छुआ तुमने ?

तुम्हारी नज़म ‘दीवाली’ बहुत ही अच्छी है ।

मगर—ये रात की गर्दन में दीप-मालायें,

सियाहियों में उजाले के बदनुमा धब्बे,

गरीब हब्शी को जैसे जुज़ाम^१ हो जाये ।

ये टिमटिमाते दिये—

ये टिमटिमाते दिये सुबह का बदल तो नहीं !

में सोचता हूँ कि इस रात चीनो-बरमा में,

किसी महाज्र पे कितने दिये जले होंगे ?

जवान खून की हर बूंद इक किरन बनकर,

इक ऐसी सुबह की तशकील^२ कर रही होगी,

हज़ार सदियों की तारीको-तीरा^३ रातों में,

बनी रही है जो इन्सां के ख्वाब का मरकज़^४ ।

वो सुबह दूर नहीं !

अंधेरी रात के सीने से तूर का चश्मा,

उबलने वाला है ।

ये टिमटिमाते दिये—लक्ष्मी के चरणों में,

सभी ने हुस्ने-अक्रीदत^५ के फूल डाले हैं;

वो जिनको लक्ष्मी देवी से कुर्बे-खास^६ नहीं,

घरों में अपने भी दीपक जलाये बैठे हैं,

१. कोढ़

२. निर्माण

३. अंधकारमय

४. केन्द्र

५. श्रद्धा

६. विशेष निकटता (सम्बन्ध)

शिकस्ता भोंपड़ियों को सजाये बैठे हैं,
 कि इस तरफ़ भी इनायत^१ की इक नज़र हो जाए ।
 मगर वो भूलते हैं,
 शिकस्ता भोंपड़ियों—टूटे-फूटे खंडरों में,
 कभी भी लक्ष्मी देवी न मुस्करायेगी,
 कभी बहार न इनके चमन में आयेगी,
 अगर वो खुद ही निज़ामे-चमन न बदलेंगे ।

सियाहियों के नुमाइन्दे^२ —रात के बेटे,
 हमारे फ़िक्रो-तख़य्युल को^३ बांधने के लिए,
 तवहमात की^४ ज़ंजीरें ढाल लेते हैं,
 कभी दीवाली कभी शबबरात आती है ।

मिश्र (मिश्र देश)

कितनी सदियों से अबुलहौल^१ पे तारी था जमूद,
जैसे अहराम^२ के साये में पड़ा सोता था ।
अहदे-हाजिर का^३ अबुलहौल—फिरंगी जरदार,
वादी-ए-लील में तखरीब^४ का बिष बोता था ।

जिस तरह रूप भरे खिज्र^५ का कोई रहज़न^६ ,
चहरा-ए-खिज्र पे थी हुस्ने-तअल्लुक^७ की निकाब ।
कितने यूसुफ बिके सरमाये के बाज़ारों में,
लुट गया कितनी जुलेखाओं^८ का अनमोल शबाब ।

आज इदराके - हकीकत^९ की मसीहाई^{१०} से,
जां पड़ी जज़्बा-ए-मिल्ली की^{११} ममी^{१२} में जैसे ।
जंगे - आज्ञादी ने ऐ दोस्त किया है पैदा,
रबते-ताज़ा^{१३} अरबी^{१४} और अजमी^{१५} में जैसे ।

अब तहफ़ुज़^{१६} के तराने हों कि इमदाद के राग,
“कोई जामा^{१७} हो छुपेगा नहीं क़द का अंदाज़ ।”
गीत के बोल बदल जाने से क्या होता है ?
वही इफ़रीत^{१८} का नग़मा वही इबलीस^{१९} का साज़ ।

१. फ़राऊन युग में बना हुआ बुत जिस का चेहरा तो मनुष्य का है लेकिन घड़ शेर का २. मिश्र देश के बड़े-बड़े मीनार (जिनमें ममियां बंद हैं) ३. वर्तमान काल का ४. तोड़-फोड़ ५. एक पैगंबर का नाम (पथ-प्रदर्शक) ६. डाकू ७. सुन्दर सम्बंध ८. अजीजे-मिश्र की पत्नी जो यूसुफ पर आशिक हो गई थी ९. वास्तविकता की पहचान १०. मुर्दे को ज़िन्दगी प्रदान करने का काम ११. राष्ट्रीयता के जज़्बे की १२. वह शव जिन्हें मसाला लगा कर संभाल कर रखा जाता है । १३. नया सम्बन्ध १४. अरब-निवासी १५. वे जो अरब निवासी नहीं हैं १६. रक्षा १७. लिबास १८. भूत १९. शैतान

साफ़ बतलाते हैं ये अहले - जुनूँ के^१ तेवर,
 सरनगूँ होने को है तौक़ो-सलासिल का निज़ाम^२ ।
 मुन्तज़िर नील है खोले हुए मौजों का किनार,
 आज फ़रऊन^३ फ़िरंगी है तो मूसा है अवाम ।

१. उन्मत्त लोगों के २. जंजीरें और गले में लोहे के पट्टे डालने वाली व्यवस्था ३. मूसा के ज़माने का मिडा का बादशाह (बहुत घमंडी)

‘जेल में किसी का खत पाकर

फ़स्ले - बहार^१ में भी असीरे - क़फ़स^२ हूं मैं,
 गुलज़ार^३ को फ़ज़ा^४ को मेरा इंतज़ार है ।
 रंगे - फ़रेब - कोश को है मेरी जुस्तजू,
 बू - ए - गुरेज़ - पा को मेरा इंतज़ार है ।
 तकते हैं मेरी राह खयाबाने - क़फ़ - खेज़^५ ,
 दस्ते - जुनू^६ - फ़ज़ा को^७ मेरा इंतज़ार है ।
 जैसे फ़ुसुर्दा^८ हो गई बज़मे - सदा-ओ - साज़^९ ,
 याराने - खुश - नवा को^{१०} मेरा इंतज़ार है ।
 सूने पड़े हैं मिंबरो - महारावे - मैकदा^{११} ,
 रिंदाने - बासफ़ा को मेरा इंतज़ार है ।
 ये और बात है कि वो मुंह से न कह सके,
 उस पैकरे - हया^{१२} को मेरा इंतज़ार है ।
 हैं मेरे इंतज़ार में गेसूए - शाम - खेज़^{१३} ,
 चश्मे - सहर - नुमा को^{१४} मेरा इंतज़ार है ।
 अब भी खुला है बाबे - इरम^{१५} मेरे वास्ते,
 अब भी मेरे खुदा को मेरा इंतज़ार है ।

१. वसन्त ऋतु २. पिंजरे का कैदी ३. बाग़ ४. वातावरण ५. आनन्द प्रदान करने वाली फुलवाड़ियां ६. उन्मादोत्पादक वनों को ७. उदास ८. संगीत-सभा ९. मृदुभाषी मित्रों को १०. मधुशाला के मिंबर और महाराबें (मिंबर और महाराबें वास्तव में मस्जिद की होती हैं) ११. लज्जा-मूर्ति (प्रेमिका) १२. संध्या-रूपी केश १३. जादू-रूपी आँखों को १४. स्वर्ग का दरवाज़ा



जगन्नाथ 'आज़ाद'

जहां जुल्मत का मरकज़, आंधियों का आशियाना है
वहां 'आज़ाद' पैग़ामे-चिराग़ां ले के आया हूँ

परिचय

जगन्नाथ 'आज़ाद' की शायरी के सम्बन्ध में इस समय मेरे सम्मुख 'जोश' मलीहाबादी, 'फ़िराक़' गोरखपुरी, एहतिशाम हुसैन, ख्वाजा अहमद अब्बास और बहुत से अन्य साहित्यकारों की रायें रखी हैं और मुझे समझ नहीं आ रही है कि मैं 'आज़ाद' के व्यक्तित्व और उसकी शायरी के सम्बन्ध में अपने इस लेख की शुरूआत कहाँ से करूँ ?

'जोश' मलीहाबादी की नज़र में 'आज़ाद' इस संसार के हंगामों का एक निश्चित दर्शक या एक अनुत्तरदायी संगीतधर्मी शायर की तरह अध्ययन नहीं करता बल्कि वह परिस्थितियों की आत्मा में डूबकर मानव-जीवन का गहरी नज़र से प्रेक्षण कर ऐसी शायरी करता है जो रोचक भी होती है और मानव जाति के लिए हितकर भी ।

'फ़िराक़' गोरखपुरी के शब्दों में 'आज़ाद' की शायरी किताबी नहीं, बल्कि ज़िन्दगी की आवाज़ है । एक चोट खाये हुए और सोचने वाले दिल की पुकार !

एहतिशाम हुसैन उसे आधुनिक काल के सफल उर्दू शायरों की तरह जीवन की समस्याओं को शायरी के साँचे में सुरीति से ढालने वाला शायर कहता है और उसकी शैली में रचाव के साथ-साथ कहीं-कहीं व्यंग की झलक भी देखता है ।

और ख्वाजा अहमद अब्बास की राय में 'आज़ाद' अपनी नज़्मों और ग़ज़लों में प्रोपेगंडा के घटिया नारे नहीं लगाता । उसके रोमांटिक शेरों में भी

अवसन्नता नहीं होती और न ही वह कभी राजनीतिक आवश्यकता से शेर का गला घोटता है ।

प्रत्यक्ष है कि इन मतों के बाद 'आज़ाद' की शायरी के बारे में कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती; लेकिन मेरे लेख का विषय चूँकि 'आज़ाद' की शायरी के साथ-साथ उसका व्यक्तित्व भी है इसलिए इन मतों को उनके स्थान पर छोड़ते हुए मैं उस 'आज़ाद' की ओर देखता हूँ जो 'आज़ाद' की बजाय कभी केवल जगन्नाथ था । पश्चिमी पंजाब में सिंध नदी के उस पार एक छोटा-सा शहर है ईसाखील । उसी ईसाखील में ५ दिसम्बर १९१८ को उसका जन्म हुआ । पिता तिलोकचंद 'महरूम' स्वयं एक प्रसिद्ध शायर थे (हैं) इसलिए जगन्नाथ को जगन्नाथ 'आज़ाद' बनने में अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी । अपनी काव्य-अभिरुचि के प्रारम्भ के बारे में स्वयं उसने एक जगह लिखा है कि :

“पाँच वर्ष का था जब पिता का तबादला ईसाखील से कलोरकोट के स्कूल में हो गया । ईसाखील से कलोरकोट जाने के लिए काला बाग के स्थान पर सिंध नदी पार करनी पड़ती है । हमारी नाव चली ही थी कि पहाड़ पर बने हुए मकानों को देखकर पिता ने कहा :

पहाड़ों के ऊपर बने हैं मकान ।

और मुझे गिरह (दूसरी पंक्ति) लगाने को कहा । मैंने तुरन्त गिरह लगाई :

अजब इनकी सूरत अजब इनकी शां ।

पिता ने कहा 'सूरत' नहीं 'शौकत' कहो । उस समय तो मैं सूरत और शौकत का भेद न समझ सका लेकिन कुछ समय के बाद जब मैंने दोनों शब्दों का फ़र्क़ जान लिया तो मुझे पता चला कि शेर कहने में नेतृत्व और परामर्श का महत्व कितना अधिक होता है ।”

इसी नेतृत्व और परामर्श के महत्व को समझ लेने से अपने कालेज के ज़माने (लाहौर) में उसने डाक्टर 'इक़बाल', सय्यद आबिदअली 'आबिद', सूफ़ी गुलाम मुस्तफ़ा 'तबस्सुम' और डाक्टर सय्यद मोहम्मद अब्दुल्ला ऐसे साहित्यकारों की शरण ली और डाक्टर 'इक़बाल' की शायरी से तो वह इतना प्रभावित हुआ कि उसकी आज की शायरी में भी 'इक़बाल' का लबो-लहजा देखा जा सकता है ।

कलोरकोट से आठवीं और मियाँवाली से दसवीं श्रेणी की परीक्षा पास

करने के बाद १९३३ ई० में जब वह उच्च शिक्षा के लिए रावलपिंडी आया और उसके पिता ने भी कोशिश करके अपना तबादला वहाँ करवा लिया तो तीन वर्ष तक उसे पिता के मित्रों अब्दुलहमीद 'अदम' और अब्दुलअजीज 'फ़ितरत' ऐसे सिद्धहस्त शायरों की महफ़िल में उठने-बैठने का अवसर मिला और उन लोगों की साहित्य-सम्बन्धी चर्चा से उसने पूरे उर्दू जगत का चित्र देख लिया। उस ज़माने में उसने अपने कालेज में एक साहित्य-सभा (बज़्मे-अदब) की नींव डाली और कालेज मैगज़ीन का संपादन भी किया। कालेज मैगज़ीन में तो ख़ैर उसकी रचनाओं को प्रकाशित होना ही था लेकिन कलात्मक रूप से चूँकि उसके शेरों में दूसरे तरुण शायरों की अपेक्षा अधिक पटुता होती थी इसलिए मौलाना सलाहुद्दीन अहमद और दयानारायण 'निगम' ऐसे संपादकों ने 'अदबी दुनिया' और 'ज़माना' में उसकी रचनाओं को उचित स्थान दे उसको प्रोत्साहन दिया और यह सिलसिला उसके ओरिएंटल कालेज लाहौर से एम. ए. करने के बाद तक जारी रहा।

यहाँ मैं एक बात कहने का साहस करना चाहता हूँ कि कलात्मक पटुता के बावजूद उसकी उन दिनों की शायरी में उसकी सामाजिक सूझ-बूझ का कुछ पता नहीं चलता था और उसकी अधिकतर नज़में ठीक वैसी ही होती थीं जैसी हम आज भी दैनिक पत्रों में प्रतिदिन देखते हैं और शायद इसीलिए 'अदबे-लतीफ़' और 'सवेरा' उच्चकोटि की उर्दू पत्रिकाओं के संपादकों ने उन दिनों उसकी कोई नज़म या ग़ज़ल प्रकाशनार्थ स्वीकार नहीं की और व्यंग्य-लेखक कन्हैयालाल कपूर के कथनानुसार तो उन दिनों 'आज़ाद' का हर दूसरा शेर पहले शेर की पैरोडी होता था।

लेकिन कभी-कभी मनुष्य के जीवन में केवल एक घटना या दुर्घटना उसके जीवन के धारे को मोड़कर रख देती है और उस एक कचोके से ही आत्मालोचन की क्षमता उत्पन्न हो जाने से उसे अपनी त्रुटियाँ स्वीकार करते हुए कोई भिन्न नहीं होती और अपने गुणों को वह और अधिक निखारने का प्रयत्न करने लगता है।

१९४६ में भारत स्वतन्त्र हुआ और उसके दो टुकड़े कर दिए गए और हज़ारों-लाखों लोग न केवल बेघर हो गए बल्कि उन्होंने एक-दूसरे के खून से ऐसी होली खेली जिसका उदाहरण पूरे विश्व-इतिहास में नहीं मिलता और स्वयं 'आज़ाद' भी इस गड़बड़ और रक्तपात का शिकार हुआ और उसे अपना प्यारा देश छोड़ना पड़ा। और सैकड़ों कष्ट भेलता हुआ जब वह दिल्ली पहुँचा

तो उसके मस्तिष्क में एक प्रश्न उत्पन्न हुआ :

“क्यों ?”

“ये सब क्यों ?”

और हम देखते हैं कि शीघ्र ही उसने न केवल इस ‘क्यों’ का उत्तर पा लिया बल्कि अपनी रचनाओं द्वारा उसने इसका ठीक-ठीक उत्तर भी प्रस्तुत किया। अतएव यदि मैं यह कहूँ कि सही अर्थों में ‘आज्ञाद’ की शायरी का प्रारम्भ १९४७ के बाद हुआ और विशेषकर इस प्रकार के शेरों के साथ :

अभी तो चश्मे-इबरत वक्त की रफ्तार देखेगी।

अभी ये किस तरह कह दें सितमरानों पे^१ क्या गुजरी ?

तो मैं समझता हूँ मैं किसी ग़लत-बयानी से काम नहीं ले रहा।

‘आज्ञाद’ से मैं लाहौर में भी अक्सर मिलता रहा हूँ और यहाँ दिल्ली में तो आए दिन उससे मुलाकातें रहती हैं लेकिन मुझे १९४८ की वह शाम कभी नहीं भूलती जब देश-विभाजन के बाद हम पहली बार दिल्ली में एक-दूसरे से मिले थे और उसके साधारण से वस्त्र और मोरी गेट के इलाक़े में छोटा-सा अन्धकारमय मकान देखकर मैंने उससे पूछा था :

“यह तुम्हें क्या हो गया है ?”

और उसने व्यंग्य की हँसी हँसते हुए (जिसे मैंने पहले कभी उसके होठों पर नहीं देखा था) कहा था “और तुम्हें क्या हो गया है ?”

उस समय मैं समझता था कि वह केवल अपनी भिन्नक दूर कर रहा है क्योंकि देखने में मुझे कुछ नहीं हुआ था, मैंने काफ़ी अच्छे वस्त्र पहन रखे थे और एक अच्छे मकान में रहता था। लेकिन फिर मेरे कहने पर जब उसने अपनी कुछ-एक नज़में मुझे सुनाई तो मुझे अनुभव हुआ कि यदि सचमुच मुझे कुछ नहीं हुआ है तो मैं झूठ बोल रहा हूँ।

आज जगन्नाथ ‘आज्ञाद’ भारत सरकार के इन्फ़रमेशन ब्यूरो में इन्फ़रमेशन अफ़सर है। अच्छा लिबास पहनता है, अच्छा खाना खाता है और अच्छे घर में रहता है, लेकिन इस परिवर्तन में और उस परिवर्तन में जो भारत-विभाजन के बाद उसमें पैदा हुआ था, धरती-आकाश का अन्तर है। आज किसी साहित्य-सभा में चुपचाप बैठने या केवल पिंगल आदि पर बातचीत करने की बजाए वह जीवन और साहित्य के परस्पर सम्बन्ध पर बड़ी

सैद्धान्तिक बहस करता है और उसने जान लिया है कि :

जिस नज़्म में मौज़ूद न फ़र्दा^१ की तड़प हो ।

वो नज़्म है 'आज़ाद' फ़क़त^२ मसिया-ख़वानी^३ ॥

और यही कारण है कि छः-सात वर्ष के इस संक्षिप्त से काल में ही उसने आधुनिक उर्दू शायरी में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है और बड़ी से बड़ी पत्रिकाओं के सम्पादक उसकी रचनाओं को बड़े गौरव से प्रकाशित करते हैं ।

१५ अगस्त १९४७ ई०

न पूछो जब बहार आई तो दीवानों पे क्या गुजरी ?
जरा देखो कि इस मौसम में फ़रज़ानों^१ पे क्या गुजरी ?
बहार आते ही टकराने लगे क्यों साग़रो-मीना ?
बता ऐ पीरे-मैखाना ! ये मैखानों पे क्या गुजरी ?
फ़ज़ा में हर तरफ़ क्यों घज़ियां आवारा हैं उनकी ?
जुनूने - सरफ़रोशी तेरे अफ़सानों पे क्या गुजरी ?
विसाले-शम्मअ^२ की हसरत में सब बेताब फिरते थे ।
में क्या जानूँ हज़ूरे-शम्मअ परवानों पे क्या गुजरी ?
कहो दैरो-हरम वालो^३ ! ये तुम ने क्या फ़ुसूँ फ़ूका^४ ?
ख़ुदा के घर पे क्या बीती सनमख़ानों^५ पे क्या गुजरी ?
निशाने-बर्गो-गुल^६ तक भी नज़र आता नहीं हमको ।
समझ में कुछ नहीं आता गुलिस्तानों पे क्या गुजरी ॥
जहां नूरे-सहर के^७ भी क़दम ज़मने न पाते थे ।
बताये कौन आख़िर उन शबिस्तानों पे^८ क्या गुजरी ?
वो रंगो-नूर से भरपूर बसतानों पे^९ क्या बीती ?
शबाबे-शेर से मामूर^{१०} काशानों पे क्या गुजरी ?
अभी तो चश्मे - इबरत वक़्त की रफ़्तार देखेगी ।
अभी ये किस तरह कह दें सितमरानों पे क्या गुजरी ?
न पूछ 'आज़ाद' अपनों और बेगानों का अफ़साना ।
हुआ था क्या ये अपनों को ये बेगानों पे क्या गुजरी ?

१. बुद्धिमानों २. शम्मअ के मिलाप (स्वतन्त्रता) ३. काबे और बुत-
ख़ाने वालो ४. जादू ५. बुतख़ानों (मन्दिरों) ६. फूल और पत्ती तक का
निशान ७. ऊषा के प्रकाश के ८. शयनगृहों पर ९. फुलवाड़ियों पर
१०. परिपूर्ण

गज़लें

हमारे रबते-बाहम^१ की कहां तक बात जा पहुंची ।
 हक़ीक़त^२ से चली थी दास्तां^३ तक बात जा पहुंची ॥
 उठीं दिल से यक़ीने-बाहमो^४ पर जिसकी बुनियादें ।
 ताज्जुब है वही आख़िर गुमां तक बात जा पहुंची ॥
 गुलिस्तां के किसी गोशे पे इक कौंदा सा लपका था ।
 मगर आख़िर हमारे आशियां तक बात जा पहुंची ॥
 रफ़ीक़ो ! दोस्तो ! दावे मुहब्बत के बजा, लेकिन ।
 अगर मेरी बदौलत इस्तिहां तक बात जा पहुंची ॥
 वहीं तक राज़े-सरबस्ता^५ रही जब तक रही दिल में ।
 ज़रा आई ज़बां तक और कहाँ तक बात जा पहुंची ॥
 शमीमे-गुल^६ ने जिस की इब्तिदा की थी गुलिस्तां में ।
 वहां ज़िदां^७ में ज़ंजीरे-गिराँ^८ तक बात जा पहुंची ॥
 किया था ज़िक्र सा बेमेहरी-ए-अहबाब का^९ मैंने ।
 मगर नाक़दरी-ए-हिन्दोस्तां तक^{१०} बात जा पहुंची ॥



१. परस्पर सम्बन्ध (प्रेम) २. वास्तविकता ३. कथा-कहानी ४. परस्पर विश्वास ५. गुप्त भेद ६. फूल की महक ७. कारागार ८. बोझिल जंजीर ९. मित्रों की बेरुखी का १०. भारत का निरादर करने तक

जो दिल का राज़ बे-आहो-फुगाँ कहना ही पड़ता है ।
तो फिर अपने क़फ़स को आशियाँ कहना ही पड़ता है ॥
तुझे ऐ तायरे-शाख़े-नशेमन^१ ! क्या ख़बर इसकी ?
कभी सय्याद को भी बाग़बाँ कहना ही पड़ता है ॥
ये दुनिया है यहाँ हर काम चलता है सलीक़े से ।
यहाँ पत्थर को भी लाले-गिराँ^२ कहना ही पड़ता है ॥
ब-फ़ैजे-मसलहत^३ ऐसा भी होता है ज़माने में ।
कि रहज़न को^४ अमीरे-कारवाँ^५ कहना ही पड़ता है ॥
ज़बानों पर दिलों की बात जब हम ला नहीं सकते ।
जफ़ा को फिर वफ़ा की दास्ताँ कहना ही पड़ता है ॥
न पूछो क्या गुज़रती है दिले-खुद्दार पर अक्सर ।
किसी बेमेहर^६ को जब मेहरबाँ कहना ही पड़ता है ॥



१. घोंसले की टहनी पर बैठने वाले पक्षी २. बहुमूल्य हीरा ३. समय
की माँग के अनुसार ४. डाकू को ५. क़ाफ़िले का पथ-प्रदर्शक ६. निर्दयी

रुबाई

अब किसकी थी उस वक्त खता, याद नहीं ।
 किस तरह से हम हुए जुदा, याद नहीं ॥
 है याद वो गुफ्तगू की तल्खी लेकिन ।
 आजाद ! वो गुफ्तगू थी क्या, याद नहीं ॥

फुटकर शेर

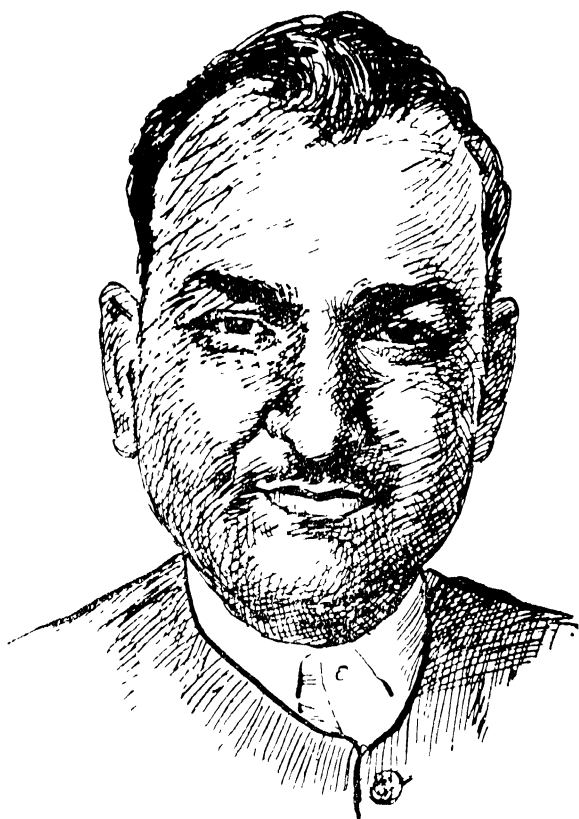
कहीं मजाके-नज़र^१ को करार^२ मिल न सका ।
 कभी चमन से कभी कहकशां^३ से गुज़रा हूँ ॥
 तेरे करीब से गुज़रा हूँ इस तरह कि मुझे !
 ख़बर भी हो न सकी मैं कहां से गुज़रा हूँ ?

◇ ◇ ◇
 क्या जानिये 'आजाद' ! मेरा इश्क़े-जुनूँ-खेज़^४ ।
 जीने का सहारा है कि मरने का बहाना ?

◇ ◇ ◇
 तेरे वस्ल में कहां था ये सरूरें-तश्नाकामी ।
 मेरे काम आई आखिर, मेरी आरजू की खाभी ॥

◇ ◇ ◇
 बज़्मे-ख़िरद में^५ कद्रे-जुनूँ का^६ सवाल क्या ?
 हम आ गये थे चाक़े-गरेबां सिये हुए ॥

१. नज़र की रुचि (स्वाद, रस) २. चैन ३. आकाश-गंगा
 ४. उन्मादोत्पादक ५. बुद्धिजीवियों की सभा में ६. उन्माद के मूल्यों का



‘अर्श’ मलिसयानी

ऐ ‘अर्श’ गुनाह भी हैं तेरे दाद के काबिल
तुझको कफ़े-अफ़सोस भी मलते नहीं देखा।

परिचय

“.....न खाने की चीजें खाते हैं न पीने की चीजें पीते हैं । न सूंघने की चीजें सूंघते, न टटोलने की चीजें टटोलते, न बरतने की चीजें बरतते और न झपट पड़ने की चीजों पर झपटते हैं । चारे और घास-फूस से विटामिन हासिल करते हैं और बेज़रर चरिंद (अहानिकारक पशु) की ज़िन्दगी जीते हैं ।”

यह है ‘जोश’ मलीहाबादी की भाषा में ‘अर्श’ मलिसयानी के व्यक्तिगत जीवन का सारांश । ‘अर्श’ मलिसयानी जो मुखाकृति, शरीर और वस्त्रों के आधार पर, वार्तालाप और उलझी हुई जीवन-समस्याओं को चुटकियों में सुलझा देने के आधार पर और संसार की प्रत्येक वस्तु पर निरन्तर तीस वर्ष से शतरंज को प्रधानता देने के आधार पर शायर कम और किसी गाँव के पटवारी अधिक मालूम होते हैं । इस पर भी जब मैंने उनके उपनाम के बारे में उनसे बात की तो मुझे उत्तर मिला कि “घटिया क्रिस्म का तखल्लुस रखने से चूँकि शायरी पर उसका असर पड़ने का अन्देश था इसलिए मैंने ‘अर्श’ (आकाश या ईश्वर के बैठने का सिंहासन) तखल्लुस चुना ।” लेकिन इसके साथ ही उन्होंने यह भी अभिव्यक्ति की कि “१९२५ ई० में जब मैंने अपनी पहली नज़्म अपने वालिद साहब^१ को इस्लाह (संशोधन) की गर्ज^२ से दिखाई

१. श्री ‘जोश’ मलिसयानी—उर्दू और फ़ारसी के प्रसिद्ध विद्वान् और शायर । भारत सरकार की ओर से हाल ही में उनकी साहित्य-सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है ।

तो वालिद साहब ने न केवल इस्लाह देने से इन्कार कर दिया बल्कि डांट पिलाई कि शायरी का जौहर (गुण) तुम में मौजूद ही नहीं, इसे छोड़ दो ।”

शायरी का जौहर, जैसा कि बाद में सिद्ध हुआ, ‘अर्श’ में पर्याप्त मात्रा में मौजूद था । उनके पिता ने शायद इसलिए उनकी पीठ न थपथपाई थी कि शैरो-शायरी में पड़कर उनका बेटा अपने शिक्षण से मुँह न मोड़ ले । क्योंकि कुछ समय बाद ही जब किसी व्यक्ति ने ‘अर्श’ का नाम लिये बिना उन्हें यह शेर सुनाया :

मरकर भी गिरफ्तारे-सफ़र^१ है मेरी हस्ती

दुनिया मेरे आगे है तो उक्बा^२ मेरे पीछे ।

तो उन्होंने जी खोलकर दाद दी और कहा कि यह शेर ज़रूर किसी उस्ताद का है । लेकिन जब इन महाशय से उन्हें पता चला कि किसी उस्ताद का नहीं, स्वयं उनके सुपुत्र का है तो एक बार फिर उनके माथे पर बल पड़ गया और उन्होंने यह कहकर शेर की प्रशंसा करनी बन्द कर दी कि एक अच्छा शेर कहने से कोई शख्स शायर नहीं हो जाता । इस प्रकार प्रोत्साहन न मिलने का, ‘अर्श’ के कथनानुसार, उन पर यह प्रभाव पड़ा कि अपनी नज़मों-गज़लों पर वे और भी अधिक मेहनत और फिर स्वयं ही प्रत्यालोचन करने लगे । बाक़ायदा इस्लाह किसी से न ली और शनैः-शनैः मलिसयान ऐसी शायरी के लिहाज़ से मरुभूमि पर शायर की हैसियत से स्वयं ही अपने पैरों पर खड़े हो गए ।

अपने जन्म और जन्म-भूमि के बारे में एक स्थान पर वह स्वयं ही लिखते हैं कि “पंजाब के ज़िला जालन्धर का एक छोटा-सा क़स्बा जिसे मेरे पिता अक्सर ‘ख़राबाबाद’ के नाम से याद करते हैं, मेरा जन्म-स्थान है । इस क़स्बे का नाम मलिसयान है । ज्ञान तथा विद्वत्ता की दृष्टि से इस क़स्बे में मेरे माननीय पिता से पूर्व कोई व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जिसे थोड़ा-बहुत भी विद्वान् कहा जा सके । २० सितम्बर १९०८ ई० को इसी दूरदराज़ और असाहित्यिक वातावरण में मेरा जन्म हुआ ।”

मलिसयान ही नहीं ‘अर्श’ की युवावस्था का अधिकांश भाग ऐसे ही असाहित्यिक वातावरण और शैरो-शायरी की शत्रु नौकरियों में व्यतीत हुआ जिनसे अपना पिंड छुड़ाने के लिए वे बेतरह छटपटाते रहे—“एफ० ए० में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे कि स्वभाव के विरुद्ध गवर्नमेंट एन्जीनियरिंग स्कूल की

प्रतियोगिता में बैठा। दुर्भाग्यवश सफल भी हो गए। दो साल शिक्षा भी पाई और उसके बाद नहर विभाग में ओवरसियर भी नियुक्त हो गये। मन ने ग्लानि की और मस्तिष्क ने विद्रोह। एक वर्ष के समय में तीन बार त्यागपत्र दिया और अन्तिम बार दृढ़ निश्चय किया कि इस असाहित्यिक वातावरण को पुनः नहीं अपनाऊंगा।”

इस असाहित्यिक वातावरण से निकले तो ‘आस्मान से गिरा खजूर में अटका’ के अनुसार ‘अर्श’ को लुधियाना के एक औद्योगिक केन्द्र या स्कूल में शिक्षक बनना पड़ा और एक दो नहीं पूरे बारह वर्ष तक बनना पड़ा। लेकिन इस सब के बावजूद शेर कहने का शौक या उन्माद ज्यों का त्यों बना रहा और वे इधर-उधर के मुशायरों में भी शामिल होते रहे। इसे श्री गुलाम मोहम्मद (भूतपूर्व गवर्नर-जनरल पाकिस्तान) ही की कृपा कहनी चाहिये कि उन्होंने ‘अर्श’ को उस अप्रिय और असंगत वातावरण से मुक्ति दिलाकर दिल्ली के जौहरियों के सामने अपनी शायरी के जौहर को प्रस्तुत करने का अवसर जुटाया। दिल्ली में ‘अर्श’ पहले सप्लाई विभाग में, फिर सौंग एण्ड पब्लिसिटी, फिर लेबर विभाग और उसके बाद मिनिस्ट्री ऑफ इन्फ्रामेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग में नौकर हुए। फिर १९४८ ई० में प्रकाशन विभाग में असिस्टेंट एडीटर नियुक्त हुए और १९५६ ई० में ‘जोश’ मलीहाबादी (जो उन दिनों उसी विभाग में उर्दू ‘आजकल’ के एडीटर थे) के पाकिस्तान चले जाने के बाद से एडीटर के पद पर आसीन हैं। अब तक ‘हृषत-रंग’, ‘चंगो-आहंग’ और आहंगे-हजाज के नाम से तीन कविता-संग्रह और ‘पोस्टमार्टम’ नाम से एक हास्य-लेखों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है और न केवल भारत बल्कि पाकिस्तान में भी कोई मुशायरा ऐसा नहीं होता जिसमें ‘अर्श’ की उपस्थिति अनिवार्य न समझी जाती हो।

अपनी काव्य-प्रवृत्ति के सम्बन्ध में ‘अर्श’ का कहना है कि वे किसी साहित्यिक दल या संघ से सम्बन्ध नहीं रखते बल्कि पुरातन और नूतन के समावेश से जो साहित्य जन्म लेता है उसी की रचना में प्रयत्नशील रहते हैं। यह बात यद्यपि कुछ भ्रमजनक-सी लगती है और किसी भी बिन्दु पर इसके डांडे मिलाए जा सकते हैं लेकिन ‘अर्श’ की शायरी का विस्तृत अध्ययन करने वाला कोई पाठक भी इससे भिन्न राय नहीं दे सकता कि अपनी शायरी के प्रारम्भिक काल में तो ‘पुरातन और नूतन’ के समावेश की बजाए वे पुरातन ही पुरातन पर ध्यान देते थे। लेकिन फिर धीरे-धीरे वे ‘पुरातन’ से केवल वर्णन-

शैली और 'नूतन' से आधुनिक काल की समस्याओं का विषय लेने लगे—वे समस्याएं जो उनके समक्ष थीं ; देश और जाति के समक्ष थीं ; सारी मानवता और पूरी शताब्दि के समक्ष थीं—अतएव भाषा और वर्णन-शैली को एक ओर रख जब भी कोई सत्यनिष्ठ कवि या लेखक अपने काल की समस्याओं को लेता है तो उनके वास्तविक रूप ही में लेता है और जब वास्तविक रूप में लेता है तो अपनी ज़बान से वह भले ही इकरार न करे उसकी रचनायें स्वयं चुगली खाती हैं कि उसका सम्बन्ध अवश्य ही उस साहित्यिक संघ से है जो नया या प्रगतिशील कहलाता है, जो मानव-प्रेमी है और जिसकी सहानुभूतियाँ भौगोलिक सीमाओं को पार कर विश्व-व्यापी हो जाती हैं ।

कमजर्फी^१ दुनिया

ये दोरे-खिरद^२ है दोरे-जुनू^३, इस दौर में जीना मुश्किल है ।
 अंगूर की मै के धोखे में जहराब^४ का पीना मुश्किल है ॥
 जब नाखुने-वहशत^५ चलते थे रोके से किसी के रुक न सके ।
 अब चाके-दिले-इन्सानियत^६ सीते हैं तो सीना मुश्किल है ॥
 जो 'धर्म' पे बीती देख चुके, 'ईमां' पे जो गुजरी देख चुके ।
 इस रामो-रहीम की दुनिया में इन्सान का जीना मुश्किल है ॥
 'इक सब्र के घूंट से मिट जाती सब तश्नालबों की'^७ तश्नालबी ।
 कमजर्फी-ए-दुनिया के सदक्के ये घूंट भी पीना मुश्किल है ॥
 वो शोला नहीं जो बुझ जाये, आंधी के एक ही झोंके से ।
 बुझने का सलीका आसां है, जलने का करीना^८ मुश्किल है ॥
 करने को रफू कर ही लेंगे, दुनिया वाले सब ज़रूम अपने ।
 जो ज़रूम दिले-इन्सां पे^९ लगा, उस ज़रूम का सीना मुश्किल है ॥
 वो मर्द नहीं जो डर जाये माहौल के^{१०} खूनी मन्ज़र^{११} से ।
 उस हाल में जीना लाज़िम^{१२} है जिस हाल में जीना मुश्किल है ॥
 मिलने को मिलेगा बिल-आखिर^{१३} ऐ 'अर्श' सुकूने-साहिल^{१४} भी ।
 तूफ़ाने-हवादिस से^{१५} लेकिन बच जाये सफ़ीना^{१६} मुश्किल है ॥

१. ओछी २. बुद्धि-काल ३. उन्माद-काल ४. पानी में घुला हुआ विष ५. पशुता के नाखून ६. मानवता के हृदय का घाव ७. प्यासों की ८. सुन्दर ढंग ९. मानव-हृदय पर १०. वातावरण के ११. दृश्य १२. आवश्यक १३. अन्ततः १४. तट की शान्ति १५. दुर्घट-नाओं के तूफ़ान से १६. नौका

फुटकर शेर

तहय्युर^१ है हुजूरी में तो बेताबी है दूरी में ।

मुसीबत में ये जाने-नातवाँ^२ यूँ भी है औ^३ यूँ भी ॥

◇ ◇ ◇

तवाज़न^४ खूब ये इश्को-सजा-ए-इश्क में^५ देखा ।

तबीयत एक बार आई, मुसीबत बार-बार आई ॥

◇ ◇ ◇

दाग़े-दिल से^६ भी रोशनी न मिली ।

ये दिया भी जला के देख लिया ॥

◇ ◇ ◇

तसन्नोअ की^७ फ़ुसूँकारी का^८ कुछ ऐसा असर देखा ।

कि ये दुनिया मुझे दुनियानुमा^९ मालूम होती है ॥

◇ ◇ ◇

न हरम^{१०} ये है वो न दौर^{११} में है ।

हम तो दोनों जगह पुकार आये ॥

◇ ◇ ◇

खयाले-तामीर के असीरो^{१२}, करो न तख़रीब की^{१३} बुराई ।

बग़ौर^{१४} देखो तो दुश्मनी के करीब ही दोस्ती मिलेगी ॥

अ़ताब^{१५} करने दो 'अर्श' उनको कि इसमें भी मसलहत^{१६} निहाँ^{१७} है ।

मिज़ाज को बरहमी^{१८} मिलेगी तो हुस्न को दिलकशी^{१९} मिलेगी ॥

१. विस्मय २. अशक्त जान ३. और ४. सन्तुलन ५. इश्क और इश्क के दण्ड में ६. दिल के दाग़ से ७. बनावट की ८. जादू फूँकने का ९. दुनिया जैसी १०. काबे की चार-दीवारी ११. मन्दिर १२. निर्माण के इच्छुक व्यक्तियों १३. विनाश १४. ध्यान से १५. कोप १६. हित १७. निहित १८. क्रुद्धता १९. मनोहरता

न नशेमन^१ है, न है शाखे-नशेमन^२ बाक्री ।
लुप्त जब है कि करे अब कोई बर्बाद मुझे ॥

◇ ◇ ◇
है देखने वालों को संभलने का इशारा :
थोड़ी सी नकाब आज वो सरकाये हुए हैं ॥

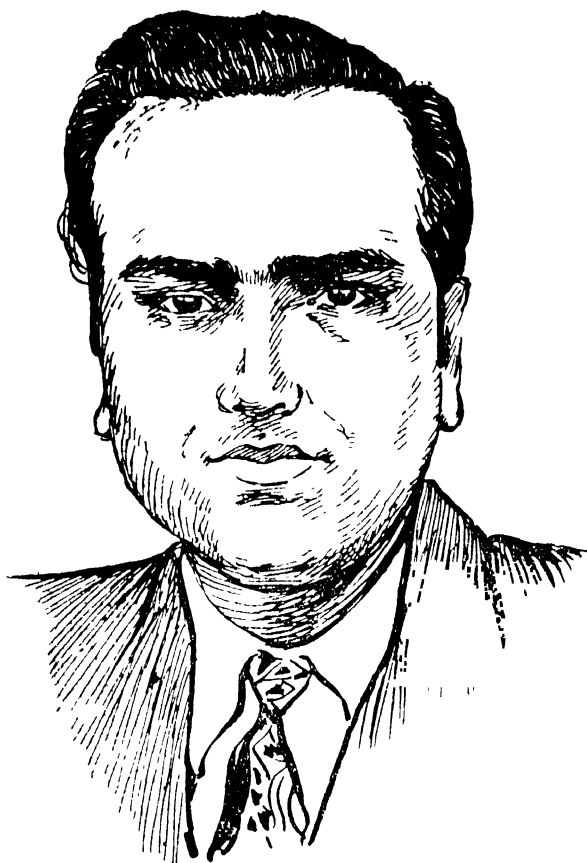
◇ ◇ ◇
मेरे दिल की नैरंगी^३ पूछते हो क्या मुझसे ?
तुम नहीं तो वीराना तुम रहो तो बस्ती है ॥

◇ ◇ ◇
किस का क़ुर्ब^४ कहां की दूरी अपने आप से गाफ़िल^५ हो ।
राज अगर पाने का पूछो, खो जाना ही पाना है ॥

◇ ◇ ◇
ख्वाहिशे-मादूम^६ अच्छी ख्वाहिशे-नाकाम से^७ ।
हैफ़^८ उस पर फूल बनकर जो कली मुर्झा गई ॥

◇ ◇ ◇
ज़िन्दगी कशमकशे-इश्क़ के आगाज़^९ का नाम ।
मौत अंजाम इसी दर्द के अफ़साने का ॥

१. घोंसला २. घोंसले वाली शाखा ३. हालत, जादूगरी ४. समीपता
५. असावधान ६. अप्राप्य इच्छा ७. असफल इच्छा से ८. अफ़सोस ९. इश्क़
की तीव्रता की शुरूआत



‘मखमूर’ जालंधरी

जंग लड़ते हैं सदाक़त की, मुसावात की, एलान करो !

परिचय

यह १९४० ई० की बात है, उधर दूसरा महायुद्ध भयानक रूप धारण करता जा रहा था और इधर उर्दू साहित्य में विषय और रूप सम्बन्धी नित नये प्रयोग किए जा रहे थे—जो लेखक भी सामान्य स्तर से हटकर कोई नई बात कहता था, उसकी गणना प्रथम श्रेणी के साहित्यकारों में होने लगती थी। फ्रायड के सिद्धांत, जेम्स-जॉयस और डी० एच० लॉरेंस की शैली और टी० एस० इलियट के भावों का अनुसरण जोरों पर था। काम (विषय—Sex) पर बड़ी बेबाकी से क्लम उठ रहे थे और उस समय की धारा के अनुसार उन रचनाओं पर उन्नति तथा प्रगतिशीलता का लेबल लगाया जा रहा था और 'शिष्ट पाठक' उन पर झुल्ला रहे थे—यह युग उर्दू शायरी में निर्बंध तथा अनुकांत शायरी का युग था—उन्हीं दिनों 'मरूमूर' जालंधरी अपने व्यक्तिगत अनुभव तथा प्रेक्षण और अपनी विशेष शैली के साथ साहित्य-क्षेत्र में उत्तीर्ण हुआ। वह हमारे समाज के चेहरे पर से कुछ ऐसी निर्दयता से नोच-नोच कर झिल्लियाँ उतारने लगा कि नैतिकता की रूढ़िगत-परम्पराओं से प्रभावित मस्तिष्क उत्तेजित हो उठे। उनकी ओर से जिन उर्दू लेखकों और कवियों को खुल्लम-खुल्ला गालियाँ दी गईं, 'मरूमूर' जालंधरी उनमें से एक था। वास्तव में 'मरूमूर' जालंधरी जिस वातावरण से आया था, वह वातावरण ही ऐसा था कि अपनी नज़्मों में समय तथा समाज की किसी बुराई, किसी घिनावने पात्र को सुधारवादी दृष्टिकोण से नग्न करते हुए भी आप-ही-आप उसकी नज़्मों में ऐन्द्रीय आनन्द का अंश उभर आता था।

गुरवग्गनिह 'मरूमूर' जालंधरी १८ अक्टूबर १९१५ को लालकुर्ती बाज़ार, जालंधर छावनी में एक साधारण दुकानदार के घर पैदा हुआ। जालंधर छावनी में लालकुर्ती बाज़ार आलीशान दोमंजिला बारकों की भयावह भुजाओं में घिरा हुआ है। आज उन बारकों में अंग्रेज़ साम्राज्य के अधमवर्गीय (Proletariate) सैनिकों की बजाय हमारे अपने अनपढ़, आधे भूखे और आधे नंगे सैनिक आबाद हैं। जिन दिनों 'मरूमूर' जालंधरी ने इस वातावरण में आँख खोली लोगों के दिलों में अपनी पराधीनता की बड़ी खटक थी। अधमवर्गीय गोरे यद्यपि साम्राज्यशाही गोरों के वैसे ही दास थे जैसे हम उनके, फिर भी साम्राज्यशाही गोरों ने अपने सैनिकों के मन-मस्तिष्क में उनके भारतवासियों के शासक होने का जो विचित्र विचार डाल रखा था, उससे वशीभूत वे जब चाहते सिक्खों की पगड़ी, मुसलमानों की टोपी और हिन्दुओं की धोती उतार लेते। गोरे पर हाथ उठाने का दण्ड मृत्यु था। लालकुर्ती बाज़ार में गिने-चुने साधारण दुकानदारों के अतिरिक्त वहाँ सबके-सब गोरों के 'खिदमतगार' बसते थे—भंगी, धोबी, नाई, बहिस्ती, बावर्ची, वैसे, खानसामे, चौकीदार, खलासी, साईस, इत्यादि। और इस निचले वर्ग को खुशामद, जी-हुजूरी, स्थायी भय, भाग्य-विमृद्धता, संतोष आदि प्रवृत्तियों ने नितांत पंगु बना दिया था। वे सब गोरों के फटे हुये जूते, उधड़ी हुई बर्दियाँ और घिसी हुई जर्सियाँ पहनते। शराब पीकर लड़ते-भगड़ते और पुलिस वालों का पेट भरते। घरों में चूल्हे कभी सुलगते, कभी बुझ जाते। छः महीने काम करते, छः महीने निठले रहते। किसी की बेटी भाग जाती तो किसी का बेटा। 'मरूमूर' को इस वातावरण की भुखमरी और सड़ाँद ने अत्यन्त प्रभावित किया और यही वातावरण उसकी शायरी का आधार बना। उसकी कुछ नज़मों के शीर्षक देखिये : 'महतरानी', 'भूखी जवानियाँ', 'बीस चेहरे', 'धोवन आई'।

उसकी शायरी का श्रीगणेश और विकास किस प्रकार हुआ उसके बारे में वह स्वयं कहता है :

“मुझे मेरे बचपन के साथी 'इसी' निचले वर्ग से मिले। मेरे साथियों के बड़े-बूढ़े राग-रंग, नाच, कथा आदि के बड़े प्रेमी थे। वे अक्सर थानेदारों, गोरा पुलिस और मेम साहिब के सम्बन्ध में 'बिरहा' गढ़ते, दोहे और चौपाइयाँ गाते। उनकी देखा-देखी मैं भी 'बिरहा' कहने लगा—शेखीखोर, भूठे और शेखचिल्ली ढंग के लड़कों के बारे में। यह मनोरंजन मुझे बहुत पसंद आया, क्योंकि इस प्रकार दूसरों पर चोट करने का अवसर और आनन्द मिलता था।

नवीं कक्षा में अपने फ़ारसी के अध्यापक प्रभुसिंह के प्रोत्साहन पर, जिन्होंने मुझे पिंगल आदि सिखाया, मैं बिरहा और दोहों को छोड़कर ग़ज़लें कहने लगा। अब मेरे शेरों की अनियमितता की त्रुटि तो दूर हो गई लेकिन घिसे-पिटे और परम्परागत विषयों को शेर में बांधने की त्रुटि अभी तक मौजूद थी और इसका एक कारण यह था कि अध्यापक प्रभुसिंह ने मुझे मीर 'दर्द' आदि सूफ़ी शायरों के 'कलाम' के अध्ययन तक ही सीमित रखा और मैं एक समय तक शब्दाडंबर में फँसा रहा, और न जाने आज भी फँसा होता यदि 'बशीर' नामक एक गुमनाम शायर से मेरी भेंट न होती.....

“बशीर से मेरा परिचय बम्बई में हुआ जहाँ कालेज से निकलने के बाद मैं इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए भेजा गया था। मेरी ग़ज़लें सुनकर 'बशीर' ने उन पर परम्परागत होने का दोष लगाया और मुझे नज़्में लिखने को कहा। वह स्वयं बड़ी रंगीन नज़्में लिखता था और इस प्रसंग में 'अख़्तर' शीरानी का रंग अपनाने की कोशिश किया करता था। वह एक बोहीमियन और रोमांटिक टाइप का शायर था। बाल बढ़ाना, उल्टा-सीधा लिबास पहनना, बातचीत में जान-बूझ कर व्यंग और उपहास का पहलू लाना, प्रातः देर से सोकर उठना, महीने में एक बार नहाना, बेतहाशा चाय पीना, साथियों के स्वभाव और कलात्मक बोध से बेनियाज़ होकर ख्वाहमख्वाह विशेषज्ञ बनने और ऊँचे स्तर की बात करने का प्रयास करना, पन्द्रह दिनों में एक-आध संक्षिप्त-सी नज़्म लिखना और यह समझ लेना कि जीवन का कोई महान कर्तव्य पूरा कर दिया है। अध्ययन नाम-मात्र करना, लेकिन शेक्सपियर और मिल्टन से लेकर अंग्रेज़ी के आधुनिक कवियों एज़रा पाउंड, स्टीफ़न स्पेंडर और आडन तक की कला का मूल्यांकन कर डालना। एक समय तक मैं 'बशीर' की इस प्रकृति से प्रभावित रहा और सुबह-शाम के संपर्क से मुझमें भी बोहीमियनिज़्म के कीटाणु घुस आये, लेकिन 'बशीर' के संपर्क से मुझे एक लाभ अवश्य हुआ—मैं परम्परागत, घटिया और अपभ्रंश शायरी से पीछा छुड़ाने में सफल हो गया और मैंने विषय और रूप के अनगिनत प्रयोगों की शुरुआत की....”

अपने उस प्रयोग-काल में उसने “च्यूंटी के पर”, ‘तालाब’, ‘एक औरत को कपड़े पहनते हुए देखकर’, ‘अनोखा ब्योपारी’ आदि नज़्में लिखीं और काफ़ी बदनामी और काफ़ी ख्याति प्राप्त की। उसकी नज़्मों में समाज के अभावसूचक पात्रों का एक असीमित प्रसङ्ग मिलता है। उन दिनों यों भी समाज के भावसूचक पात्रों पर उर्दू लेखकों और शायरों की दृष्टि बहुत कम पड़ती थी

इसलिए कि उस समय के उर्दू साहित्य में अवसन्नता, व्यक्तिवाद, द्वेषवाद उद्वेगवाद आदि प्रवृत्तियाँ प्रचलित थीं। अतिअसाधारण पात्रों को प्रस्तुत करने वाला यथार्थवादी कहलाता था और इस प्रकार यथार्थवाद के वास्तविक अर्थों को विकृत किया जाता था (‘मीराजी’ इस प्रकार की शायरी के प्रतिनिधि शायर थे) ‘मरूमूर’ ने यद्यपि उस समय इन्हीं प्रवृत्तियों का साथ दिया तथापि मूलरूप से वह सुधारवादी रहा और अपनी प्रत्येक नज़्म में कोई न कोई नैतिक परिणाम निकालने का प्रयत्न किया। फिर उसकी निर्बंध और अनुकांत नज़्मों में ‘मीराजी’ आदि शायरों ऐसी कल्पना, अति-सांकेतिकता और अस्पष्टता भी नहीं होती थी बल्कि कथा-वस्तु वार्तालाप से परिपूर्ण होने के कारण वे और भी सरल तथा सुगम हो जाती थीं। उदाहरणार्थ उसकी उस ज़माने की एक नज़्म ‘कुन्दन’ का एक टुकड़ा देखिए :

कुन्दन धीरे चलता है और तेज़ी से घबराता है
नन्हे वच्चों की फुर्ती चालाकी पर भुंभलाता है
जब कोई इस्कूल को जाती फूल-सी शोला-गूँ^१ लड़की
देखता है, बोल उठता है, “ये कैसा ज़माना आया है
रंगरूप के बेचने वाली का-सा स्वांग रचाया है
अच्छा ईश्वर तेरी मर्जी ये भी मुसीबत सहता थी
शुक्र है अगले वक्तों की बेटी के ऐसे ढंग न थे
लाज ही उसका जोबन थी और लाज ही उसका गहना थी”
लेकिन दोशीज़ा के सरापा^२ में कुन्दन खो जाता है।

१९४२ ई० में जब ‘मरूमूर’ का पहला कविता-संग्रह ‘जलवागाह’ प्रकाशित हुआ तो उस समय के कुछ आलोचकों ने उसे अश्लीलतावादी, और कुछ ने यथार्थवादी कहा। उसकी नज़्मों की पैरोडियाँ की गईं। उसकी नज़्मों के सामूहिक प्रभाव को नज़र-अंदाज करते हुए उनमें से एक-आध पंक्ति लेकर उन्हें आचार-विरोधी सिद्ध किया गया। यह ठीक है कि उस समय ‘मरूमूर’ की कला यथार्थवाद का विगड़ा हुआ रूप लिये हुए थी लेकिन उसे समाज के मूल्यांकन में जो निपुणता प्राप्त थी और वह जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से समाज के विभिन्न पात्रों का विश्लेषण करता था, उसने धीरे-धीरे उसे वास्तविक यथार्थवाद की ओर आकृष्ट कर दिया। इस रूप से मैं उसे ‘नज़ीर’ अकबराबादी

(उर्दू का प्रथम जन-कवि) की सुन्दर परम्पराओं का उत्तराधिकारी कहूँगा क्योंकि 'नज़ीर' अकबरावादी ने भी रूढ़िगत कविता के विरुद्ध नये-नये प्रयोग किये थे । 'शेफ़ता' ऐसे गंभीर आलोचकों ने उसे अश्लीलतावादी और बाज़ारू कवि कहा क्योंकि वह जनसाधारण की भाषा में बड़ी बेबाकी से उसकी समस्याएँ प्रस्तुत करता था और अपने आत्मानुभव तथा अपनी मनोवृत्ति का निःसंकोच वर्णन करता था । 'नज़ीर' की नज़म 'आंधी' का एक टुकड़ा देखिये :

इस आंधी में अहा-हा-हा अजब हमने मजे मारे,
फलक पर ऐशो-इशरत से दिखाई दे गये तारे,
रक़ीवों की है अब ख़वारी, ख़राबी क्या लिखूँ बारे,
तले कोठे के बैठे अट गये सब गर्द के मारे,

भरी नथनों में उनके खाक दस-दस सेर आंधी में ।

१९४२ ई० के बाद 'मरूमूर' की नज़मों के दो और संग्रह 'तलातुम' और 'मुह्तसिर नज़में' प्रकाशित हुए । 'तलातुम' की नज़में उसकी कला-कौशलता को अवश्य प्रकट करती हैं, लेकिन सैद्धान्तिक रूप से उनमें 'मरूमूर' वहीं का वहीं दिखाई देता है । हाँ 'मुह्तसिर नज़में' उसके एक ठोस प्रयोग का साक्षी है, जिसकी कुछ नज़में तो केवल एक पंक्ति की नज़में हैं । इन अत्यन्त संक्षिप्त नज़मों में उसके विचारों की गहराई और जीवन-जिज्ञासा के अंश भी मिलते हैं ।

१९४४ ई० में जब 'मक्तबा उर्दू' और 'मक्तबा जदीद' (लाहीर के प्रकाशन-गृह) के लिए 'मरूमूर' ने रूसी साहित्य को उर्दू का जामा पहनाने का कार्य आरम्भ किया (अब तक वह टाल्स्टाय का उपन्यास 'वार एण्ड पीस', गोर्की का 'मदर', शोलोखोफ़ का 'एण्ड क्वायट फ़्लोज़ दी डॉन' और 'वर्जन सॉयल अपटर्नड' आदि कई पुस्तकों का अनुवाद कर चुका है) तो उसके अपने कथनानुसार उसे पहली बार मालूम हुआ कि जिस यथार्थवाद का वह अनुयायी था वह वास्तविक यथार्थवाद नहीं था, और उसने समझ लिया कि यथार्थवाद के लिए सामाजिक और राजनीतिक बोध अनिवार्य है । देश के बटवारे ने उसके इस विश्वास को और भी दृढ़ता प्रदान की कि सामाजिक और राजनीतिक बोध के बिना कोई लेखक महानु साहित्य की रचना नहीं कर सकता । उसे मानव-मित्र तथा मानव-शत्रु शक्तियों का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिये ।

१९४८ ई० में 'मरूमूर' जालंधर रेडियो में नौकर हुआ । यहाँ रहकर साढ़े तीन वर्ष में उसने डेढ़ हजार के लगभग पंजाबी तथा उर्दू में फीचर और

नाटक लिखे । यद्यपि ये नाटक और फीचर सरकार की विशेष पालिसी के आधार पर लिखवाये जाते थे फिर भी प्रौढ़ 'मरूमूर' ने यहाँ भी अपनी कला से विश्वासघात नहीं किया । वह उन नाटकों में भी अपने इर्द-गिर्द बिखरे हुए समाज के भेद-भाव को समोता रहा, और कदाचित् इसी कारण से उसे साम्यवादी कहकर रेडियो से निकाल दिया गया ।

आज 'मरूमूर' जालंधरी दिल्ली के एक दैनिक पत्र 'मिलाप' में काम करने के साथ-साथ अपनी शायरी में समाज के विभिन्न पात्रों के चित्रण द्वारा सामाजिक क्रान्ति के आगमन की घोषणा कर रहा है ।

मगरमच्छ के आंसू (दूसरे महायुद्ध के अन्त पर)

सुनते हैं याद मुसीबत में खुदा आता है
 आसरा इक यही मजबूर की तकदीर में रह जाता है
 “खोल दो, वन्द कलीसाओं के^१ दर खोल भी दो
 माना मानूस^२ नहीं हाथ दुआओं से, दुआयें मांगें !
 ममलिकत^३ पर कहीं खुरशीद न हो जाये गुरूब
 हुक्म दे दो कि सभी अपने खुदाओं से दुआयें मांगें !”
 जी पे बन जाये तो ज़िल्लत भी उठा लेते हैं
 सुनते हैं बाप गधे को भी मुसीबत में बना लेते हैं
 “नाग है अपना मुआविन^४ तो कोई बात नहीं
 काम लेना है हमें नाग खजाने पे बिठालो अपने
 शहद का घूंट समझ कर सम्मे-क्रातिल^५ पी जाओ
 किसी कीमत, किसी उजरत पे उसे साथ मिलालो अपने !”
 सारा धन जाता हो तो निस्फ़ लुटा देते हैं
 सुनते हैं बच्चे जो चाहें उन्हें अक्रयून खिला देते हैं
 “सब को बरूशेंगे मुसाइव की सलासिल^६ से निजात
 जंग लड़ते हैं सदाक़त की, मुसावात^७ को, एलान करो
 अपनी मनमानी ही आखिर में करेंगे, अब तो
 दहर को^८ वादा-ए-पुरक़ैफ़^९ से मिन्नतकशे-ग्रहसान^{१०} करो !”

१. गिरजाघरों के २. परिचित ३. राज्य ४. साथी ५. हलाहल
 ६. विपत्तियों की जंजीर ७. समानता ८. संसार को ९. सुखद वायदा
 १०. उपकार से प्रभावित

(२)

नाग डसता है उसे दूध पिलाओ कितना,
 सूखी बेरी से कभी बेर नहीं झड़ते, हिलाओ कितना
 “अहदे - आलाम”^१ भी मादूम^२, खुदा भी मादूम
 कोई खदशा नहीं फिर से सितमो-जौर को अरजां^३ कर लो
 फ़तह का जश्न मनाना है मगर धूम के साथ
 अपने घर हुस्न से या खून की बूंदों से चिरागां^४ कर लो
 अपने महकूमों की हस्ती भी कोई हस्ती है
 ये तो वायदों पे भी जी सकते हैं इनसे नये पैमां^५ कर लो।
 तीरगी^६ बढ़ती है तूफ़ान उमड़ आता है
 बदलियां छा के बरसती हैं फ़लक^७ फिर से निखर जाता है

१. आपत्तियों का युग २. गायब ३. सस्ता ४. दीपावली ५. प्रण
 ६. अंधकार ७. आकाश

अरावा

सलीमा, चान्द की किरन
 हर इक खयाल की दुल्हन
 नज़र-नज़र की आरजू
 नज़र-नज़र की जुस्तजू
 शरारतों की जलवागाह, शोखियों की अंजुमन
 तजल्लियों की^१ शाहराह, ज़रनिगार^२, जूफ़िगन^३
 सलीमा, उस ज़माने का
 हसीं फ़रेब खा गई
 मुहब्बत, इस समाज में
 कठिन क़दम उठा गई
 क़फ़स की तीलियों को तोड़कर परिन्द उड़ गये
 नज़र जो मोड़ सामने पड़ा उसी पे मुड़ गये
 मुहब्बत, इस समाज में
 कठिन क़दम उठा गई
 मगर क़यामत आ गई

(२)

सलीमा, रंगो-बू चमन
 शराब जिसका बांकपन
 सलीमा, जिसके पैरहन^४
 नज़रनवाज़, सहरफ़िगन^५

१. प्रकाश की २. कुन्दन-मुखी ३. प्रकाश बिखेरने वाली ४. पहरावे
 ५. जादू बिखेरने वाला

बड़ी दलेर थी जो अपना राज फ़ाश कर गई
 रिवायतों का आबगीना^१ पाश-पाश कर गई
 छुपे करिश्मे, पाकबाज़
 उठे हिजाबे-बेसवा^२
 नदी है मै की खुल्द में^३
 यहां शराब नारवा
 हिजाब उठाके-रस्मो-राह तोड़कर चली गई
 बुजुर्गतर निगाह में
 बड़ा गुनाह कर गई
 गरीब वालदेन को
 यूँही तबाह कर गई
 जबीं पे^४ कुन्वे की सियाह कश्का^५ इक लगा गई
 निसाई^६ हुस्न और वक्रार^७ खाक में मिला गई
 वो शर्मसार कर गई
 लबों पे ताने धर गई
 दिलों में ज़रम सैंकड़ों
 सदा-बहार भर गई
 दो छोटी बहनों के लिए नुकीले कांटे बो गई
 वो उम्र-भर की इज़ज़त अपने मैल में भिगो गई
 बुरी मिसाल बन गई
 सलीमा ऐसो नाज़नीं
 शफ़क़-जमाल^८ , मह-जबीं^९

१. पानी का बुलबुला २. बेसवा की ३. स्वर्ग में ४. माथे पर
 ५. कलंक का टीका ६. स्त्रीत्व ७. शान ८. झूबते सूरज की लालिमा
 ऐसी सुन्दर ९. चन्द्रमुखी

(३)

सलीमा, खुश-जमाल^१ थी
 नहीं वो बदखसाल^२ थी
 हुसूले-आरजू^३ की धुन में घर से क्यों चली गई
 वो दूर वालदेन की नज़र से क्यों चली गई
 सलीमा, फूल बेल थी,
 नहीं नहीं, चुड़ेल थी
 हयाते-पुर-अलम^४ को खुशगवार करने क्यों गई ?
 नज़र में, दिल में मुस्कराते फूल भरने क्यों गई ?
 सलीमा, चान्द की किरन
 नहीं-नहीं, वो बद-चलन
 घराने में 'हमीद' था, 'कमाल' था, 'बुलंद' था
 मगर वो गुंडा 'आफ़ताव' उसको क्यों पसंद था ?
 सलीमा, हीरे की कनी
 नहीं-नहीं वो कुश्ती^५
 वजुर्गी की पसन्द, उस पे मुतमईन न क्यों हुई ?
 जो उसका इन्तिखाब था वो उसके साथ क्यों गई ?
 सलीमा ऐसी नाज़नीं
 शफ़क़-जमाल, मह-जबीं
 बड़ा गुनाह कर गई !

१. सुन्दर २. बदचलन ३. कामना की प्राप्ति ४. दुखों-भरा जीवन
 ५. मार डालने के योग्य

चे-मे-गोइयां

अरी कुछ सुना तूने क्या हो गया ?
 बहन नास-पीटा ये चूल्हा तेरा ?
 कभी एक पल को न ठंडा हुआ
 अभी बरतनों का भरा टोकरा
 तेरे सामने है पड़ा !

बहन जां लड़ाओ तो कुछ लुकमे खाओ
 हुआ तेज इतना जमाने का ताओ
 कि अब हड्डियां अपनी पीसो तो खाओ
 चलो छोड़ो किस्मत पे क्यों सर खपाओ
 कोई ताजा किस्सा सुनाओ !

बहन कुछ न पूछो हया उठ गई
 चहेतो वो नाजों पली लाडली
 नवेली बहू लाजपत राय की
 करेगी कहीं आज कल नौकरी
 नहीं लोभ की हद कोई !

ऊई राम ! पूछो तो हम सच बतायें
 पढ़ी और लिखी सर-बरहना^१ बलायें
 न मदों से जिस रोज़ शाना भिड़ायें
 न जब तक इन्हें देख कर मुस्करायें
 वो घर अपने तब तक न आयें !

बहन गैर का हाथ हम पर पड़े
तो लगता है यूँ जैसे नश्वर गड़े
यही चाहते हैं वहीं पर खड़े
वो उतनी जगह या गले या सड़े
बुरे हाथ जिस जा पड़े !

बहन मर्द की शान है वो कमाये
कमाया हुआ उसका कुल कुनबा खाये
जो कुछ रूखा-सूखा सा बाहर से लाये
उसे बीबी धोये, संवारे, पकाये
सुघड़ और चतुर नाम पाये !

मुझे देखो ये कोई दावा नहीं
कभी घर में तिनका भी होता नहीं
अगर भूखे सोये तो परवा नहीं
जबर्बा पर कभी शिकवा आया नहीं
गिला अपना शेवा नहीं !

बहन तुम से क्या अपनी बिपता छुपाऊँ
हया रोके है वरना कुर्ता उठाऊँ
तो शलवार की खस्ता हालत बताऊँ
कई खिड़कियाँ और रोज़न^१ दिखाऊँ
कहां और टांके लगाऊँ !

अरी नौकरी तो बहाना है बस
नई पौद सचमुच हविस है हविस
इरादे गुनहगार नीयत नजिस^२
सदा पायें मर्दों की क्रूरबत^३ में रस
कि घेरे रहें पांच दस !

हमें तो बहन नखरे आते नहीं
 कभी सुर्खी पाउडर लगाते नहीं
 दोपट्टे को सिर से हटाते नहीं
 ये बालों में चिड़ियां बनाते नहीं
 ये सीना दिखाते नहीं !

हमारी कनाअत^१ हमारा सिंगार
 भला कुछ भी लगता नहीं रंगदार
 वो शादी के जोड़े जो थे तीन-चार
 लिया है सब उन पर से गोटा उतार
 कि है सादगी खुद बहार !

बहन अब तो गहना भी फबता नहीं
 सुनो तुम से तो कोई पर्दा नहीं
 इक आवेजा^२ भी घर में रक्खा नहीं
 किसी चोर-उचक्के का खटका नहीं
 ज़रा दिल घड़कता नहीं !

बहन बात मेरी अधूरी रही
 ये अंधेर है औरत और नौकरी
 जभी तो ज़माने की ये गत बनी
 न देखा न ऐसा सुना था कभी
 अभी उलटो गंगा बही !

चलें देके मदों के हाथों में हाथ
 अगर आज इसके तो कल उसके साथ
 करें भौंडे फ़ैशन में मेमों को मात
 बस इक बच्चे के बाद पायें निजात
 कि औलाद है दुख की राह !

बहन बात फिर बीच में कट गई
 नवेली बहू लाजपतराय की
 महीनों सुसर से भगड़ती रही
 “कि घर में बढ़ी जाती है भुखमरी
 मुझे करने दो नौकरी !”

बहन ठीक है पेट भरता नहीं
 महीना गुजारे गुजरता नहीं
 मगर आदमी इससे मरता नहीं
 कोई बेहयाई तो करता नहीं
 कुएं में उतरता नहीं !

बहन तेरा मुंह क्यों है उतरा हुआ
 लहू जैसे सारा निचोड़ा हुआ
 तुझे बैठे-बैठे भला क्या हुआ
 अरी फोड़ा निकली तू रिस्ता हुआ
 कोई आज भगड़ा हुआ ?

बहन कोई दिन ऐसा कटता नहीं
 कि जब आसमां सर पे फटता नहीं
 घटाया बहुत खर्च घटता नहीं
 इसी वास्ते भगड़ा हटता नहीं
 घिरा अब्र^१ छटता नहीं !

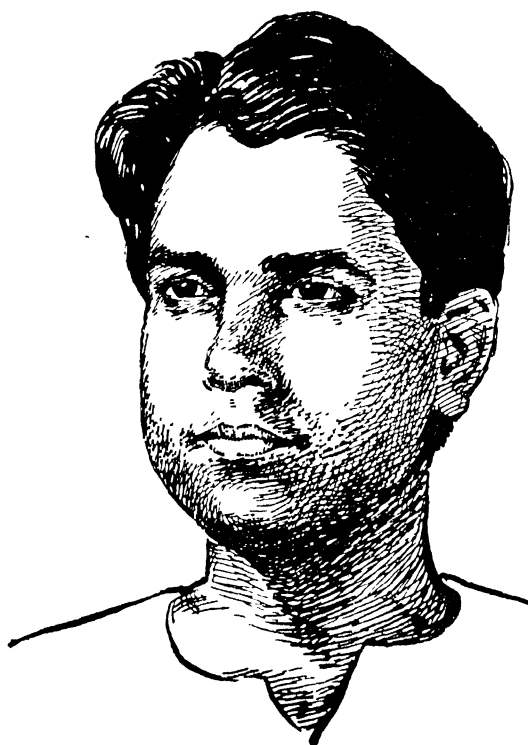
बहन भूख का गर्म बाजार है
 फ़िरंगी न अब उस का ब्योपार है
 सिरों पर टंगी फिर भी तलवार है
 यक्रीनन कोई हम में बटमार है
 हमीं में रियाकार^२ है !

बहन उस निगोड़े के गोली लगे
कहीं से कोई तेज आंधी उठे
महल उसका हो जाये ऊपर-तले
सदा के लिए उसका दीपक बुझे ।

जो दिन-रात हमको छले !

अहाहा तेरे मुंह में गिसरो बहन
तेरी बात हो जल्द पूरी बहन
बने तू कई पोतों वाली बहन
जिये तू जुगों तक चहेती बहन

लगे उम्र मेरी बहन !



‘अख्तर’ उल-ईमान

चुनते-चुनते आंसू जग के अपने दीप बुझा डाले/

परिचय

बम्बई लोकल ट्रेन के एक बुकिंग-आफिस की खिड़की में झांकते हुए उसने कहा “बांदरा के दो फ़र्स्ट क्लास के टिकट !”

पांच का नोट उसके हाथ में था और पांच ही नहीं, उस समय बांदरा पहुँचने के लिए वह पचास रुपये तक खर्च कर सकता था, लेकिन बुकिंग-क्लर्क ने एक बार दोनों हाथों के पंजे और दूसरी बार एक हाथ की चार उंगलियाँ दिखाते हुए बड़े व्यंग्यात्मक स्वर में कहा “चौदह आने होंगे मिस्टर ।”

‘मिस्टर’ ने पांच का नोट उसकी ओर बढ़ाते हुए मुस्कराकर अपने साथी से कहा “लो, यह भी मुझे उजड़ू और गँवार समझ रहा है ।”

“इस में इसका कोई क्रूसूर नहीं” उसके साथी ने मजा लेते हुए कहा, “तुम्हारी शक्ल ही ऐसी है । इस पर तुम लिबास भी ऐसा पहनते हो जिससे तुम्हारे हब्सी होने का शक होता है ।”

‘अख्तर’ उल-ईमान की शक्ल तो खैर इतनी बुरी नहीं, रंग जरूर बहुत काला है और लिबास भी वह कुछ ऐसा नहीं पहनता जिससे उसके हब्सी होने का संदेह हो, क्योंकि इसी लिबास, अर्थात् खद्दर के कुर्ते, पायजामे और चप्पल के साथ दक्षिणी भारत के पार्लियामेंट के मेम्बर दिल्ली में भारत का भाग्य बिगाड़ने-सँवारने में योग देते हैं । लेकिन इसमें उसके साथी का भी कोई क्रूसूर न था क्योंकि ‘अख्तर’ उल-ईमान पार्लियामेंट के मेम्बर की बजाय बेचारी उर्दू भाषा का शायर-सात्र था ।

इसी प्रकार की एक और घटना उसके एक और मित्र ने मुझसे बयान की। उसने बताया कि एक बार वह, ‘अस्तर’ उल-ईमान और उसकी पत्नी के साथ कोई फ़िल्म देखने गया। ‘अस्तर’ टिकट लेने गया और वह और अस्तर की पत्नी गेट-कीपर से इस बारे में कहकर सिनेमा-हाल में चले गये। उनके भीतर जाने पर गेट-कीपर को याद आया कि साहब के हाथ में सिग्रेट है और सिनेमाहाल में ‘धूम्रपान निषिद्ध’ था। अतएव जब ‘अस्तर’ टिकट लेकर उसके पास पहुँचा तो गेट-कीपर ने उसे डपटकर कहा “हे ! देखो, तुम्हारा साहब और मेम साहब अन्दर चला गया है। साहब सिग्रेट पी रहा है। उससे कहना सिग्रेट बुझा दे।”

ये तो खैर इन दिनों की घटनायें हैं जब वह जीवन की छत्तीस ‘वसन्त ऋतुएं’ देख चुका है और काफ़ी पैसा कमाता है। अपने बाल्यकाल में तो न जाने उसे क्या कुछ देखना और महन करना पड़ा था। उसका जन्म तो (१२ नवम्बर १९१५ के दिन) जिन्ना विजनौर के एक खाते-पीते घराने में हुआ लेकिन पालन-पोषण दिल्ली के एक अनाथालय में। ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता उनकी शिक्षा-दीक्षा की ओर कोई ध्यान न दें, बालिश होकर प्रायः समाज के माथे का कलंक बन जाते हैं—चोर, ज्वारी, डाकू, क्रांतिल ! लेकिन इस अंधकारमय पहलू के बावजूद इस चित्र का एक उज्ज्वल पहलू भी है। हीनता तथा अभाव और विपत्तियों के आक्रमण ने उसे बिगाड़ने की बजाय संवार कर उर्दू का एक उल्लेखनीय शायर बना दिया।

एंग्लो-ऐरेबिक कालेज दिल्ली से, जहाँ उसकी फ़ीस माफ़ थी, उसने बी० ए० पास किया। एम० ए० करने के लिए अलीगढ़ विश्वविद्यालय और मेरठ कालेज की खाक छानी, लेकिन केवल खाक ही छानी। यह १९४४ ई० की बात है जब डब्ल्यू० ज़ैद० अहमद की शालीमार पिकचर्ज (पूना) में वह ‘जोश’ मलीहाबादी, ‘सागर’ निजामी, कृष्णचन्द्र, भरत व्यास आदि साहित्य-कारों के दल में जा सम्मिलित हुआ और फ़िल्मों के लिए कहानियाँ और संवाद लिखने लगा। शालीमार पिकचर्ज के टूटने पर बम्बई चला आया और अब तक वहीं है। इस प्रसंग में यह बात अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि साहित्य-जगत् में तो वह शायर के रूप में प्रसिद्ध है लेकिन फ़िल्म-जगत् में प्रोड्यूसर उसे शायर की बजाय संवाद-लेखक समझते हैं और यह कि उसने आज तक कोई फ़िल्मी गीत नहीं लिखा।

‘अस्तर’ उल-ईमान उर्दू शायरों के उस दल से सम्बन्ध रखता है जो प्रयोग तथा

व्यंजना-वाद के अनुयायी हैं और उस चीज को जिसे ‘प्रत्यक्ष कविता’ (Direct Poetry) कहा जाता है, पसंद नहीं करते। शुरू में वह फ़ैज अहमद ‘फ़ैज’ और मुईन अहसन ‘जज़बी’ की शायरी से बहुत प्रभावित था और प्रतीकवादी और व्यक्तिवादी शायर ‘मीराजी’ को तो शायद वह अपना गुरु मानता था। लेकिन धीरे-धीरे उसकी शायरी अपना अलग रंग-रूप धारण करती गई और आज उसके समकालीन शायरों में उसकी भावाभिव्यक्ति सबसे अलग है। एक अत्यन्त घायल आवाज़, थकी-थकी शैली जो शायद उसके कटु अतीत की सूचक है, उसकी शायरी की विशेषता है। उसकी नज़में बड़ी सँभली-सँभली और मन्द गति से चलती हैं। पाठक को साथ लेते हुए, रास्ते के कांटे-कंकरो से बचाते हुए अन्त में वे उसे उस मंजिल पर ले जाती हैं, जहाँ पहुँचकर किसी प्रकार की थकान की बजाय पाठक स्वयं को हल्का-फुल्का महसूस करने लगता है—मानो एक भारी बोझ था, जा उसके कंधों से उतर गया हो। ज़रा उसकी एक नज़म ‘अंदोखता’ (संचित) देखिये :

कोहरा, नीला बसीतो-बुलंद^१ आसमां
 इतना खामोश, ठहरा हुआ, पुरसुकूँ^२,
 इस तरह देखता है मुझे जैसे मैं,
 अपने गले से बिछड़ी हुई भेड़ हूँ,
 तुम कहाँ हो मेरी रूह की रोशनी,
 तुम तो कहती थीं ये दर्द पाइँदा^३ है,
 तुम कहाँ हो, मेरे रास्तों के दिये,
 बुझ गये फिर भी हर चीज़ ताबिदा^४ है,
 मैं मिलों-कारखानों के बोझल घुएं,
 कहवाखानों^५ का मग़मूम^६ ताबिदगी,
 काहनों^७ की मुहब्बत का फ़ुज़ला^८ जिसे,
 रब्बे-मौजूदो-मादूम^९ ने बख़्श दी,
 दायमी^{१०} ज़िदगी, मैं तुम्हारे लिए,

१. विशाल तथा उच्च २. शांत ३. स्थायी ४. प्रकाशमान
 ५. वेश्याघरों ६. उदास ७. यहूदियों की-सी शकल के सेवक (जादूगर)
 ८. फोक ९. भगवान जो है और अदृश्य है १०. स्थायी

अह्दे-क्राऊन^१ की गीर^२ और दार^३ से,
अपनी ज़रूमी मुहब्बत बचा लाया हूँ।

यह तथा ‘अख्तर’ की ऐसी ही कई और नज़में व्याख्या की नहीं, महसूस करने की मांग करती हैं। लेकिन कभी-कभी जान-बूझकर महसूस कराने के उद्देश्य से लिखी गई उसकी नज़में काफ़ी भ्रमोत्पादक भी हो जाती हैं। और यदि उन पर कोई शीर्षक न हो तो यह समझना कठिन हो जाता है कि शायर ने प्रेमिका की मृत्यु पर नज़म लिखी है या वह बंगाल के अकाल से सम्बन्धित है। इस प्रसंग में वह अभी तक ‘मीराजी-स्कूल’ से पूरी तरह अपना दामन नहीं छुड़ा सका जिसकी नज़मों की विशेषता यह होती थी कि उनके रचयिता से पूछे बिना उन्हें समझ लेना दूध की नदी खोद निकालने के तुल्य होता था।

अब तक ‘अख्तर’ उल-ईमान के तीन कविता-संग्रह ‘गिरदाब’ ‘सब-रंग’ और ‘तारीक सय्यारा’ प्रकाशित हो चुके हैं।

१. क्राऊन का युग (क्राऊन हज़रत मूसा के चचा के बेटे का नाम है जो बहुत बड़ा धनवान लेकिन कंज़ूस था) २, ३. पकड़-धकड़

अजनबी

तू है कच्ची कोंपल अब तक जिसके लोच में प्यार
 और मैं गर्मी-सर्दी चक्खे डाली पर एक तनहा^१ पात
 तू सुच्चा मोती मैं हीरा फिरा जो बसों हाथों-हाथ
 तू ऊषा की पहली किरन है और मैं जैसे भोगी रात
 तू तारों के तूर की धारा में गहरा नीला आकाश
 मैं हूँ जैसे दूटता नश्वर तू है जैसे शब्द-मनान^२
 तू है एक ऐसी शहनाई जिसकी धुन पर नाचे मौत
 तेरी दुनिया जीत ही जीत है, मेरी दुनिया ? छोड़ ये बात

तू है एक पहेली जिसको जो बूझे सो जान से जाये
 तू है ऐसी मिट्टी, जिससे लाखों फूल चढ़ें परवान
 आ मैं तेरा अंग भी छू दूँ छोड़ ये भेद और भाव की बात
 मैंने वो सरहद^३ छू ली है जहां अमर हो जायें प्राण
 ऐ आंखों में खुबने वाली जाने ! कौन कहां रह जाये
 जीवन की इस दौड़ में पगली, हम दोनों हैं आज अनजान
 लेकिन ऐ सपनों की दुनिया तू चाहे तो रोग मिटें
 मैंने दुनिया देखी है तू मेरी बातें भूठ न जान
 जीवन की इस दौड़ में नादां याद अगर कुछ रहता है
 दो आंसू, एक दबी हँसी, दो रूहों की पहली पहचान

१. अकेला २. मीठे फलों के वृक्ष की शाखा ३. सीमा

जब और अब

कहां तो ये था कि मेरी चाहत में गुदगुदी सी थी लोरियों की,
नई - नई कोंपलों की सुर्खी नये शुगुफों की^१ ताजगी थी
कहां तो ये था कि मेरी चाहत थी गीत उठती जवानियों का,
कहां ये दिन है कि तेरो आवाज बन गई है सदा - ए - सहरा^२ ,
न जाने किस गोशा - ए - ज़मीं से^३ रुकी-रुकी सी थमी-थमी सी,
घुटी-घुटी सी हजार पर्दों से आज छन-छन के आ रही है ।



अहदे-वफ़ा

यही शाख^४ तुम जिसके नीचे किसी के लिए चश्मे-नम हो,^५ यहां
अब से कुछ साल पहले,
मुझे एक छोटी सी बच्ची मिली थी, जिसे मैंने आगोश^६ में ले के
पूछा था बेटी !
यहां क्यों खड़ी रो रही हो ? मुझे अपने बोलीदा^७ आंचल में फूलों
के गहने दिखाकर,
वो कहने लगी मेरा साथी, उधर, उसने उंगली उठाकर बताया
उधर, उस तरफ़ ही
(जिधर ऊँचे महलों के गुंबद, मिलों की सियाह चिमनियां आसमां
की तरफ़ सिर उठाये खड़ी हैं)
ये कहकर गया है कि मैं सोने-चांदी के गहने तेरे वास्ते लेने जाता
हूं ‘राबी’ !

१. अघखिली कलियों की २. मरुस्थल की आवाज (जिसे सुनने वाला कोई नहीं होता) ३. धरती के कोने से ४. शाखा ५. आंखों को सजल किये हुए हो ६. गोद ७. फटे-पुराने

आखिरे-शब^१

ढली रात तारे झपकने लगे आंख, शबनम के नासुफता^२ मोती,
सरे-शाखे-गुल^३ अपने अंजाम से कांप उठे, ख्वाब पूरे-अधूरे,
उड़े जैसे ऊदे, रुपहले, सुनहरे, सियाह, मलगुजे, भूरे, बादल,
तहे-आसमां^४ रूई के नरम गालों की मानिद हर सिम्त^५ उड़ते—
फिरे, और नद्दाफ़ की ज़र्ब^६ को भूल कर पल गुज़रते-गुज़रते,
सरे-बालिशे-खाक^७ सब ज़िद्दी बच्चों की मानिद रोते मचलते,
चढ़ी नींद से चूर होकर वहीं सो रहे, याद की सब्ज परियां,
घने जंगलों, लालाज़ारों^८, पहाड़ों, भरी वादियों से गुज़रतीं,
कहीं क़ाफ़े-माज़ी^९ के नमनाक^{१०} ग़ारों में रूपोश होने लगी हैं।

मुबारक हो मैंने सुना है तुम फूल सी जान की मां बनी हो,
मुबारक ! सुना है तुम्हारा हर इक ज़रूम मुंदमिल हो गया है^{११}।



१. रात्रि का अन्त २. अनर्बिधा मोती ३. फूल की शाखा कि सिरे पर
४. आकाश के नीचे ५. और ६. धुनिये की चोट ७. धूल-मिट्टी के
सिरहाने ८. फुलवाड़ियों ९. अतीत का क़ाफ़ (परियों के रहने का कल्पित
स्थान) १०. सजल ११. अच्छा हो गया है

तब्दीली

इस भरे शहर में कोई ऐसा नहीं,
जो मुझ राह चलते को पहचान ले,
और आवाज़ दे “ओ बे, ओ सर-फिरे”,
दोनों इक दूसरे से लिपट कर वहीं,
गिर्दो-पेश^१ और माहौल^२ को भूलकर,
गालियां दें, हंसें, हाथापाई करें,
पास के पेड़ की छांव में बैठकर,
घंटों इक दूसरे की सुनें और कहें,
और इस नेक रूहों के बाज़ार में,
मेरी ये कीमती बेबहा^३ ज़िन्दगी,
एक दिन के लिए अपना रुख मोड़ ले ।



अनजान

तुम हो किस बन की फुलवारी अता-पता कुछ देती जाओ,
 मुझ से मेरा भेद न पूछो मैं क्या जानूँ मैं हूँ कौन ?
 चलता फिरता आ पहुँचा हूँ राही हूँ मतवाला हूँ,
 इन रंगों का जिनसे तुमने अपना रूप सजाया है,
 इन रंगों का जिनसे तुमने अपना खेल रचाया है,
 इन गीतों का जिनकी धुन पर नाच रहे हैं मेरे प्राण,
 इन लहरों का जिनकी रौ में डूब गया है मेरा मान,

मेरा रोग भिटाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
 मुझसे मेरा भेद न पूछो मैं क्या जानूँ मैं हूँ कौन ?
 मैं हूँ ऐसा राही जिसने देस देस की आहों को,
 ले लेकर परवान चढ़ाया और रसीले गीत बुने,
 चुनते-चुनते आंसू जग के अपने दीप बुझा डाले,
 मैं हूँ वो दीवाना जिसने फूल लुटाये खार^१ चुने,
 मेरे गीतों और फूलों का रस भी सूख गया था आज,
 मेरे दीप अंधेरा बनकर रोक रहे थे मेरे काज,

मेरी जोत जगाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
 मुझसे मेरा भेद न पूछो मैं क्या जानूँ मैं हूँ कौन ?
 एक घड़ी एक पल भी सुख का वक्त है इस राही को,
 जीवन जिसका बीत गया हो कांटों पर चलते चलते,
 सब कुछ पाया प्यार की ठंडी छांव जो पाई दुनिया में,
 उसने जिसकी बीत गई हो बरसों से जलते-जलते,
 मेरा दर्द बटाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
 मुझ से मेरा भेद न पूछो, मैं क्या जानूँ मैं हूँ कौन ?



‘सलाम’ मछलीशहरी

शायद कि इन्क़िलावे-ज़माना के साथ-साथ
मेरी तबाहियों में तुम्हारा भी हाथ है

परिचय

“अगर कोई बैरंग लिफाफा आये तो समझ लीजिये, वह सलाम का है”
(—मुमताज शीरी)

“जो लड़की उसे खूबसूरत नज़र आती है वह फ़ौरन उस पर एक नज़्म लिख डालता है।” (—क्रूरहत्-उल-ऐन हैदर)

“आप से मिलिये, आप सलाम हैं और आपकी शायरी वालैकुम-अस्सलाम !”
(—फ़ुकृत काकोरवी)

“तुम घबराओ नहीं ‘सलाम’ ! दुनिया उस वक्त तुम्हारी शायरी की क़दर करेगी जब उसका तर्जुमा अंग्रेज़ी में और अंग्रेज़ी से फ़्रेंच में होगा और फिर फ़्रेंच से मैं उसे उर्दू में तर्जुमा करूँगा” (—‘मजाज़’ लखनवी)

‘सलाम’ मछलीशहरी के व्यक्तित्व और उसकी शायरी के बारे में दर्जनों लतीफ़े मशहूर हैं और चूँकि पिछ्से पन्द्रह-सोलह वर्ष से उर्दू का कोई अच्छा-बुरा पत्र ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ जिसमें सलाम की कोई नज़्म, ग़ज़ल, कहानी, ड्रामा, लेख या सम्पादक के नाम लम्बा-चौड़ा पत्र न छपा हो, इसलिए मेरा ख़्याल है कि लोग-बाग़ उसकी रचनाओं पर विशेष ध्यान नहीं देते और सच बात तो यह है कि इस लेख के लिखने तक स्वयं मैंने भी उसकी बहुत कम चीज़ें पढ़ी थीं। इस पर उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न मित्रों से जो कुछ मैंने सुना था वह भी कुछ अधिक ‘सन्तोषजनक’ नहीं था, अतएव मेरे मन में कभी ‘सलाम’ से मुलाकात करने की इच्छा उत्पन्न नहीं हुई—न तो व्यक्तिगत रूप से और न ही शायर की हैसियत से।

लेकिन किसी के चाहने न चाहने से क्या होता है, ‘सलाम’ से मेरी मुलाकात हुई और जैसा कि कहा जाता है ‘खूब’ हुई। और फिर लखनऊ रेडियो से तब्दील होकर जब वह दिल्ली रेडियो में आ गया और कुछ दिनों तक बिन बुलाये मेहमान की तरह मेरे ही यहाँ रहा तो आप अनुमान लगा सकते हैं कि मेरी हालत क्या हुई होगी ? मेरे मित्र मुझ पर तरस खाते कि मुझ पर भगवान् का कोप ‘सलाम’ मछलीशहरी के रूप में प्रकट हुआ है जो न तो अच्छी बातें करता है, न अच्छे कपड़े पहनता है। इस पर जब वह अपने आत्म-विश्वास और स्वाभिमान की बातें करता है तो और भी उपहासजनक हो जाता है। लेकिन मित्रों की बार-बार हिदायतों के बावजूद कि वह अपने शत्रु अधिक बनाता है और मित्र कम बल्कि नहीं के बराबर, और चूँकि उसकी मित्रता या शत्रुता का सम्बन्ध सीधा उसके स्वार्थ से होता है, इसलिए मुझे उस समय के लिए तैयार रहना चाहिए जब मेरा नाम भी उसके शत्रुओं की सूची में लिखा जाएगा। मैं अभी तक उससे घृणा नहीं कर सका हूँ और मेरा खयाल है कि घृणा उससे उसका कोई शत्रु भी नहीं करता। घृणा का नहीं, वह दया का पात्र है।

उर्दू शायरी का यह दयनीय शायर मछली शहर, ज़िला जौनपुर के एक निर्धन और अशिक्षित घराने में पहली जुलाई १९२१ को पैदा हुआ। प्रत्यक्ष है कि उच्च शिक्षा के लिए धन की आवश्यकता थी और घर में धन नहीं था। अतः वह उर्दू में मिडिल और अंग्रेज़ी में दसवीं श्रेणी से आगे न बढ़ सका और अपनी छोटी-सी आयु में ही अपना और अपने कुटुम्ब का पेट पालने के लिए उसे तरह-तरह के पापड़ बेलने पड़े। एक-एक पैसे को वह दाँतों से पकड़ता रहा (और अब तो उसके दाँत और भी मजबूत हो गये हैं) और चूँकि वर्तमान जीवन-व्यवस्था में पैसे का महत्व बहुत ही अधिक है, पैसे का होना सब कुछ है और पैसे का न होना उदार से उदार मनुष्य को अधम बना देता है, इसलिए दीन-दरिद्र ‘सलाम’ के मस्तिष्क में कई प्रकार की मनोवैज्ञानिक गाँठें पड़ती गईं। भरी महफ़िलों में उस पर तरह-तरह के वाक्य कसे जाते हैं। हर समय पिता या पत्नी को रुपया भेजने, मालिक-मकान का किराया चुकाने या जिस होटल में वह खाना खाता है, वहाँ चालीस के बजाये हर महीने उससे पैतालीस रुपये ठगे जाने की बातें सुन-सुनकर मित्र-मुलाकाती उसे ऐसी नज़रों से देखने लगते हैं जैसे कहना चाहते हों—“तुम स्वयं ही बताओ ‘सलाम’ ! तुम्हें शायर समझा जाये या कनमेलिया ?” तो या तो उसके

मस्तिष्क में एक और गाँठ पड़ जाती है या फिर वह उन लोगों पर बेतरह बरस पड़ता है। ऐसे समय में उसकी हालत और भी दयनीय हो जाती है क्योंकि अपने हीनता-भाव पर वह यह कहकर पर्दा डालने का निष्फल प्रयास करने लगता है कि नई पीढ़ी के लगभग सभी शायर उसके शिष्य या उससे प्रभावित हैं।

लेकिन इन सब बातों के अतिरिक्त मेरे विचार में ‘सलाम’ की सबसे बड़ी ट्रेजिडी यह है कि उसे बहुत छोटी आयु में ख्याति प्राप्ति हो गई। एक शायर की हैसियत से उसने उस समय आख खोली जब उर्दू शायरी में रूप-संबन्धी नित नये प्रयोग किये जा रहे थे। नये ढंग में कही हुई प्रत्येक बात बेहद सराही जाती और कथा-वस्तु में चाहे कितना ही नैराश्य या अवसन्नता होती, रूप का नयापन उसे प्रथम श्रेणी की शायरी की पदवी दिला देता। उस काल में जिन उर्दू शायरों ने रूप सम्बन्धी असाधारण प्रयोग किये उनमें नून० मीम० ‘राशिद’ और ‘मीराजी’ का नाम सबसे पहले आता है और ‘मीराजी’ की शायरी तो एक बाक्रायदा स्कूल का दर्जा रखती है जिसकी विशेषता है प्रतीक-वाद तथा कामुकता।

‘सलाम’ मछलीशहरी इन दोनों शायरों का समकालीन है और उसने भी बहुत-से नये और सफल प्रयोग किये हैं। लेकिन जो चीज उसे ‘मीराजी’ से अलग करती है वह है विविध विषयों को पकड़ में लाना और जहाँ तक संभव हो प्रतीकवाद से पहलू बचाना। और जो चीज उसे ‘राशिद’ से अलग करती है वह है पंक्तियों की तराश-खराश करने की बजाय बड़ी तीव्रगति से उनका आप ही आप ढलते चले जाना।

यहाँ उस काल के रूप-सम्बन्धी प्रयोगों के गुणों-अवगुणों पर विस्तार से कुछ कहने की गुंजायश नहीं है, लेकिन इस वास्तविकता से किसी प्रकार इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन प्रयोगवादी शायरों ने आधुनिक उर्दू शायरी के विकास में काफ़ी बड़ा योग दिया है।

‘सलाम’ मछलीशहरी आज भी उसी तीव्रगति से साहित्य-रचना कर रहा है और उसकी इधर की कुछ चीजें काफ़ी पसन्द भी की गई हैं, लेकिन मेरे विचार में यदि वह जीवित है और रहेगा तो अपनी उन्हीं प्रयोग-काल की नज़्मों से।

ड्राइंग-रूम

ये सीनरी, ये ताजमहल, ये कृष्ण हैं धीरे ये राधा हैं,
ये कौच है, ये पाईप है मेरा, ये नावल है, ये रिसाला है,
ये रेडियो है, ये कुमकुमे^१ हैं, ये मेज़ है, ये गुलदस्ता है,
ये गांधी हैं, टैगोर हैं ये, ये शाहनशाह, ये मलिका हैं ।

हर चीज़ की बाबत पूछती है जाने कितनी मासूम है ये,
हां इस पर रात को सोने से मीठी-मीठी नींद आती है,
हां इसके दबाने से बिजली की रोशनी गुल हो जाती है,
समझी कि नहीं, ये कमरा है, हां मेरा ड्राइंग-रूम है ये ।

इतनी जल्दी, मजदूर औरत ! आखिर ये गले में बाहें क्यों ?
ले देर हुई अब भाग भी जा, बस इतनी मुहब्बत काफ़ी है,
इस मुल्क के भूखे-प्यासों को पैसे की हाजत^२ काफ़ी है,
इतनी हंसमुख खामोशी, इतनी मानूस^३ निगाहें क्यों ?

मैं सोच रहा हूँ कुछ बैठा, पाइप के धूएं के बादल में,
मैं छुप-सा गया हूँ इक नाजुक तखईल^४ के भैले आंचल में !

१. बिजली के बल्ब २. जरूरत ३. परिचित ४. कल्पना

सड़क बन रही है

मई के महीने का मानस मन्जर
गरीबों के साथी ये कंकर ये पत्थर
वहां शहर से एक ही मील हटकर

—सड़क बन रही है ।

जमीं पर कुदालों को बरसा रहे हैं
पसीने - पसीने हुए जा रहे हैं
मगर इस मुशक्कत^१ में भी गा रहे हैं

—सड़क बन रही है ।

मुसीबत है, कोई मुसरत नहीं है
इन्हें सोचने की भी फुर्सत नहीं है
जमादार को कुछ शिकायत नहीं है

—सड़क बन रही है ।

जवां, नौजवां और खमीदा कमर^२ भी
फुसुर्दा जबी^३ भी बहिश्ते-नज़र भी
वहीं शामे-गम भी जमाले-सहर^४ भी

—सड़क बन रही है ।

जमादार साये में बैठा हुआ है
किसी पर उसे कुछ अताब^५ आ गया है
किसी की तरफ़ देखकर हंस रहा है

—सड़क बन रही है ।

१. परिश्रम २. झुकी हुई (बूढ़ी) ३. चितित माथा ४. सुबह का
सौन्दर्य ५. क्रोध

ये बेबाक उलफ़त ये अलहड़ इशारा
बसन्ती से रामू तो रामू से राधा
जमादार भी है बसन्ती का शैदा

—सड़क बन रही है ।

अगर सिर पे पगड़ी तो हाथों में हंटर
चला है जमादार किस ज्ञान से घर
बसन्ती भी जाती है पोशीदा होकर^१

—सड़क बन रही है ।

समझते हैं लेकिन हैं मसरूर अब भी
उसी तरह गाते हैं मज़दूर अब भी
बाहर-हाल वां^२ हस्वे-दस्तूर अब भी

—सड़क बन रही है ।

◇

◇

◇

अन्वेषा

“—आर्टिस्ट ! अपनी ये तस्वीर मुकम्मिल कर ले
 हां ये होंट और भी पतले हों, ये आंख और भी मस्त
 लेकिन इन गालों की सुर्खी को ज़रा कम कर दे
 मैंने शायद उन्हें मुर्झाया हुआ पाया है
 हल्के आंसू से इन आंखों को ज़रा नम कर दे
 मैंने अफ़सुर्दा निगाहों से^१ यही समझा है
 आज भी मैंने सरे-राह उसे देखा है—!
 एक शहकार इसे जल्द बना ले ऐ दोस्त
 वरना तस्वीर का खाका^२ ही बदलना होगा—!!”



एक बोरजुआ स्टूडेंट

……वो इक मजदूर की लड़की
बहुत आसान है मेरे लिए उसको मना लेना
जरा आरास्ता हो लूँ^१
मेरा आईना कहता है—
किसी सब से बड़े बुतसाज का शहकार हूँ गोया
मैं शहरों के तवस्सुमपाश^२ नज़ारों का पाला हूँ
मेरी गुप्तार^३ के अंदाज में—

शैले की नज़में हैं
मोपासां के फ़साने हैं

मैं परवर्दा^४ हूँ वारों, कहवाखानों की फ़जाओं का
मैं जब शहरों की रंगीन तितलियों को छेड़ लेता हूँ
मैं जब आरास्ता खलवतकदों^५ की मेज़ पर जाकर
शराबों से भी रंगीन फूलों को अपना ही लेता हूँ
तो फिर इक गांव की पाली हुई मासूम-सी लड़की
मेरे बस में न आयेगी ?
भला ये कैसे मुमकिन है ?
मैं फिर ऐसे में जब भी चाहता हूँ प्यार करता हूँ !

१. सज लूँ २. मुस्कराहटों-भरे ३. बातचीत ४. पाला हुआ
५. तनहा जगहें (केबिन)

……ज़रा बैठो

मैं दरिया के किनारे धान के खेतों से हो आऊँ
यही मौसम है जब धरती से हम रूई उगाते हैं
तुम्हें तकलीफ़ तो होगी—

हमारे भोंपड़ों में चारपाई भी नहीं होती
नहीं—मैं रुक गई तो धान तक पानी न आयेगा
हमारे गांव में बरसात ही तो एक मौसम है
कि जब हम साल-भर के वास्ते कुछ काम करते हैं
—इधर बैठो,

परौई लड़कियों को इस तरह देखा नहीं करते,
—ये लिप-स्टिक,

ये पाउडर,

और ये स्कार्फ़ क्या होगा ?

मुझे खेतों में मजदूरी से फ़ुर्सत ही नहीं मिलती
मेरे होंटों पे घंटों बूंद पानी की नहीं पड़ती
मेरे चेहरे, मेरे बाजू पे लू और धूप रहती है
गले में सिर्फ़ पीतल का ये चन्दन-हार काफ़ी है

—बहुत ममनून हूँ, लेकिन

हुज़ूर आप अपने तोहफ़े शहर की परियों में ले जायें

……हवा में दिलकशी है

और फ़ज़ा सहबा^१ लुटाती है

ज़रा पीपल की शाखों में

सुनहरे चांद की अंगड़ाइयां देखो

अभी बादल की रिमझिम में नहा-धोकर जो निकली है—!

शरीबी एक लानत है—

तुम्हें परमात्मा ने हुस्न की देवी बनाया है
 मेरा ये फ़र्ज है इस हुस्न को आरास्ता कर दूँ
 तुम्हारी मुस्कराहट से ज़रा वहशत बरसती है
 मैं इसमें जगमगाती ज़िन्दगी की रूह भर दूँगा
 तुम्हारे होंटों में सूखी हुई पत्ती की लज़िश^१ है
 मैं इसमें इक अनोखा रंग देकर जान लाऊंगा
 तुम इस वीरांकदे^२ में किस क्रदर मजबूर लड़की हो
 तुम्हें मेरी मुहब्बत, मेरी दौलत की ज़रूरत है
 —चलो मैं भी तुम्हारे साथ उन खेतों में चलता हूँ
 हवा में दिलकशी है और फ़जा सहबा लुटाती है !
 मैं दरिया की हसीं लहरों में इक संगीत ढूँढ़ूँगा
 तुम्हारे गांव की सखियों की टोली गीत गायेगी
 सुनहरे धान के खेतों की दुनिया भूम जायेगी
 नदी से दूर पीपल के किनारे, एक पनघट पर
 वहां पाजेब की भंकार में नगमे बरसते हैं
 मैं ये सुनता रहा हूँ,
 आज इनको देख भी लूँगा—
 अदीबों शायरों ने गांव को जन्नत बताया है—

……फ़रेबे-मजहबो-सरमायादारी और क्या होगा ?
 कि जनता के दिलों को
 आंसुओं को,
 उनकी आहों को,
 दबाने के लिए—अपने तईं मसरूर रहने को
 अदीबों, शायरों ने गांव को जन्नत बताया है

खुद अपने रंगमहलों में—

किसानों और मजदूरों की फ़रियादों से बचने को

शहनशाहों ने फ़नकारों से कुछ नगमे खरीदे हैं

—तो फिर सरकार देहातों के नज्जारों को निकले हैं

मगर अब आलमे-मजदूरो-दहक्कां^१ और ही कुछ है

जमीं पर खेत हैं, लेकिन यहां नगमे नहीं होते ।





‘मजरूह’ सुलतानपुरी

अब सुल के कहूँगा हर ग़मे-दिल ‘मजरूह’ नहीं वो वक्त कि जब
अश्कों में सुनाना था मुझको आहों में ग़ज़लस्वां होना था

परिचय

रूस की क्रांति से पहले क्रांतिकारी दल में एक टुकड़ी ऐसे युवकों की भी थी जो अतीत की प्रत्येक परम्परा को रूढ़ि और सामन्त-काल का जूठन कहकर उसे समाप्त कर डालने पर उतारू थी और इस सम्बन्ध में कोई सैद्धान्तिक युक्ति भी सुनने को तैयार नहीं थी। अतएव जब वहाँ के महान लेखक तुर्ग़नेव ने अपने उपन्यासों में ऐसे संकीर्णतावादी (Nihilist) पात्रों को प्रस्तुत करना और उनका खेदजनक परिणाम दिखाना शुरू किया तो उन युवकों ने उसे रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी बल्कि क्रान्ति-विरोधी तक कह डाला और माँग की कि उसकी समस्त पुस्तकों को जलाकर राख कर दिया जाय क्योंकि उनके अध्ययन से क्रान्तिकारी युवकों के भटक जाने की सम्भावना है।

कुछ वर्ष पूर्व लगभग इसी प्रकार की एक माँग उर्दू के कुछ लेखकों और शायरों ने भी की। कहने को तो वे भी अपने आपको प्रगतिशील और क्रांतिकारी लेखक और शायर कहते थे लेकिन प्रगतिवाद के वास्तविक अर्थ समझे बिना और क्रांति से यांत्रिक नगाव के कारण उनसे कुछ ऐसी ही भूलें हुईं और चूँकि ऐसे लेखकों और शायरों की संख्या काफी बड़ी थी इसलिए एक समय तक प्रगतिशील साहित्य में गतिरोध तथा शैथिल्य रहा। उन्होंने नई बातें जरूर कीं लेकिन अतीत से सम्बन्ध न होने के कारण वे बातें खोखले नारे बनकर रह गईं। यहीं तक बस नहीं, उन्होंने साहित्य के कुछ रूपों को मरते हुए सामन्ती समाज का अंग कहकर उनके उन्मूलन की भी माँग की।

बेचारी उर्दू 'ग़ज़ल' पर भी उनका यह नज़र गिरा। ग़ज़ल को सामन्ती

समाज का अंग और केवल 'आत्मीयता' (Subjectiveness) का चमत्कार कहते हुए वे इस तात्त्विक सिद्धांत को भूल गये कि हर नई चीज पुरानी चीज की कोख से जन्म लेती है। भाषा तथा साहित्य और संस्कृति तथा सम्यता से लेकर शारीरिक वस्त्रों तक कोई चीज शून्य में आगे नहीं बढ़ती बल्कि इसे अपने पिछले फ़ैशन का सहारा लेना पड़ता है। और जहाँ तक आत्मीयता का सम्बन्ध है, आत्मीयता किसी चिकने घड़े का नाम नहीं है बल्कि आत्मीयता भी पदार्थ-विषमता का ही प्रतिबिम्ब होती है। अपने मन की दुनिया में रहना किसी पागल के लिए तो सम्भव है लेकिन कोई चेतन व्यक्ति बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। इन जोशीले लेकिन विमूढ़ युवकों के बारे में जो नयेपन के इतने रसिया थे और पुरानी परम्पराओं के इतने विरोधी, उर्दू के एक समालोचक ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि "उन्होंने टब के गदले पानी के साथ-साथ टब और बच्चे को भी फेंक देने की ठान ली थी।"

सौभाग्यवश उर्दू के इन संकीर्णतावादी लेखकों और शायरों ने बहुत शीघ्र अपनी भूल स्वीकार कर ली और साहित्य, इतिहास और सामाजिक परिस्थितियों के अध्ययन तथा निरीक्षण के बाद अब वे बच्चे और टब को नहीं केवल टब के गदले पानी को फेंकने और उसकी जगह निर्मल और स्वच्छ पानी भरने के लिए प्रयत्नशील हैं।

यह ठीक है कि उर्दू शायरी का एक विशेष रूप होने के कारण ग़ज़ल की कुछ अपनी विशेष परम्पराएँ हैं और वह सामन्त-काल की उत्पत्ति है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि ग़ज़ल की परम्पराओं में कोई परिवर्तन नहीं हुआ या हो नहीं सकता। विश्व, समाज और मानव-जीवन की प्रत्येक वस्तु की तरह ग़ज़ल की परम्पराओं में भी बराबर परिवर्तन होता रहा है और 'मीर', 'सौदा', 'दर्द', 'मोमिन', 'ग़ालिब', 'हाली' और 'दाग़' के कलाम के क्रमशः अध्ययन से हम इस परिवर्तन अथवा विकास का रंग-रूप देख सकते हैं। जागीरदारी के पतन और इस कारण से ग़ज़ल की अधोगति के बाद बीसवीं शताब्दी में जिन शायरों ने ग़ज़ल की रूढ़िगत परम्पराओं में परिवर्तन लाने का भरसक प्रयत्न किया उनमें हसरत मोहानी, 'इक़बाल', 'जोश', 'जिगर', 'फ़िराक़', 'फ़ैज़' और 'जज़बी' के नाम सबसे आगे हैं। इस प्रसंग में, 'मजरूह' सुलतानपुरी ग़ज़ल के क्षेत्र में नवागन्तुक है।

'मजरूह' सुलतानपुरी ग़ज़ल के क्षेत्र में नवागन्तुक अवश्य है लेकिन असिद्धहस्त नहीं। उर्दू ग़ज़ल के शयनगृह में वह एक सिमटी-सिमटाई लजीली

दुल्हन की तरह नहीं बल्कि एक निश्चित तथा निडर दूल्हे की तरह दाखिल हुआ है और कुछ ऐसे स्वाभिमान से दाखिल हुआ है कि शयनगृह का मदमाता वातावरण चकाचौंध प्रकाश में परिवर्तित हो गया है।

‘मजरूह’ की शायरी में ग़ज़ल के बाँकेपन के साथ-साथ ग़ज़ल का सुन्दर स्वरूप भी मौजूद है और चूँकि उसके सुलभे हुए राजनीतिक बोध ने सामाजिक विकास और गति के नियमों को समझ लिया है इसलिए वह सौंदर्य का चित्र प्रस्तुत कर रहा हो या प्रेम का दुख-दर्द, राजनीतिक समस्याओं का उल्लेख कर रहा हो या समाज की गति का चित्रण, हमें उसके यहां हर जगह यथार्थवाद की झलक मिलती है और जब वह कहता है कि :

बचा लिया मुझे तूफ़ान की मौज ने वरना ।

फ़िद्वारे वाले सफ़ीना^१ मेरा डबो देते ॥

या

मेरे काम आ गई आखिरश^२ यही काविशें^३ यही गरदिशें ।

बढ़ीं इस क़दर मेरी मंज़िलें कि क़दम के खार^४ निकल गये ॥

या फिर

सर पे हवा-ए-जुलूम चले सौ जतन के साथ ।

अपनी कुलाह कज^५ है उसी बांकपन के साथ ॥

तो केवल इतना ही नहीं कि ‘मजरूह’ हमें ग़ज़ल की प्राचीन परम्पराओं का उत्तराधिकारी नज़र आता है बल्कि उसके यहां हमें ऐतिहासिक सच्चाइयों की भी बड़ी सुन्दर झलक मिलती है। खिज़ां, बहार, चमन, साक़ी, महफ़िल, शराब, पैमाने इत्यादि शब्दों से, जो प्राचीन ग़ज़ल के ‘पात्र’ हैं, ‘मजरूह’ ने बड़ी कला-कौशलता से अपना काम निकाला है। इन शब्दों को पहनाया हुआ उसका नया अर्थ इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि शायरी के अन्य रूपों की तरह ग़ज़ल भी एक लिबास है जो विचारों के शरीर को ढांपता है और अपनी तराश-ख़राश और रंग-रूप के आधार पर किसी भी दूसरे लिबास से कम सुन्दर नहीं। ‘मजरूह’ ने आवश्यकतानुसार इस लिबास में कुछ नये शब्दों द्वारा और भी रंगीनी और खूबसूरती पैदा करने की कोशिश की है। अपनी इस कोशिश में कहीं-कहीं तो वह बहुत सफल रहा है। उदाहरणस्वरूप पूंजीवाद के प्रति अपनी

घृणा प्रकट करते हुए उसके सबसे बड़े लक्षण 'बैंक' को वह इस प्रकार अपने शेर में बांधता है :

जबों पर^१ ताजे-जर^२, पहलू में जिंदा^३, बैंक छाती पर ।

उठेगा बेकफ्रन कब ये जनाजा हम भी देखेंगे ॥

और क्रान्ति का स्वागत करते हुए वह जमीन, हल, जौ के दाने, और कारखाने ऐसे शब्दों को, जो नज़्मों में तो किसी तरह खप सकते हैं लेकिन ग़ज़ल की नाज़ुक कमर इनका बोझ मुश्किल ही से उठा सकती है, बड़ी शान से यों प्रयोग में लाता है :

अब जमीं गायेगी हल के साज़ पर नग़मे ।

वादियों में नाचेंगे हर तरफ़ तराने से ॥

अहले-दिल उगायेंगे खाक से महो-अंजुम^४ ।

अब गुहर^५ सुबक^६ होगा जौ के एक दाने से ॥

मनचले बुनेंगे अब रंगो-बू के पैराहन ।

अब सँवर के निकलेगा हुस्न कारखाने से ॥

लेकिन कभी-कभी नये शब्दों के प्रयोग की धुन में और राजनीति-सम्बंधी सामयिक आन्दोलनों की धारा में बहकर वह कला की दृष्टि से बेतरह असफल भी रहता है और उस कोमल सम्बंध को भुला देता है जो राजनीतिक बोध और उसके कलात्मक वर्णन के बीच होना चाहिये। उसके ऐसे शेर गालीचे में टाट के पेवंद की तरह खटकते हैं। ज़रा एक शेर देखिये :

अमन का भंडा इस धरती पर किसने कहा लहराने न पाये ?

ये भी कोई हिटलर का है चेला, मार ले साथी जाने न पाये ॥

इस प्रकार के शेर यद्यपि उसकी शायरी में आटे में नमक के बराबर हैं, फिर भी मेरे तुच्छ विचार में 'मजरूह' को इस प्रकार के वर्णन से पहलू बचाना चाहिये, क्योंकि यह भी कुछ उसी प्रकार की संकीर्णता है जिसने रूस के महान कलाकार तुर्ग़नेव को क्रान्ति-विरोधी ठहराया था और क्रान्ति-आंदोलन में योग देने की बजाय क्रान्ति को हानि पहुँचाई थी ।

आधुनिक उर्दू ग़ज़ल का यह क्रान्तिवादी शायर, जो अपने साधारण जीवन में बड़ा-सौंदर्य प्रेमी है, कभी भद्दी बात नहीं करता, कभी भद्दे वस्त्र नहीं पहनता, भद्दा खाना नहीं खाता, भद्दे मकान में नहीं रहता, भद्दी पुस्तकें नहीं

१. माथे पर २. पूंजी का ताज ३. जेलखाना ४. चान्द-सितारे
५. मोती ६. हल्का (कम कीमत का)

रखता और इसीलिए बहुत कम भद्दे शेर कहता है, ज़िला आजमगढ़ के एक कस्बे निज़ामाबाद में पैदा हुआ और हकीम बनते-बनते संयोग से शायर बन गया। उसकी जीवनी उसकी अपनी ज़बान से सुनिये :

“मैं एक पुलिस कांस्टेबल का बेटा हूँ जो मुलाज़मत के दौरान में आजम-गढ़ यू० पी० में रहे और वहीं कस्बा निज़ामाबाद में १९१६ में मेरी पैदाइश हुई और मैंने अपनी इन्तिदाई तालीम (उर्दू, फ़ारसी, अरबी) वहीं हासिल की। १९३० में मैं आजमगढ़ से कस्बा टांडा जिला फैजाबाद आया और वहाँ अरबी दर्स निज़ामिया की तकमील (पूति) करना चाही लेकिन कर नहीं सका और इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के अरबी इम्तिहानों ‘मौलवी’, ‘आलम’, ‘फ़ाज़ल’ की फ़िर्क की कि इस ज़रिये से किसी स्कूल में टीचरी मिल सकेगी। लेकिन ‘आलम’ तक पढ़कर उसे भी छोड़ दिया और तिब (औषध-ज्ञान) की तकमील के लिए लखनऊ आया और यहाँ अरबी ज़बान में तिब की तकमील की। यह ज़माना १९३८ का है। चन्द महीने तक मतव (औषधालय) किया लेकिन चूँकि सुलतानपुर में कुछ शेरों-अदब का भी चर्चा था इसलिए मुझे भी शेर कहने का शौक पैदा हुआ। १९४१ में ‘जिगर’ मुरादाबादी ने मुझे एक मुशायरे में सुना और अपने साथ लेकर कई मुशायरों में गये। इस दौरान में उन्होंने मुझे दो बातें बताईं। एक तो यह कि जैसे आदमी होंगे वैसे शायर होंगे। दूसरी बात यह कि अगर किसी का कोई अच्छा शेर सुनो तो कभी नक़ल न करो बल्कि जो गुज़रे (आत्मानुभव हो) वही कहो। बाकायदा इसलाह (संशोधन) मैंने किसी से नहीं ली। बिल्कुल शुरू की दो गज़लों पर ‘आसी’ साहब मरहूम से इसलाह ली थी लेकिन वे गज़लों मेरे हाफ़जे (मस्तिष्क) में बिल्कुल नहीं हैं। १९४५ में एक मुशायरे के सिलसिले में बम्बई आया और यहीं फ़िल्मों के गीत वगैरा लिखने लगा और अब तक यहीं हूँ। १९४७ से प्रगतिशील लेखक-संघ से वाबस्ता हूँ और रोज़-बरोज़ (अगरचे फुर्सत कम मिलती है) इसी कोशिश में हूँ कि गज़ल के पसमंज़र (पृष्ठ-भूमि) में मार्क्सिज़म को रखकर समाजी, सियासी और इस्क्रिया शायरी कर सकूँ। चुनाँचे कुछ लोग कहते हैं कि मैं अच्छा शायर हूँ और कुछ कहते हैं कि अच्छा आदमी हूँ। तुम मुझे दोनों एतबार से जानते हो, जो चाहो फैसला कर लो।”

इस सम्बोधन का ‘तुम’ चूँकि ‘मैं’ हूँ इसलिए मेरा फैसला यह है कि ‘मजरूह’ आदमी भी बहुत अच्छा है और शायर भी बड़ा प्रतिभाशाली।

राजलें और शेर

हम अपना मुदावा^१ ढूँढ चुके दरियाओं में सहाराओं में ।
 तुम भी जिसे तस्कीं दे न सके वो दर्दे-जुनूँ कम क्या होगा ?
 गो खाक नशेमन पर अब भी हैं गिरयाकनां^२ अरबाबे-चमन^३ ।
 जब बर्क^४ तड़प कर टूटी थी उस वक्त का आलम क्या होगा ?
 जिस शोख-नज़र की महफ़िल में आंसू भी तबस्सुम बन जाये ।
 वां शम्मा जलाई जायेगी परवाने का मातम क्या होगा ?
 अब अपनी नज़र है बेमाने मफ़हूमे-तमन्ना^५ कुछ भी नहीं ।
 जब इश्क भी था कुछ चीं-ब-जबी^६, अब हुस्न भी बरहम क्या होगा ?
 'मजरूह' मेरे अरमानों का अंजाम शिकस्ते-दिल^७ ही सही ।
 जी खोल के खुद पर हंस न सकूँ इतना भी मुझे ग़म क्या होगा ?

◇ ◇ ◇

बहाने और भी होते जो ज़िन्दगी के लिए ।
 हम एक बार तेरी आरजू भी खो देते ॥
 कहां वो शब कि तेरे गेसुओं के साये में ।
 खयाले-सुबह से फिर आस्तीं भिगो लेते ॥
 बचा लिया मुझे तूफ़ाँ की मौज ने बरना ।
 किनारे वाले सफ़ीना^८ मेरा डबो देते ॥

१. इलाज २. रोते-धोते ३. चमन के मालिक ४. विजली ५. आकांक्षा
 का अर्थ ६. माथे पर बल डाले हुए ७. दिल का टूटना ८. नौका

ये रुके-रुके से आंसू ये घुटी-घुटी-सी आहें ।
 इन्हीं कब तलक खुदाया गमे-जिन्दगी निबाहें ?
 कहीं जुल्मतों में^१ घिरकर है तलाशे-दस्ते-रहबर^२ ।
 कहीं जगमगा उठी हैं मेरे नक्शे-पा से^३ राहें ॥
 तेरे खानमां-खराबों^४ का चमन कोई, न सहरा ।
 ये जहां भी बैठ जायें वहीं इनकी बारगाहें^५ ॥
 कभी जादा-ए-तलब^६ से जो फिरा हूं दिल-शिकस्ता ।
 तेरी आरजू ने हंसकर वहीं डाल दी हैं बांहें ॥

तेरी चश्मे-शोख को क्या हुआ नहीं हांती आज हरीफे-दिल^७ ।
 मेरे ज़ोमे-इश्क^८ की खैर हो ये किसे नज़र से गिरा दिया ॥
 शबे-इन्तज़ार की कश्मकश में न पूछ कैसे सहर हुई ।
 कभी इक चिराग जला दिया कभी इक चिराग बुझा दिया ॥

किस किस को हाय तेरे तगाफ़ुल^९ का दूँ जवाब ।
 अक्सर तो रह गया हूँ भुकाकर नज़र को मैं ॥
 अल्लाह रे वो आलमे-रुखसत कि देर तक ।
 तकता रहा हूँ यूँही तेरी रहगुज़ार को मैं ॥

मोहतसिब ! साक़ी की चश्मे-नीम-वा^{१०} को क्या करूं ।
 मैकदे का दर खुला गर्दिश में जाम आ ही गया ॥
 इक सितमगर तू कि वजहे-सद-खराबी^{११} तेरा दर्द ।
 इक बला-कश^{१२} मैं कि तेरा दर्द काम आ ही गया ॥

१. अंधेरों में २. पथ-प्रदर्शक के हाथों की तलाश ३. पदचिह्नों से
 ४. जिनका घर तूने बर्बाद कर रखा है ५. दरबार, कचहरी ६. प्रेन-मार्ग
 ७. दिल की शत्रु ८. इश्क का घमंड ९. बेरुखी १०. अधखुली आंख
 ११. सैकड़ों खराबियों का कारण १२. बेतहाशा पीने वाला

हम कफ़स ! सय्याद की रस्मे-ज़बाँ-बन्दी की खैर ।
 बेज़बानों को भी अन्दाज़े-कलाम ^१ आ ही गया ॥
 क्यों कहूंगा मैं किसी से तेरे ग़म की दास्तां ।
 ग़ौर अगर ऐ दोस्त लब पर तेरा नाम आ ही गया !

◇

◇

◇

मुझे सहल हो गईं मंज़िलें वो हवा के रुख भी बदल गये ।
 तेरा हाथ हाथ में आ गया कि चिराश राह में जल गये ॥
 वो लजाये मेरे सवाल पर कि उठा सके न भुका के सर ।
 उड़ी जुल्फ़ चेहरे पे इस तरह कि शबों के राज ^२ मचल गये ॥
 वही बात जो न वो कर सके मेरे शैरो-नग़मे में आ गई ।
 वही लब न मैं जिन्हें छू सका क़दहे-शराब में ^३ ढल गये ॥
 उन्हें कब के रास भी आ चुके तेरी बज़मे-नाज़ के हादसे ।
 अब उठे कि तेरी नज़र फिरे जो गिरे थे गिर के संभल गये ॥
 मेरे काम आ गईं आखिरश यही काविशें यही गरदिशें ।
 बढ़ीं इस क़दर मेरी मंज़िलें कि क़श्म के ख़ार निकल गये ॥

◇

◇

◇

आहे-जांसोज़ ^४ की महरूमि-ए-तासीर ^५ न देख ।
 हो ही जायेगी कोई जीने की तदबीर, न देख ॥
 हादसे और भी गुज़रे तेरी उल्फ़त के सिवा ।
 हां ! मुझे देख मुझे अब मेरी तस्वीर न देख ॥
 ये ज़रा दूर पे मंज़िल ये उजाला ये मुक़ ^६ ।
 ख़्वाब को देख अभी ख़्वाब की ताबीर न देख ।
 देख ज़िदां से परे रंगे-चमन, जोशे-बहार ।
 रक़स करना है तो फिर पांव की ज़ंजीर न देख ॥
 कुछ भी हो फिर भी दुखे दिल की सदा हूं नादां ।
 मेरी बातों को समझ तलख़ी-ए-तक्रोर ^६ न देख ॥

१. बोलने का ढंग २. रातों के भेद ३. शराब के प्याले ४. जान
 तक को जला देने वाली आह ५. प्रभाव-हीनता ६. कटु स्वर

वही 'मजरूह' वही शायरे-आवारा-मिजाज ।
कौन उट्टा है तेरी बज़्म से दिलगीर न देख ॥

◇ ◇ ◇
न मिट सकेंगी तनहाइयां मगर ऐ दोस्त ।
जो तू भी हो तो तबीयत ज़रा बहल जाये ॥

◇ ◇ ◇
सुनते हैं कि कांटे से गुल तक हैं राह में लाखों वीराने ।
कहता है मगर ये अज़मे-जुनूं सहारा से गुलिस्तां दूर नहीं ॥

◇ ◇ ◇
अलग बैठे थे फिर भी आंख साक़ी की पड़ी हम पर ।
अगर है तिश्नगी^१ कामिल^२ तो पैमाने भी आयेंगे ॥

◇ ◇ ◇
हम तो पा-ए-जानाँ पर^३ कर भी आए इक सजदा ।
सोचती रही दुनिया कुफ़ है कि ईमां^४ है ?

◇ ◇ ◇
सवाल उनका जवाब उनका सुक़्त^५ उनका खिताब^६ उनका ।
हम उनकी अंजुमन में सर न करते खम तो क्या करते ?

◇ ◇ ◇
में अकेला ही चला था जानिबे-मंज़िल मगर ।
लोग साथ आते गये और कारवां बनता गया ॥
मैं तो जब मानूं कि भर दे सागरे-हर खासो-आम ।
यूं तो जो आया वही पीरे-मुगां^७ बनता गया ॥
जिस तरफ़ भी चल पड़े हम आबला-पायाने-शौक^८ ।
खार से गुल और गुल से गुलिस्तां बनता गया ॥

१. प्यास (कामना) २. पूर्ण ३. महबूब के पैरों पर ४. ईमान
५. चुप्पी ६. सम्बोधन ७. शराब देने वाला बुजुर्ग साक़ी ८. जिज्ञासा
(प्रेम) के मार्ग पर चलने वाला ऐसा राही जिसके पांव में छाले पड़ गये हों ।

शरहे-गम^१ तो मुस्तसर होती गई उसके हुजूर ।
लफ़्ज़ जो मुंह से न निकला दास्तां बनता गया ॥

◊ ◊ ◊
आ निकल के मैदां में दो-रुखी के खाने से ।
काम चल नहीं सकता अब किसी बहाने से ॥
सुनते हम तो क्या सुनते इक बुजुर्ग की बातें ।
सुबह को इलाक़ा^२ क्या शाम के फ़साने से ॥
वो लगा के सीने से फ़ल्सफ़ा तसव्वुफ़^३ का ।
शेख़ जी हसीनों में फिरते हैं दिवाने से ॥
खुदकशी ही रास आई देख बदनसीबों को ।
खुद से भी गुरेज़ां^४ हैं भाग कर ज़माने से ॥
अब जुनूँ पे वो साअत^५ आ पड़ी कि ऐ 'मजरूह' ।
आज ज़ख्मे-सर बेहतर दिल पे चोट खाने से ॥

◊ ◊ ◊
जस्त करता हूँ^६ तो लड़ जाती है मंज़िल से नज़र ।
हाइले-राह कोई और भी दीवार सही ॥
जिन्दगी की क़द्र सीखी शुक्रिया तेरो-सितम^७ ।
हाँ हमीं थे कल तलक जीने से उकताये हुए ॥
सैरे-साहिल कर चुके ऐ मौजे-साहिल सर न मार ।
तुझ से क्या बहलेंगे तूफ़ानों के बहलाये हुए ॥

◊ ◊ ◊
मैं हजार शकल बदल चुका चमने-जहाँ में सुन ऐ सबा ।
कि जो फूल है तेरे हाथ में ये मेरा ही लख्ते-जिगर^८ न हो ?
तेरे पा ज़मीं पे रुके-रुके तेरा सर फ़लक^९ पे भुका-भुका ॥
कोई तुझ से भी है अज़ीम-तर^{१०} यही वहम तुझको मगर न हो ॥

१. गम की व्याख्या २. सम्बंध ३. सूफ़ीवाद ४. दूर (पहलू बचाये हुए)
५. समय (क्षण) ६. छलांग लगाता हूँ ७. जुल्म डाने वाली तलवार
८. दिल का टुकड़ा ९. आकाश १०. अधिक महान

मेरे होंटों पे तड़पते हैं अभी तक शिकवे ।
 जाने उसकी वही नीची सी नज़र है कि नहीं ?
 दिल से मिलती तो है इक राह कहीं से आकर ।
 सोचता हूं ये तेरी राहगुज़र है कि नहीं ?

◇

◇

◇

दुआ देती हैं राहें आज तक मुझ आबला-पा को ।
 मेरे कदमों की गुलज़ारी बियाबां से चमन तक है ॥



‘क़त्तील’ शफ़ाई

ग़मे-ज़ात से मेरी ज़िन्दगी ग़मे-कायनात में ढल गई
किसी बज़्मे-नाज़ में खोके भी मुझे कायनात से प्यार है

परिचय

किसी शायर के शेर लिखने के ढंग आपने बहुत सुने होंगे। उदाहरणतः 'इक़बाल' के बारे में सुना होगा कि वे फ़र्शी हुक्का भरकर पलंग पर लेट जाते थे और अपने मुन्शी को शेर डिकेट करवाते थे। 'जोश' मलीहाबादी सुबह-सवेरे लम्बी सैर को निकल जाते हैं और यों ताज़ादम होकर रचनात्मक काम करते हैं। नज़म या ग़ज़ल लिखते समय बेतहाशा सिगरेट फूँकने, चाय की केतली गरम रखने और लिखने के साथ-साथ चाय की चुस्कियाँ लेने, यहाँ तक कि कुछ शायरों के सम्बन्ध में यह भी सुना होगा कि उनके दिमाग़ की गिरहें शराब के कई पैग पीने के बाद खुलना शुरू होती हैं। लेकिन यह अंदाज़ शायद ही आपने सुना हो कि कोई शायर शेर लिखने का मूड लाने के लिए सुबह चार बजे उठकर बदन पर तेल की खूब मालिश करता हो और फिर ताबड़-तोड़ डंड पेलने के बाद लिखने की मेज़ पर बैठता हो। यदि आपने नहीं सुना तो सूचनार्थ निवेदन है कि यह शायर 'क़त्लील' शफ़ाई है।

'क़त्लील' शफ़ाई के शेर कहने के इस अंदाज़ को और उसके कहे हुए शेरों को देखकर आश्चर्य होता है। कितनी अजीब बात है कि इस प्रकार लंगर-लंगोट कसकर लिखे गये शेरों में भरनों का सा संगीत और मधुरता, फूलों की-सी महक और निखार और उर्दू की परम्परागत शायरी के महबूब की कमर ऐसी लचक मिलती है। अर्थात् ऐसे वक्त में जब कि उसके कमरे से खम ठोंकने की आवाज़ आनी चाहिये, वहाँ के वातावरण में कुछ ऐसी गुनगुनाहट बसी होती है :

चौदहवीं रात के चाँद की चाँदनी खेतियों पर हमेशा बिखरती रहे,
 ऊँघते रहगुज्जारों पे फैले हुए हर उजाले की रंगत निखरती रहे,

नमं ख्वाबों की गंगा बिफरती रहे !

या

रात भर बूँदियाँ रक्स करती रहीं, भीगी मौसीक्रियों ने सबेरा किया ।

या फिर

सोई-सोई फ़ज़ा आँख मलने लगी, सेली-सेली हवाओं के पर तुल गये ।

और इसके साथ यदि आपको यह भी मालूम हो जाय कि ‘क़तील’ शफ़ाई जाति का पठान है और एक समय तक गेंद-बल्ले, रैकट, लुंगियाँ और कुल्ले बेचता रहा है, चुंगीखाने में मोह्रिरी और बस की कम्पनियों में बुकिंग-क्लर्क करता फिरा है तो उसके शेरों के लोच-लचक को देखकर आप अवश्य कुछ देर के लिए सोचने पर विवश हो जायेंगे । इस पर यदि कभी आपको उसे देखने का अवसर मिल जाय और आपको यह न बताया जाय कि यह ‘क़तील’ है तो आज भी पहली नज़र में वह आपको शायर की अपेक्षा एक ऐसा बलर्क नज़र आयेगा जिसकी सौ-सवासी तनख्वाह के पीछे आधा दर्जन बच्चे और एक पत्नी जीने का सहारा ढूँढ रही हो । चेहरे-मोहरे से भी वह ऐसा ठेठ पंजाबी नज़र आता है जो अभी-अभी लस्सी के बड़े-बड़े दो गिलास पी चुका हो, लेकिन डकार लेना अभी बाकी हो ।

‘क़तील’ शफ़ाई का जन्म दिसम्बर १९१६ में तहसील हरीपुर जिला हज़ारा (पाकिस्तान) में हुआ । प्रारम्भिक शिक्षा इस्लामियाँ मिडिल स्कूल रावलपिंडी में प्राप्त की, उसके बाद गवर्नमेंट हाई स्कूल में दाखिल हुआ, लेकिन पिता के देहांत और कोई अभिभावक न होने के कारण पढ़ाई जारी न रह सकी । पिता की छोड़ी हुई पूँजी समाप्त होते ही उसे तरह-तरह के ‘बिज़नेस’ और नौकरियाँ करनी पड़ीं । साहित्य की ओर ध्यान इस तरह हुआ कि क्लासिकल साहित्य में पिता की बहुत रुचि थी, उन्होंने नन्हे क़तील को ‘क्रिस्सा चहार दरवेश’ और ‘क्रिस्सा हातिमताई’ आदि पुस्तकें पढ़ने को दीं और उन्हें पढ़ते-पढ़ते उसे स्वयं कहानियाँ लिखने का शौक चरया । लेकिन बाद में कहानियाँ लिखने की बजाय उसने केवल इस कारण से शायरी शुरू कर दी कि उसके कथनानुसार उसे कहानी को साफ़ करने और फिर कापी करने में बहुत कष्ट होता था । शुरू-शुरू में उसने वही ‘आहों, फ़रियादों’ वाली परम्परागत गज़लें कहीं (और मैं समझता हूँ आगे चलकर यही चीज़ उसके लिए हितकर सिद्ध हुई क्योंकि इस प्रकार वह शायरी की पुरानी परम्पराओं से अनभिज्ञ

नहीं रहा) और ‘शफ़ा’ कानपुरी नाम के एक शायर से इसलाह ली (इसी सम्बन्ध से वह स्वयं को ‘शफ़ाई’ लिखता है), लेकिन नौकरी के सिलसिले में रावलपिंडी आने पर उसने साहित्य की प्रगतिशील धारा के अनुसरण में . . . व्य-
रूप के नये-नये प्रयोग किये और अहमद नदीम क़ासमी ऐसे शायर के मैत्रीपूर्ण
परामर्शों द्वारा उसकी इस शायरी का प्रारम्भ हुआ जो आज हमारे सा’ ने है।

लेकिन कोई परामर्श या संशोधन उस समय तक किसी शायर के लिए
हितकर नहीं हो सकता जब तक कि स्वयं शायर के जीवन में कोई प्रेरक
वस्तु न हो। लगन और क्षमता का अपना अलग स्थान है लेकिन इस दिशा
की समस्त क्षमतार्यें मौलिक रूप से उस प्रेरणा ही के वशीभूत होती हैं, जिसे
‘मनोवृत्तांत’ का नाम दिया जा सकता है। अतएव १९४७ में जब वह लाहौर
की एक फ़िल्म कम्पनी में गीतकार के रूप में काम कर रहा था, ‘चन्द्रकान्ता’
नाम की एक एक्सट्रा-नर्ल उसके जीवन में आई। और उसकी शायरी को नई
शक्ति और नया रंग-रूप प्रदान कर गई। यद्यपि यह प्रेम केवल डेढ़ वर्ष
तक चल सका और उसका परिणाम बिलकुल नाटकीय तथा शायर के लिए
अत्यन्त दुःखदायक सिद्ध हुआ लेकिन जहाँ तक उसकी शायरी का सम्बन्ध है
स्वयं उसके अपने शब्दों में :

“यदि यह घटना न घटी होती तो शायद अब तक मैं वही परम्परागत
ग़ज़लें लिख रहा होता जिनमें यथार्थ की अपेक्षा बनावट और फ़ैशन होता है।
इस घटना ने मुझे यथार्थवाद के मार्ग पर डाल दिया और मैंने व्यक्तिगत
घटना को सांसारिक रंग में ढालने का प्रयत्न किया। अतएव उसके बाद जो
कुछ भी मैंने लिखा है वह कल्पित कम और वास्तविक अधिक है।”

यूँ उस पर यह नया भेद खुला कि काव्य की परम्पराओं से
पूरी जानकारी रखने और अपनी ओर से नये विचार तथा नये शब्द देने के
साथ-साथ केवल वही शायरी अधिक अपील कर सकती है जिसमें शायर का
व्यक्तित्व अर्थात् उसका ‘मनो-वृत्तान्त’ विद्यमान हो (जो अनिवार्य रूप से
परिस्थितियों से जन्म लेता और बनता है।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरे महायुद्ध के बाद नई पीढ़ी के जो उर्दू
शायर बड़ी तेज़ी से उभरे हैं उनमें ‘कृतील’ शफ़ाई का अपना एक विशेष रंग है।

अब तक ‘कृतील’ की कविताओं के तीन संग्रह ‘हरियाली’, ‘गजर’ और ‘जल-
तरंग’ प्रकाशित हो चुके हैं। अपने कविता-संग्रहों के नाम रखने में उसने किसी
अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया। ये नाम उसकी संगीतधर्मी शायरी के सचक हैं।

हरजाई

खेत से दूर दमकते हुए दोराहे पर,
एक सरशार^१ जवां मैंने खड़ा पाया था ।
तमतमाते हुए चेहरे पे सुलगती आँखें,
जैसे महके हुए गुलज़ार का स्वाब आया था ।

सर पे गागर के छलकने से जो तारे दूटे,
आसमां भाँक रहा था मुझे हैरानी से ।
टन से कंकर जो पड़ा मेरी हसीं गागर पर,
एक नगमा सा उलझने लगा पेशानी से ।

टूटती रात गये घर को पलटना मेरा,
इक लपकते हुए साये ने डराया था मुझे ।
“तुम? अरी तुम?” (वही सरशार जवां था शायद),
“जी, यूँही एक सहेली ने बुलाया था मुझे।”

खेत भरपूर जवानी को लुटा बैठे थे,
हर दरांती पे तसलसुल^२का जुनू^३तारी था ।
जाने क्या देख रहा था वो मेरे चेहरे पर ।
इस क्रंदर याद है उंगली से लहू जारी था ।

१. आह्लादित २. निरन्तरता ३. उन्माद

कांच की चूड़ियाँ कल रात न हों हाथों में,
 इतनी ऊंची तेरी पाज़ेब की भंकार न हो ।
 सरसराता हुआ मलबूस^१ न लहरा जाये,
 किसी साये का गुमां^२ भी पसे-दीवार^३ न हो ।

जब कभी चांद से पिघली हुई चांदी बरसी,
 ऊंघती रात के शाने को भंभोड़ा हमने ।
 भूलकर भी कभी पलकें न झपकने पाईं,
 इस क्रंदर नींद को आंखों से निचोड़ा हमने ।

अब मगर चांदनी रात आके गुज़र जाती है,
 पूछता ही नहीं कोई मेरी तनहाई को ।
 खेत से दूर दमकते हुए दोराहे पर,
 ढूँढती हैं मेरी आंखें किसी हरजाई को ।

◇

◇

◇

सरताज

चिलमन से उभरती हैं खनकती हुई किरनें,
 गाती है फ़जा^१ में कोई जरपोश^२ कलाई,
 में हलक्रा - ए - नगमात में^३ हैरान खड़ा हूँ,
 आंखों में समेटे हुए इक जश्ने - तलाई^४ ।
 ये जश्ने - मुसरंत जिसे तख़लीक़ किया है^५ ,
 आराम से बीते हुए पच्चास बरस ने,
 ये क़ाफ़िला - ए - उम्र की रौंदी हुई मंज़िल,
 पूजा है जिसे हिरस को आवाज़े-जरस ने^६ ।
 ये सांस, ये सूखे हुए पत्तों का तरन्नुम^७ ,
 ये जिस्म, ये टूटा हुआ पीतल का कटोरा,
 ये रंग, ये तेज़ाब में डूबी हुई चान्दी,
 ये उम्र, ये भादों की हवाओं का हिलोरा ।
 कुछ भी न सही, खून की बेकैफ़ हरारत^८ ,
 दौलत ने इसे प्यार का हक़ दे तो दिया है,
 गुलचीं की मचलती हुई मुशताक़^९ नज़र ने ।
 कोंपल को हिना^{१०} बार क़लक़^{११} दे तो दिया है ।
 रातों को हब्स हो कि गजरदम^{१२} की हवायें,
 गजरो की ये झंकार झरोके में रहेगी,
 जब तक न हक़ायक़ से^{१३} हटा दे कोई पर्दा,
 औरत यूँही अख़लाक़ के धोखे में रहेगी ।

१. वातावरण २. सोना-भरी ३. संगीत के घेरे में ४. सुनहला जश्न
 ५. रचा है ६. घड़ियाल की आवाज़ ने ७. संगीत ८. आनन्द-रहित गर्मी
 ९. उत्सुकतापूर्ण १०. मंहुदी ११. बेचैनी १२. प्रभात १३. वास्तविकताओं से

गीत

तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में बास नई
मेरे मन की आस पुरानी, तेरे तन की आस नई

तू बगिया की तितली बनकर फूल-फूल पर भूले
कली-कली से प्यार बढ़ाये, रत-रत के दुख भूले
इक समान है तुझको, सावन हो या सरसों फूले

तेरा जोबन एक पहेली, तेरी आस-निरास नई
तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में बास नई

रूप-रंग में तेरी मुंहफट चंचलता इतराये
अंग - अंग में सजी-सजाई सुन्दरता बल खाये
संग-संग अन-देखे सपनों की शोभा लहराये

जीवन के हर मोड़ पे तेरी आस रचाये रास नई
तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में बास नई

एक उड़ान से तू उकताये बार-बार पर तोले
एक चाल न भाये तुझको कदम-कदम पर डोले
इस पर भी मन मूरख मेरा तेरी ही जय बोले

मेरे साथ पुरानी छाया, काया तेरे पास नई
तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में बास नई

